श्रेष्ठ रूसी बाल-कथाएं

श्रेष्ठ रूसी बाल-कथाएं

चित्रकार – गेओर्गी यूदिन

अनुवादक – योगेन्द्र नागपाल

ГУТТАПЕРЧЕВЫЙ МАЛЬЧИК
Сборник

Рассказы русских писателей
для детей

На языке хинди

THE GUTTAPERCHA BOY
An anthology

Russian and Soviet Classics
for Children Series

In Hindi

संकलन, भूमिका और
लेखक-परिचय : ई० मत्याशोव

दूसरा संस्करण : १९८९

सोवियत संघ में प्रकाशित

ISBN 5-05-002410-2

अनुक्रम

७ प्रेम की लेखनी (भूमिका)

१९ अन्तोन चेख़ोव। लाखी

४९ इवान तुर्गेनेव। बेझिन चरागाह

७९ द्मीत्री मामिन-सिबिर्याक। हिरनौटा

९५ निकोलाई तेलेशोव। घर की ललक

११५ लेओनीद अन्द्रेयेव। बस एक याद

१३१ अलेक्सान्द्र कुप्रिन। मदारी

१७३ फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की। पराये घोंसले में

१८५ द्मीत्री ग्रिगोरोविच। रबड़ का पुतला

२०९ कोन्स्तन्तीन स्तन्युकोविच। मक्सीम्का

२४९ व्सेवोलोद गार्शिन। सिग्नल

२६५ लेव तोलस्तोय। कोहकाफ़ का बंदी

प्रेम की लेखनी

१९ वीं सदी के महान लेखकों दोस्तोयेव्स्की, चेखोव, तोलस्तोय के नाम सारा संसार जानता है। ये लेखक और इनका साहित्य रूस का राष्ट्रीय गौरव हैं। हम सोवियत लोगों को १९ वीं सदी के अपने साहित्य पर गर्व है, क्योंकि यह मानव प्रेम से, मानव वेदनाओं के प्रति सहानुभूति और मानव सुख के सपने से जन्मा साहित्य है। हमें अपने साहित्य पर गर्व है क्योंकि यह सदा भलाई का साहित्य रहा है, हिंसा, क्रूरता और जातीय शत्रुता का पर्दाफ़ाश करता रहा है और संसार के सभी लोगों की मैत्री एवं भाईचारे का संदेश देता रहा है। हमें अतीत के रूसी साहित्य पर गर्व है, क्योंकि वह सदा सत्य और न्याय की रक्षा करता था, उन लोगों के समर्थन में आवाज़ बुलंद करता था, जो अन्याय और बुराई का शिकार थे।

१९ वीं शताब्दी के रूसी लेखकों में एक भी ऐसा नहीं था, जिसने बच्चों के बारे में या बच्चों के लिए न लिखा हो। बच्चों को ही हमारे साहित्यकार

जनता का, देश का भविष्य मानते थे। वे बड़ों की क्रूरता से और समझ के अभाव से बच्चों की रक्षा करने की चेष्टा करते थे। उन्हें इस बात की चिंता थी कि किस तरह बच्चे बुद्धिमान, बलवान, भले और सुखी लोग बनें।

रूस में १९ वीं सदी जनता की कंगाली और कष्टों का युग थी। १८६१ तक देश में भूदास प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार किसी ज़मींदार की ज़मीन पर जो भी किसान रहता था वह उसका दास होता था। ज़मींदार किसानों को बेच और ख़रीद सकता था। उसके मन में आता तो वह उन्हें कोड़े मार-मारकर उनकी जान ले सकता था और कोई उससे पूछनेवाला नहीं था। १८६१ में ज़ार ने भूदास प्रथा ख़त्म कर दी, लेकिन इसके बाद भी जनता के जीवन में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। पहले की ही भांति अमीर अमीर थे और ग़रीब ग़रीब। पहले की ही तरह ग़रीब आदमी भूख, जीतोड़ मेहनत और अमीरों के ज़ुल्मों से पीड़ित था।

बच्चों की दशा विशेषत: दयनीय थी। यहां तक कि अमीर घरों के बच्चे भी, जिन्हें किसी बात की तंगी न थी और जिन्हें पढ़ने-लिखने के अवसर प्राप्त थे, वे भी जीवन के सच्चे आनन्द और आज़ादी से वंचित थे। और ग़रीबों के बच्चों को तो छोटी उम्र से ही दो जून की रोटी कमाने के लिए मेहनत करनी पड़ती थी, प्राय: वे सभी अनपढ़ रहते थे, उन्हें निरंतर कठिनाइयों से जूझना पड़ता था और बहुधा असमय ही वे मौत का ग्रास बनते थे।

फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की ने एक कहानी लिखी थी 'क्रिस्मस और बालक'। इस कहानी का नन्हा नायक ग़रीबों के ठंडे रैनबसेरे में रात को मर गई मां के पास जागता है। वह सोचता है कि मां सो रही है और बाहर चला जाता है। घरों की खिड़कियों में वह देखता है कि कैसे खाते-पीते लोग क्रिस्मस मना रहे हैं। आख़िर में वह भूखा, ठंड से ठिठुरता हुआ एक मकान की दीवार के पास ही खुले अहाते में सो जाता है और फिर अपनी मां की तरह कभी भी नहीं जागता।

बेशक, दोस्तोयेव्स्की ने यह कहानी इन अभागों के लिए नहीं लिखी थी, जो पढ़ भी नहीं सकते थे। उन्होंने यह कहानी उन बच्चों के लिए लिखी थी, जो गर्म घरों में रहते थे और सुंदर पुस्तकें पढ़ते थे ताकि उनके दिलों में दुखियों के लिए करुणा और सहानुभूति जागे।

एक दूसरे महान रूसी लेखक अन्तोन चेख़ोव ने लिखा था : "बचपन में मैंने बचपन न देखा"। वह एक छोटे से शहर के छोटे से दुकानदार के बेटे थे। छोटी उम्र में ही उन्हें घर का काम करना पड़ा, पिता की दुकान में हाथ बंटाना पड़ता था, और दुकान ऐसी थी कि वहां गर्मियों में भी सीलन और ठंड होती थी। इन अभावों ने उनके स्वास्थ्य की जड़ काट दी। चवालीस वर्ष की आयु में तपेदिक़ से उनकी मृत्यु हो गई। बच्चों के बारे में चेख़ोव की कहानियां प्रेम, करुणा और बाल-आत्मा की गहरी समझ से ओतप्रोत हैं। इनमें न केवल दुख की, बल्कि हंसी-ख़ुशी की भी बहुत सी बातें हैं। बचपन में उन्होंने स्वयं बहुत कम ख़ुशी पाई थी, अतः वह भली भांति समझते थे कि बच्चों को इस ख़ुशी की कितनी आवश्यकता होती है और अपनी रचनाओं में उन्हें इसे प्रदान करने का प्रयत्न क़रते थे। वह बड़ों का यह आह्वान करते थे कि बच्चों के साथ उनके सम्बन्ध "सबोध सत्य" पर आधारित होने चाहिए। चेख़ोव के मित्र लेखक कुप्रिन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि किस तरह मृत्यु से कुछ समय पूर्व क्रीमिया में चेख़ोव की एक चार साल की बच्ची से मैत्री हो गई : "नन्ही बच्ची और अधेड़, उदास मनुष्य., विख्यात लेखक के बीच एक विशिष्ट, गम्भीरता और विश्वास भरी मित्रता के सम्बन्ध स्थापित हो गए। बड़ी देर तक वे दोनों बरामदे में बेंच पर बैठे रहते थे ; चेख़ोव बड़े ध्यान से, एकाग्रचित्त होकर बच्ची की बातें सुनते थे ..."

बच्चों का स्वर सुन पाना, उनके जीवन का सच्चा चित्रण करना, उन्हें शिक्षा देने से पहले उन्हें समझने का यत्न करना – सभी रूसी लेखकों ने इस पथ का अनुसरण किया। लेव तोलस्तोय कहते थे : "स्कूली छात्र भले ही नन्हे मानव हैं, लेकिन ऐसे मानव हैं, जिनकी हमारे जैसी ही आवश्यकताएं हैं और जो हमारे भांति ही सोचते-विचारते हैं।" रूसी बाल-साहित्य की शक्ति इसी बात में है कि बच्चों से बातचीत करते हुए वह उनका आदर करता है।

हमारे महान लेखक बच्चों के लिए साहित्य को वह सजीव सूत्र मानते थे, जो "बच्चों के कमरे से बाहर ले जाता है और सारे संसार से जोड़ता है"। ये मामिन-सिबिर्याक के शब्द हैं, जिन्होंने बच्चों के चरित्र-निर्माण में पुस्तकों की भूमिका के बारे में लिखा था :

"मेरे लिए अभी तक प्रत्येक बाल-पुस्तक जीवनदायिनी है, क्योंकि वह बाल-आत्मा को जगाती है, बच्चे के विचारों को निश्चित दिशा में बढ़ाती है और लाखों बाल-हृदयों के स्पंदन में उसके हृदय का स्पंदन मिलाती है। बाल-पुस्तक वसंती किरण है, जो बाल-आत्मा की सुप्त शक्तियों को जागृत करती है और इस उर्वरा धरती पर डाले गए बीजों को उगाती है। इस पुस्तक की बदौलत ही सब बच्चे एक विराट आत्मिक परिवार के सदस्य बन जाते हैं, जिसमें कोई नृवंशीय और भौगोलिक सीमाएं नहीं होतीं।"

बच्चों के प्रति अपने गम्भीर रुख की बदौलत ही रूसी लेखक बाल-पुस्तकों की रचना में अपने उत्तरदायित्व को भली भांति समझते थे। प्रसिद्ध कहानी 'मुमू' के लेखक इवान तुर्गेनेव ने लिखा था: "बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकें लिखना अत्यंत कठिन है। इसके लिए विषय का गम्भीर एवं पूर्ण अध्ययन, मानव हृदय और विशेषत: बाल-हृदय का ज्ञान, सरल और स्पष्ट भाषा में, लीपा-पोती और फूहड़पन के बिना बात कहने की योग्यता तथा धीरज ही पर्याप्त नहीं है। यह सब तो होना ही चाहिए और इसके अतिरिक्त लेखक के नैतिक एवं सामाजिक विकास का उच्च स्तर होना भी नितांत आवश्यक है।"

यह अंतिम शर्त – "नैतिक एवं सामाजिक विकास का उच्च स्तर" – विशेषत: महत्वपूर्ण है। बच्चों के लिए लिखनेवाला सर्वप्रथम नैतिक दृष्टि से अच्छा व्यक्ति होना चाहिए। उसे एक अच्छा नागरिक होना चाहिए – उसके मन में अपने जनगण, अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम होना चाहिए। अपने उच्च नागरिक और नैतिक गुणों के बल पर ही रूसी लेखक बच्चों के लिए अपने ज़माने के जीवन का सच्चा चित्रण कर सके, उन्होंने बुराइयां नहीं छिपाईं और अच्छाई को भी नहीं भूले।

मामिन-सिबिर्याक ने एक बार लिखा: "हमारे रूसी जीवन की कमियां, उसकी बुराइयां सभी रूसी लेखकों का मनपसंद विषय हैं। लेकिन यह तो केवल नकारात्मक पहलू हुआ, दूसरा सकारात्मक पहलू भी तो होना चाहिए। वरना, हम जी न सकते, सांस न ले सकते, सोच न सकते... कहां है यह जीवन? कहां हैं वे रहस्यमयी स्रोत, जिनसे रूस का यातनाओं भरा इतिहास रिसता रहा है? कहां हैं वे पथ जिन पर हमारे महाबली चला करते थे?"

इन सब प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में संकलित कहानियां देती हैं। इनमें पिछली सदी के बुर्जुआ-ज़ारशाही रूस के जीवन का पचास वर्ष का काल प्रतिबिम्बित हुआ है।

इन कहानियों को पढ़ते हुए तुम इनके लेखकों और नायकों के साथ पुराने मास्को और सेंट पीटर्सबर्ग की झलक देखोगे, क्रीमिया के सूर्य स्नात तट पर टहलोगे और साइबेरिया की खुली सड़क पर चलोगे, जहां सायं-सायं करती ठंडी हवाएं बहती हैं और शरद ऋतु की कभी न ख़त्म होनेवाली बारिश बरसती है। कल्पना के पंख तुम्हें गर्मियों में उराल के जंगलों में ले जाएंगे, जहां पहाड़ियों और फ़र वृक्षों के घने कुंजों में हिरन विचरते हैं। और तुम देखोगे कोहकाफ़ की चोटियां, हिंद महासागर में पहुंचोगे, जहां रूसी मल्लाह जहाज़ पर संसार का चक्कर लगा रहे होते हैं। 'बेझिन चरागाह' कहानी के लेखक के साथ तुम गर्मियों की छोटी सी रात रूस के केंद्रीय भाग में, काली मिट्टीवाले उपजाऊ इलाक़े में बिताओगे, जहां दक्षिणी रूस के वनहीन सपाट मैदान – स्तेपियां – उत्तर के घने जंगलों से मिलते हैं और खेत आज भी उतने ही खुले हैं तथा नदियां वैसे ही मंथर गति से बहती हैं, जैसे सौ साल पहले।

रूस के इन पथों पर, इन रास्तों पर, जो हज़ारों मील तक चले गए हैं, तुम किसानों, शिकारियों, कारीगरों, सरकस के नटों, लाइनमैनों, फ़ौजी अफ़सरों, सिपाहियों, मल्लाहों, कालेपानी से भागे क़ैदियों, शिक्षकों, अमीर साहबों और उनके नौकरों – भांति-भांति के लोगों से मिलोगे।

और तुम्हें अपने बहुत से हमउम्र भी मिलेंगे – नगरों और देहातों के ग़रीब बच्चे, अभागे अनाथ, जिनके माता-पिता असमय ही मर गए, या जिन्हें ग़रीबी की वजह से अपने बच्चों को कहीं कुछ काम सिखाने के लिए बिठाना पड़ता था, ताकि वे इन्सान बन सकें। साथ ही ऐसे शहज़ादे भी मिलेंगे, जो अपने बाप की दौलत और नौकरों की जी-हुज़ूरी से बिगड़ गए।

ध्यान देने लायक़ बात है: रूसी लेखक जब बच्चों के बारे में लिखते हैं, तो वे प्रायः सदा ही बच्चों के कष्टों, दुखों की बात करते हैं। 'हिरनौटा' कहानी का नन्हा ग्रिशूक सख़्त बीमार है। 'घर की ललक' कहानी में बालक को रास्ते में सर्दी लग जाती है और वह बीमार पड़ जाता है। दोस्तोयेव्स्की की

कहानी का नायक दुखी है, क्योंकि मास्टर और क्लास के लड़के हर वक़्त उसका मज़ाक़ उड़ाते रहते हैं। 'कोहकाफ़ का बंदी' कहानी में तातार बच्ची दीना रूसी अफ़सर झीलिन की पीड़ा को अपनी पीड़ा की तरह महसूस करती है। लेओनीद अन्द्रेयेव की कहानी में बावर्चिन का बेटा पेत्का दहाड़ें मार-मारकर रोता है, क्योंकि उसे शहर लौटना होगा, जहां सुबह से शाम तक कोल्हू के बैल की तरह काम में जुता रहना होगा, मालिक की गालियां सुननी होंगी और थप्पड़ खाने होंगे। ग्रिगोरोविच की कहानी 'रबड़ का पुतला' का नायक सरकस में तमाशा दिखाते हुए ऊंचे बांस से गिरकर मर जाता है।

"पर यह तो केवल नकारात्मक पहलू है," मामिन-सिबिर्याक के साथ हम भी आपत्ति कर सकते थे, अगर इन सब कहानियों के लेखकों ने इस अंधकारमय, असह्य जीवन का उज्ज्वल पहलू न दिखाया होता, अगर इन कहानियों में दरिद्रता, अन्याय और दुख के पहाड़ों में से भलाई और सत्य के सशक्त सोते न फूटते होते।

रूस के एक सबसे बड़े मानवतावादी लेखक अंतोन चेख़ोव की कहानी 'लाखी' एक कुत्ते के बारे में है। लेखक ने यह विषय अकारण ही नहीं चुना। चेख़ोव ने लिखा था: "बच्चों के जीवन और यादों में घरेलू जानवरों की भूमिका निस्संदेह हितकर होती है। हम में कौन ऐसा है जिसे नहीं याद – ताक़तवर, पर उदार कुत्ते, पिंजड़े में मरती चिड़ियां और बूढ़ी बिल्लियां, जो हमें हमेशा माफ़ करती थीं, जब हम शरारत में उनकी दुम दबाकर उन्हें भयानक पीड़ा पहुंचाते थे? मुझे तो कभी-कभी लगता है कि हमारे घरेलू जीवों में जो सहनशीलता, वफ़ादारी, निष्पटता और सब कुछ माफ़ करने की भावना पाई जाती है, उसका बच्चे के मनोमस्तिष्क पर जितना प्रबल और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, उतना मास्टर जी की नीरस बातों का नहीं।"

'लाखी' वफ़ादारी की कहानी है। यह एक कुतिया की कहानी है, जो शराबी तरखान लुका और उसके पोते फ़ेद्युश्का की कोठरी में रहती थी। उसे मार भी खानी पड़ती थी और भूख भी सहनी पड़ती थी, पर वह इसे ही अपना घर मानती थी और इन लोगों को अपने क़रीबी लोग। अचानक कुतिया शहर के भीड़-भड़क्के में खो जाती है। जानवरों का तमाशा दिखानेवाला सरकस का

कलाकार उसे अपने घर ले जाता है, उसे अच्छा खाना खिलाता है, तरह-तरह के करतब सिखाता है, उसके साथ नेकी और प्यार का बर्ताव करता है। लेकिन कुछ महीने बाद कुतिया जब अपने पहले मालिकों को देखती है, तो वह उनके पास भाग जाती है। और सच्चे अर्थों में सुखी महसूस करती है। कहानी पढ़ते हुए हम भी कुतिया, तरखान लुका और बालक फ़ेद्युश्का के साथ ख़ुश होते हैं, क्योंकि कुतिया का लौट आना प्रेम की विजय है, जो न अच्छे खाने से और न मीठी बातों से ख़रीदा जा सकता है।

मामिन-सिबिर्याक की कहानी 'हिरनौटा' भी वफ़ादारी की, प्रेम की सर्वविजयी शक्ति की कहानी है। बीमार बच्चा ग्रिशूक अपने दादा से हिरनौटे का शिकार कर लाने को कहता है। बूढ़े शिकारी के लिए पहाड़ों में भटकना आसान नहीं, पर वह पोते की जान बचाने की ख़ातिर तीन दिन तक ताइगा जंगल में भटकता रहता है और आख़िर हिरन की खुरी देख लेता है। फिर वह काफ़ी देर तक हिरनौटे को नहीं ढूंढ़ पाता, क्योंकि मां हिरनी अपनी जान ख़तरे में डालकर शिकारी को अपने बच्चे से दूर ले जाने की कोशिश करती है। पर बूढ़ा भी हठी है। आख़िर वह हिरनौटे को ढूंढ़ लेता है। और तभी एक अप्रत्याशित बात होती है। हम पढ़ते हैं: "बस एक क्षण और, और नन्हा हिरनौटा अंतिम चीख के साथ घास पर लुढ़क जाता, पर इसी क्षण बूढ़े शिकारी को याद हो आया कि कितनी वीरता के साथ इसकी मां इसकी रक्षा कर रही थी, यह भी याद हो आया कि कैसे उसके ग्रिशूक की मां ने अपनी जान देकर बेटे को भेड़ियों का निवाला होने से बचाया था। बूढ़े येमेल्या के दिल पर सहसा एक चोट सी लगी, और उसने बंदूक़ नीची कर ली।"

कहानी का अंत अनुपम है। येमेल्या अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ी में लौटता है, वह बीमार पोते की बात पूरी न कर सका था। वह बच्चे को अपने असफल शिकार की कहानी सुनाता है। और बच्चा हंसता है। रात बीते तक वह दादा से पूछता रहता है कि हिरनौटा कैसा था और कैसे वह भाग गया। लेखक इन शब्दों के साथ कहानी ख़त्म करता है: "...बच्चा सो गया और सारी रात उसे सपने में नन्हा सा पीला-पीला हिरनौटा दिखाई देता रहा, जो जंगल में अपनी मां के साथ घूम रहा था; बूढ़ा भी अलावघर पर सो रहा था और नींद में मुस्करा रहा था।"

इस सीधी-सादी सी कहानी में कितना मर्म है! इसमें प्रेम के नाम पर, जिसे प्रेम करते हो उसके लिए किए गए आत्मबलिदान के सौंदर्य का गुणगान किया गया है। और इसमें यह भी दिखाया गया है कि कैसे भलाई भलाई को जन्म देती है: जानवर के प्रति सहृदयता दिखाई तो उससे इन्सान का भी भला हुआ। शिकारी दादा की सहृदयता और ज़िंदा बच गए हिरनौटे के लिए खुशी ग्रिशूक के लिए मारे गए पशु के मांस से अधिक आरोग्यकर सिद्ध होती है।

बच्चे और बड़े... उनके बीच सम्बन्धों का चित्रण करते हुए रूसी लेखक सदा बच्चों का पक्ष लेते हैं। ग्रिगोरोविच की कहानी 'रबड़ का पुतला' के कलाबाज़ बेक्कर से हमें नफ़रत होती है क्योंकि वह बड़ा और बलवान होते हुए भी अपनी शक्ति का उपयोग नन्हे पेत्या की रक्षा के लिए नहीं करता, बल्कि उसके दिल में डर बिठाने, उससे अपनी हर बात मनवाने के लिए करता है। स्तन्युकोविच की कहानी 'मक्सीम्का' में अमरीकी जहाज़ का कप्तान भी घिनौना है, जो हब्शियों को चोरी-चोरी बेचता है। जब नीग्रो लड़का मल्लाहों को बताता है कि कैसे उसका मालिक उसे पीटता था, तो पाठक को सचमुच इस बात पर खुशी होती है कि दुष्ट कप्तान जहाज़ दुर्घटना में मर गया।

बड़े सदा बच्चों से अधिक ताक़तवर होते हैं। पर बच्चे केवल उनकी ताक़त पर ही निर्भर नहीं होते। वे बड़ों पर इसलिए भी निर्भर होते हैं कि बड़े उन्हें रोटी, कपड़ा देते हैं, रहने को जगह देते हैं। परंतु जो आदमी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इस निर्भरता का लाभ उठाता है, वह दुष्ट है, बुराई करता है। रूसी साहित्य यही मानता था और उस मानव का यशगान करता था, जिसके मन में बच्चों के लिए प्रेम है, जो बच्चों की सेवा करता है, उन्हें मुसीबतों से, अन्याय से बचाता है।

तेलेशोव की कहानी 'घर की ललक' में हम कालेपानी से भाग आए अपराधी को देखते हैं, जो बीमार पड़ गए बच्चे को बचाने के लिए उसे शहर में ले जाता है और पुलिस के हाथ पड़ता है। हम नहीं जानते कि उसने क्या अपराध किया था। लेकिन हम देखते हैं कि वह स्वेच्छा से अपनी आज़ादी और, हो सकता है, जीवन की भी बलि देता है, ताकि एक अनजान बच्चे को मौत के मुंह से बचा सके। और उसका यह पराक्रम हमारे हृदय को छू जाता है।

हम एड्वड्र्स जोकर पर भरोसा करने लगते हैं, जो पेत्या को बेक्कर के घूंसों से बचाता है। हमें शराबी मल्लाह भी अच्छा लगता है, जो स्तन्युकोविच की कहानी में नीग्रो बच्चे को संरक्षण देता है, प्यार से उसका नाम मक्सीम्का रखता है, अपनी थोड़ी सी रसद में से उसके लिए जूते और कपड़े सीता है और यहां तक कि बच्चे के प्रति अपना उत्तरदायित्व और पिता का स्नेह अनुभव करते हुए वह पहले की तरह नशे में धुत्त होना भी छोड़ देता है।

इस पुस्तक की कहानियों में तुम्हें कुछ ज़िद्दी, बिगड़े बच्चे मिलेंगे, जैसे कि 'मदारी' कहानी का त्रिल्ली। पर तुम इन कहानियों में कोई दुष्ट, नीच या कमीना बच्चा नहीं पाओगे, जैसे कि कुछ बड़े इन कहानियों में हैं। त्रिल्ली जैसे बच्चे भी अपने स्वार्थ के लिए स्वयं इतने दोषी नहीं हैं, जितने कि उनका लालन-पालन करनेवाले बड़े लोग। बच्चों में तो मानव स्वभाव के सभी सद्गुण सहज रूप में होते हैं, वे निष्कपट और निर्दोष होते हैं। 'बेझिन चरागाह' कहानी का लेखक हमें अनपढ़ भूदास बच्चों के अंधविश्वासों में भी कैसी सहज सरलता और सच्ची काव्यमयता दिखाता है! और 'कोहकाफ़ का बंदी' में दुबली-पतली दीना का हृदय सहानुभूति, अनुकम्पा और प्रेम का कैसा अथाह स्रोत है!

बच्चों में जाति या नस्ल का कोई अंधविश्वास नहीं होता, जो कुछ बड़ों में पाया जाता है। दीना को अपने पिता के क़ैदी पर रहम आता है और वह उसकी मदद करती है, हालांकि गांव वाले रूसियों को अपना दुश्मन समझते हैं। दीना के लिए झीलिन सबसे पहले एक भला आदमी है, जो खिलौने बनाकर बच्चों को ख़ुशियां बांटता है। 'मक्सीम्का' कहानी मानव-बंधुत्व की भावना में पगी है। रूसी मल्लाहों के बीच नन्हा नीग्रो बालक अपने आप को इन्सान महसूस करता है, बड़ों की हितचिंता और स्नेह पाता है और इसका जवाब बाल-हृदय के असीम प्रेम और लगाव से देता है।

बड़ों का अनुभव उन सब के लिए सदा बहुत महत्वपूर्ण होता है, जो अभी किशोर हैं, अनुभवहीन हैं। बचपन में बोए गए भलाई के बीज बड़ों के बर्ताव में भलाई की पुष्टि पाकर ही सबसे अच्छी तरह विकसित होते हैं। मौत के ख़तरे के सामने भी झीलिन जिस साहस और आत्मसम्मान का परिचय देता है, वह आकर्षक है। गार्शिन की कहानी 'सिग्नल' के लाइनमैन सेम्योन का पराक्रम

अनुपम है। वह अपनी जान खतरे में डालकर सवारी गाड़ी को उलटने से बचाता है। और हमें यह देखकर हैरानी नहीं होती कि वही बसीली, जिसने रेलवे के अफ़सरों के अन्याय का बदला लेने के लिए रेल उखाड़ दी थी, सेम्योन का ख़ून से रंगा रूमाल उठा लेता है और गाड़ी को रोकता है। हमें इस पर आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि सेम्योन की आत्मबलिदान की तत्परता देखकर, यह देखकर कि किस तरह वह अपनी जान देकर भी बेगुनाह लोगों को बचाना चाहता है, कुछ और किया ही नहीं जा सकता। सेम्योन की यह तत्परता सभी तर्कों से अधिक अच्छी तरह हमारे मन में यह बात बिठाती है कि मानव प्रेम और अंतः-करण ही मनुष्य के कर्मों का सबसे बड़ा मापदंड हैं।

ये कहानियां पढ़कर तुम इन पर मनन करना। याद करना कि कैसे दोस्तो-येव्स्की के नायक को यह बात सताती है कि मां से मिलने पर उसने रुखाई बरती थी, कैसे मां के प्रति जो प्रेम उसने प्रकट नहीं किया वह उसके मन को कचोटता है। कल्पना में उराल के शिकारी येमेल्या के साथ शिकार पर जाना और सेम्योन के साथ तेज़ी से चली आ रही रेलगाड़ी के रास्ते पर खड़े हो जाना। और तुम देखोगे कि यहां वर्णित घटनाएं भले ही दुख भरी हैं, लेकिन फिर भी जीवन आशाहीन नहीं, उसमें ऐसा भी कुछ है, जिसके लिए ख़ुश होना, कष्ट सहना और संघर्ष करना चाहिए। तुम देखोगे कि भलाई हर जगह है, एक आदमी से दूसरे में फैलती है और इस तरह वह अमर है, वह एक जादुई शक्ति की भांति एक आत्मा से दूसरी को मिलाती है, बच्चों और बड़ों को एक सूत्र में पिरोती है, अंधे को दृष्टि और मूर्ख को बुद्धि प्रदान करती है, बुरे को भला और उदासीन को सहृदय बनाती है, सभी लोगों को एक मानव परिवार में बांधती है।

जब मामिन-सिबिर्याक की पुस्तक 'सुनो कहानी, बिटिया रानी' प्रकाशित हुई थी, तो उन्होंने अपनी माता को लिखा था : "यह मेरी प्यारी पुस्तक है – यह प्रेम की लेखनी से लिखी गई है, इसलिए यह शेष सभी रचनाओं से अधिक समय तक बनी रहेगी।"

'हिरनौटा' पुस्तक में संकलित कहानियां इसीलिए आज तक पढ़ी जाती हैं कि ये "प्रेम की लेखनी" से लिखी गई हैं।

इन कहानियों के लिखनेवाले कब के इस संसार में नहीं रहे। पुराने ज़माने का ग़रीबी और भुखमरी का मारा रूस भी कब का वैसा नहीं रह गया। लेकिन सोवियत संघ के विशाल विस्तार में अब उन लोगों के वंशज और आत्मिक उत्तराधिकारी रहते हैं, जिन्होंने पुराने ज़माने में भलाई के लिए श्रम किया, कष्ट उठाए। हमारे समसामयिक लोग धरती के प्रति, प्रकृति के प्रति, श्रम के प्रति, बच्चों और सभी लोगों के प्रति प्रेम को उन दिनों से धरोहर में मिली अमर ज्योति के रूप में अपने विचारों और कार्यों में बनाए हुए हैं। यह वही प्रेम भावना है, जिसका गुणगान युवा पीढ़ी के लिए लिखी अपनी रचनाओं में रूस के महान लेखकों ने किया था।

ईगर मत्याशोव

अन्तोन चेख़ोव

लाखी

कहा जाता है कि 'लाखी' कहानी में चेख़ोव ने पशुओं को साधनेवाले विख्यात सरकस कलाकार व्लादीमिर दूरोव के साथ हुई घटना वर्णित की है।

महान मानवतावादी लेखक चेख़ोव पशु-पक्षियों को बहुत प्यार करते थे। उनके घर में सदा कोई न कोई पशु-पक्षी रहते थे। इनमें डेक्शंड नस्ल के कुत्ते ब्रोम और ख़ीना थे, दोगले पिल्ले लाखी और बेलालोबी (सफ़ेद माथेवाला) थे, एक सारस भी उन्होंने पाल रखा था। दूरोव चेख़ोव के अच्छे मित्र थे। उन्होंने पशुओं को साधने की नई विद्या की नींव रखी। इस विद्या की विशिष्टता यह थी कि दूरोव चाबुक की मदद से नहीं, बल्कि प्रेम एवं स्नेह से तथा प्रोत्साहन देकर जानवरों को तरह-तरह के करतब सिखाते थे। दूरोव के पोते-परपोते अब तक इस परम्परा को बनाए हुए हैं। वे सोवियत सरकस में काम करते हैं।

चेख़ोव को सरकस देखने का शौक़ था।

'लाखी' कहानी पहली बार 'नोवये व्रेम्या' समाचारपत्र में २५ दिसम्बर १८८७ को छपी। इसके पांच वर्ष पश्चात ही चेख़ोव इसे बच्चों के लिए पुस्तक के रूप में छाप सके। पुस्तक अत्यंत लोकप्रिय हुई। "खाने के समय... बच्चे एकटक मुझे देखते रहते हैं और इस इंतज़ार में रहते हैं कि मैं कोई बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण बात कहूंगा। उनके विचार में मैं मेधावी हूं, क्योंकि मैंने 'लाखी' की कहानी लिखी है"—अपने भाई को एक पत्र में चेख़ोव ने मज़ाक़ के साथ लिखा था। उनके जीवनकाल में (१८६०—१९०४) 'लाखी' के दस संस्करण छपे। आज तक यह सोवियत बच्चों की एक सबसे प्रिय पुस्तक है।

बच्चों को अन्तोन पाव्लोविच चेख़ोव की दूसरी कहानियां—'वान्का', 'भगोड़ा', 'स्तेपी', 'लड़के', 'घटना', 'नींद आ रही है' और 'बच्चे' भी बहुत पसंद हैं। सरल और सुंदर भाषा में लिखी इन कहानियों में लोगों और जीवन का गहरा ज्ञान है, हल्की उदासी का पुट लिए मृदु "चेख़ोवी" हास्य है और है ऐसे जीवन का स्वप्न, जो मानव के जीने योग्य हो, "अकलुष, सुंदर और काव्यमय" हो।

१. बेहूदे तौर-तरीक़े

दोगली नस्ल की छोटी सी सुर्ख़ी कुतिया, जिसकी थूथनी बिल्कुल लोमड़ी जैसी थी, फ़ुटपाथ पर आगे-पीछे दौड़ रही थी और बेचैन सी इधर-उधर देख रही थी। कभी-कभी वह रुक जाती, रोते हुए ठंड से अकड़ा एक पंजा या दूसरा पंजा ऊपर उठाती और यह समझने की कोशिश करती कि आख़िर वह भटक कैसे गई।

उसे अच्छी तरह यह याद था कि उसने दिन कैसे बिताया और कैसे आख़िर में इस अनजाने फ़ुटपाथ पर आ पहुंची।

दिन यों शुरू हुआ कि उसके मालिक लुका अलेक्सान्द्रिच नाम के तरखान ने कनटोप पहना, लाल कपड़े में लपेटकर लकड़ी की कोई चीज़ बगल में दबाई और चिल्लाया :

"लाखी, चल!"

अपना नाम सुनकर दोगली कुतिया ठिये के नीचे से निकली, जहां वह

छीलन पर सो रही थी, जिस्म तोड़ा और मालिक के पीछे हो ली। लुका अलेक्सान्द्रिच के ग्राहक बहुत ही दूर रहते थे, इसलिए उनके घर तक पहुंचने से पहले तरखान को कई बार भठियारख़ाने में जाना पड़ता था और बूंद-दो बूंद से गला तर करना पड़ता था। लाखी को याद था कि रास्ते में उसके तौर-तरीक़े ख़ासे बेहूदा रहे थे। इस ख़ुशी से कि मालिक उसे घुमाने ले जा रहा है, वह उछल-कूद रही थी, घोड़ा-ट्रामों के पीछे भौंकती हुई दौड़ती थी, अहातों में घुस जाती थी और दूसरे कुत्तों का पीछा करती थी। अक्सर वह तरखान की नज़रों से ओझल हो जाती। वह रुक जाता और गुस्से में उस पर चीखता-चिल्लाता। एक बार तो चेहरे पर ऐसा भाव लाकर कि मानो उसे खा ही जाएगा, उसने लाखी का लोमड़ी जैसा कान मुट्ठी में भरकर ऐंठा और एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए बोला :

"कमबख़्त! तेरा ... सत्या ... नास ... हो!"

ग्राहकों को सामान पहुंचाकर लुका अलेक्सान्द्रिच दो मिनट को बहन के घर गया, वहां चबैने के साथ कुछ पी; फिर जान-पहचान के एक जिल्दसाज़ के यहां गया, वहां से भठियारख़ाने में, भठियारख़ाने से एक और रिश्तेदार के यहां, वग़ैरह, वग़ैरह। संक्षेप में यह कि जब लाखी इस अनजान फ़ुटपाथ पर पहुंची तो शाम हो रही थी और तरखान नशे में धुत्त था। वह ज़ोर-ज़ोर से हाथ हिलाते हुए आहें भर रहा था और बड़बड़ा रहा था :

"पाप में जन्मा मां ने गरभ में मेरे! ओह, हमारे पाप! पाप! अब चले जाते हैं सड़क पर, बत्तियां देख रहे हैं, मर जाएंगे, तो नरक की आग में जलेंगे।"

या फिर वह मस्ती में आ जाता, लाखी को अपने पास बुलाता और उसे कहता :

"अरी लाखी, तू तो बस एक जानवर है और कुछ नहीं। आदमी के सामने तो तू वैसे ही है, जैसे तरखान के सामने दो कौड़ी का बढ़ई।"

जब वह उससे यों बातें कर रहा था, तभी अचानक बैंड बजने लगा। लाखी ने सिर घुमाया और देखा कि सड़क पर सिपाहियों की एक टुकड़ी सीधी उसकी ओर बढ़ी आ रही है। लाखी बैंड-बाजे का शोर नहीं सह सकती थी,

वह उसे झिंझोड़ डालता था। लाखी बौखला उठी और किकियाने लगी। उसे यह देखकर बड़ी हैरानी हुई कि मालिक न तो डरा ही, न चीखा-चिल्लाया और भौंका ही, बल्कि मुंह फैलाकर मुस्कराने लगा, तनकर खड़ा हो गया और पूरे पंजे से सल्यूट मारा। यह देखकर कि मालिक तो विरोध कर नहीं रहा, लाखी और भी ज़ोर से रोने लगी, बदहवास हो गई और सड़क के दूसरी ओर भाग गई।

जब उसके होश ठिकाने आए, तो बैंड नहीं बज रहा था और सिपाही भी नहीं थे। वह सड़क पार करके उस जगह आई, जहां उसने मालिक को छोड़ा था, पर मालिक वहां था ही नहीं। वह आगे दौड़ी, फिर पीछे, एक बार फिर सड़क पार की, पर मालिक तो मानो ज़मीन में समा गया था। लाखी फ़ुटपाथ सूंघने लगी, ताकि मालिक की गंध से पता लगा सके कि वह किधर गया, पर कोई कमबख़्त इससे पहले रबड़ के नए गैलोश * पहने उधर से गुज़र गया था और अब सारी भीनी महकें रबड़ की बू से दब गई थीं, सो लाखी को कुछ पता न चल पा रहा था।

लाखी आगे-पीछे दौड़ रही थी, पर मालिक नहीं मिल रहा था और उधर अंधेरा होता जा रहा था। सड़क के दोनों ओर बत्तियां जल गईं, घरों की खिड़कियों में भी रोशनी हो गई। हिम के बड़े-बड़े फाहे गिर रहे थे और उनसे सड़क, घोड़ों की पीठें और कोचवानों की टोपियां सभी कुछ सफ़ेद रंग में रंगा जा रहा था, हवा में अंधेरा जितना गहराता जा रहा था, चारों ओर की वस्तुएं उतनी ही सफ़ेद होती जा रही थीं। लाखी के पास से, उसकी नज़रों के सामने अंधेरा करते हुए, उसे ठुकराते हुए अनजान ग्राहक लगातार आ जा रहे थे। (लाखी सभी इन्सानों को दो बिल्कुल असमान हिस्सों में बांटती थी: एक थे मालिक और दूसरे ग्राहक। दोनों के बीच बहुत बड़ा अंतर था: मालिकों को उसे मारने-पीटने का हक़ था और ग्राहकों को वह ख़ुद काटने का अधिकार रखती थी।) सारे ग्राहक कहीं जाने की जल्दी में थे और कोई उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था।

---

* बारिश के दिनों में चमड़े के जूतों के ऊपर पहने जानेवाली रबड़ की जूतियां। – सं०

जब बिल्कुल अंधेरा छा गया, तो लाखी हताश और भयभीत हो गई। वह किसी घर के दरवाज़े से सटकर बैठ गई और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। लुका अलेक्सान्द्रिच के साथ सारे दिन की इस "यात्रा" ने उसे थका डाला था, उसके कान और पंजे ठंड से अकड़ रहे थे और साथ ही उसे बड़े ज़ोरों की भूख लगी थी। सारे दिन में सिर्फ़ दो बार उसके मुंह में कुछ गया था: जिल्दसाज़ के यहां उसने थोड़ी सी लेई खाई थी और एक भठियारख़ाने में उसे सलामी का छिलका मिल गया था – बस और कुछ नहीं। अगर वह इन्सान होती तो शायद सोचती:

"नहीं, ऐसे जीना नामुमकिन है! इससे तो गोली मार लेना बेहतर है!"

२. रहस्मय अजनबी

पर वह कुछ नहीं सोच रही थी और बस रोती जा रही थी। जब हिम के फाहों से उसकी सारी पीठ और सिर ढक गए और वह निढाल होकर ऊंघने लगी, तभी दरवाज़े की चिटकनी खुली, चरमराहट हुई और दरवाज़ा लाखी की बगल में आ लगा। वह उछलकर खड़ी हो गई। खुले दरवाज़े में से कोई आदमी निकला, जो ग्राहकों की श्रेणी का था। लाखी चिचियाई थी और उसके पैरों तले आ गई थी, इसलिए वह उसकी ओर ध्यान दिए बिना नहीं रह सकता था। वह लाखी पर झुका और पूछने लगा:

"अरे तू कहां से आई? चोट लग गई क्या? बेचारी कुतिया... अच्छा नाराज़ मत हो... मेरे से ग़लती हो गई।"

लाखी ने बरौनियों पर लटक रहे हिमकणों के पीछे से अजनबी की ओर देखा और अपने सामने एक नाटे से, गोल-मटोल आदमी को पाया। उसकी दाढ़ी-मूंछें साफ़ मुंडी हुई थीं और चेहरा भरा हुआ था। सिर पर वह ऊंचा टोप पहने था और उसके ओवरकोट के बटन खुले थे। उंगलियों से उसकी पीठ पर गिरा हिम झाड़ते हुए वह कहता जा रहा था:

"अरे, तू किकियाती क्यों है? तेरा मालिक कहां है? लगता है तू खो गई? बेचारी कुतिया! अब हम क्या करें?"

अजनबी की आवाज़ में अपनेपन और स्नेह का आभास पाकर लाखी ने उसका हाथ चाटा तथा और भी अधिक दयनीय स्वर में किकियाने लगी।

"है तो तू बड़ी प्यारी!" अजनबी ने कहा। "बिल्कुल लोमड़ी है! .. अच्छा, तो क्या करें? चल मेरे साथ ही चल! शायद तू किसी काम आ जाए... पुच-पुच!"

उसने लाखी को पुचकारा और हाथ से इशारा किया, जिसका सिर्फ़ एक मतलब हो सकता था: "चल!" और लाखी चल दी।

यही कोई आधे घंटे बाद वह एक बड़े से कमरे में बैठी थी और सिर एक ओर को झुकाए कौतूहल के साथ अजनबी को देख रही थी, जो मेज़ पर खाना खा रहा था। खाना खाते हुए वह लाखी की ओर भी कुछ टुकड़े फेंकता जा रहा था... पहले उसने उसे रोटी दी और पनीर का हरा छिलका दिया, फिर गोश्त की बोटी, आधा समोसा, मुर्गी की हड्डियां। लाखी भूख के मारे यह सब इतनी जल्दी खा गई कि स्वाद का उसे पता ही नहीं चला। जितना ज़्यादा वह खाती जा रही थी, उतनी ही उसकी भूख तेज़ हो रही थी।

उसे इस तरह टूट-टूटकर खाते देखकर अजनबी कह रहा था: "ओह, तेरे मालिक तुझे खाना नहीं देते लगते! निरा हड्डियों का पुतला है तू।"

लाखी ने बहुत खा लिया था, पर उसका पेट नहीं भरा था, बस खाने का खुमार चढ़ गया था। खाने के बाद वह कमरे के बीचोंबीच टांगें फैलाकर लेट गई। उसके सारे शरीर में मीठी कसक सी हो रही थी। वह दुम हिलाने लगी। उधर उसका नया मालिक आरामकुर्सी में बैठा सिगार पी रहा था और इधर वह दुम हिलाते हुए यह मसला हल कर रही थी कि कहां रहना बेहतर है – अजनबी के यहां या तरखान के घर? अजनबी के घर में कोई खास चीज़ नहीं है, आरामकुर्सियों, सोफ़े, लैम्प और कालीनों के अलावा उसके कमरे में कुछ भी नहीं है, कमरा खाली-खाली लगता है, तरखान का सारा घर चीज़ों से भरा हुआ है: उसके पास मेज़ है, ठिया है, छीलन का ढेर है, रंदे, रुखानियां, आंरियां हैं, पिंजड़े में चिड़िया है और लकड़ी का छोटा सा टब है... अजनबी के घर में किसी चीज़ की गंध नहीं आती, तरखान के घर में सदा धूल छाई रहती है और सरेस, वार्निश और छीलनों की बढ़िया गंध आती है। पर अजनबी

के यहां एक बहुत अच्छी बात है – वह खाने को बहुत कुछ देता है और इन्साफ़ से यह भी कहना चाहिए कि जब लाखी उसके सामने मेज़ तले बैठी थी और गदगद सी उसकी ओर देख रही थी, तो उसने एक बार भी उसे ठोकर नहीं मारी, पैर नहीं पटके और एक बार भी नहीं चिल्लाया: "धुत! कमबख़्त कहीं की!"

सिगार पीकर नया मालिक बाहर गया और दो मिनट में ही छोटा सा गद्दा उठाए लौट आया।

"ऐ, कुतिया, इधर आ," सोफ़े के पास एक कोने में गद्दा रखते हुए उसने कहा। "लेट जा यहां। सो जा!"

फिर उसने लैम्प बुझा दिया और बाहर चला गया। लाखी ने गद्दे पर लेटकर आंखें मूंद लीं। बाहर से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आई, वह भी जवाब में भौंकना चाहती थी, पर अचानक उसके मन पर गहरी उदासी छा गई। उसे लुका अलेक्सान्द्रिच और उसके बेटे फ़ेद्युश्का की, ठिये तले आरामदेह जगह की याद हो आई... उसे याद आया कि जाड़ों की लंबी शामों में, जब तरखान रंदा चला रहा होता था या ऊंचे-ऊंचे अख़बार पढ़ता था तो फ़ेद्युश्का अक्सर उसके साथ खेला करता था... वह उसकी पिछली टांगें पकड़कर उसे ठिये के नीचे से निकाल लेता और ऐसे-ऐसे तमाशे करता कि लाखी की आंखों आगे तितरियां नाचने लगतीं और सारे जोड़ दुखते। वह उसे पिछले पैरों पर चलाता, उसकी घंटी बनाता, यानी उसकी दुम पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से हिलाता, जिससे लाखी चीखती और भौंकती; वह उसे तम्बाकू सुंघाता... सबसे दर्दनाक यह खेल था: फ़ेद्युश्का गोश्त की बोटी को धागे में बांध देता और लाखी को देता, जब लाखी बोटी निगल जाती, तो वह ठहाके मारता हुआ उसके पेट में से बोटी निकाल लेता। यादें जितनी तीखी होती जा रही थीं, उतने ही उदास स्वर में वह ज़ोर-ज़ोर से किकिया रही थी।

परंतु शीघ्र ही उदासी पर थकावट और गर्माहट छा गई... लाखी को नींद आने लगी। उसकी कल्पना में कुत्ते दौड़ने लगे; वह झबरीला कुत्ता भी उनमें था, जिसे आज उसने सड़क पर देखा था, उसकी आंख पर सफ़ेद दाग़ था और नाक के पास बालों के गुच्छे। फ़ेद्युश्का हाथ में रुखानी उठाए उस कुत्ते

का पीछा करने लगा, सहसा उसके बदन पर भी झबरीले बाल उग आए, वह खुशी-खुशी भौंकने लगा और लाखी के पास आ पहुंचा। उन दोनों ने बड़े प्रेम से एक दूसरे की नाक सूंघी और बाहर सड़क पर दौड़ गए ...

३. नई और बड़ी अच्छी जान-पहचान

लाखी जब जागी तो उजाला हो चुका था और बाहर से ऐसा शोर आ रहा था, जैसा केवल दिन के समय होता है। कमरे में कोई भी न था। लाखी ने जिस्म तोड़ा, जम्हाई ली और उखड़ी-उखड़ी सी कमरे का चक्कर लगाने लगी। उसने सारे कोने और फ़र्नीचर सूंघा, ड्योढ़ी में झांककर देखा पर वहां कोई दिलचस्प चीज़ न मिली। ड्योढ़ी के दरवाजे के अलावा कमरे में एक और दरवाजा भी था। कुछ देर सोचने के बाद लाखी ने दोनों पंजों से उसे खरोंचा, खोला और अगले कमरे में चली गई। यहां एक पलंग पर फ़्लेनिल का कम्बल ओढ़े ग्राहक सो रहा था। वह पहचान गई कि यह कल वाला अजनबी ही है।

वह गुर्राने लगी, पर फिर कल का खाना याद करके दुम हिलाने और सूंघने लगी।

उसने अजनबी के कपड़े और बूट सूंघे और यह पाया कि उनसे घोड़े की तेज़ गंध आती है। इस कमरे में एक और दरवाजा था, वह भी भिड़ा हुआ था। लाखी ने उसे खरोंचा, छाती से उस पर ज़ोर डाला और खोल लिया। दरवाजा खुलते ही वहां से बड़ी अजीब सी गंध आई, जिससे लाखी एकदम चौकन्नी हो गई। उसे लग रहा था कि कोई अप्रिय घटना होगी। गुर्राते और इधर-उधर झांकते हुए वह मैले दीवारी कागज़ वाले छोटे से कमरे में घुसी और डर के मारे फ़ौरन पीछे हट गई। उसने एक बिल्कुल ही अप्रत्याशित और भयावह दृश्य देखा था। फ़र्श तक गर्दन और सिर झुकाए, पंख फैलाए एक हल्का सुरमई हंस फुफकारता हुआ सीधा उसकी ओर बढ़ता आ रहा था। एक ओर को गद्दे पर सफ़ेद बिल्ला लेटा हुआ था। लाखी को देखकर वह उछला, उसने पीठ कमान की तरह तानी, दुम ऊंची कर ली, रोयें खड़े किए और वह भी फुफकारने लगा। कुतिया खासी डर गई, पर वह यह दिखाना नहीं चाहती

थी, सो ज़ोर से भौंकती हुई बिल्ले की ओर लपकी ... बिल्ले ने पीठ और भी ज़्यादा तान ली, फुफकार भरी और पंजा लाखी के सिर पर मारा। लाखी झट से पीछे हट गई, चारों पैरों पर बैठ गई और ज़ोर-ज़ोर से चीखते हुए भौंकने लगी; तभी हंस ने पीछे से आकर अपनी चोंच उसकी पीठ पर दे मारी। लाखी उछली और हंस पर झपटी ...

"क्या हो रहा है यह?" ग़ुस्से भरी ज़ोरदार आवाज़ आई और गाउन पहने, दांतों में सिगार दबाए अजनबी कमरे में आ गया। "क्या है यह सब? चलो अपनी-अपनी जगह।"

बिल्ले के पास आकर उसने उसकी पीठ पर ठोंगा मारा और कहा: "लेट जा, मुए!"

हंस की ओर मुड़कर वह चिल्लाया:

"इवान इवानिच, चलो अपनी जगह!"

बिल्ले ने चुपके से अपने गद्दे पर लेटकर आंखें मूंद लीं। उसकी थूथनी और मूंछों के भाव से लग रहा था कि वह ख़ुद भी इस बात पर ख़ुश नहीं है कि ताव में आकर लड़ने लगा। लाखी रोनी सी होकर किकियाने लगी, हंस ने अपनी गर्दन तान ली और जल्दी-जल्दी कुछ बोलने लगा। वह बड़े जोश से और साफ़-साफ़ कुछ कह रहा था, पर बिल्कुल कुछ भी समझ में न आता था।

"अच्छा, अच्छा!" मालिक ने जम्हाई लेते हुए कहा। "मिल-जुलकर रहना चाहिए।" उसने लाखी को सहलाया और बोलता गया: "तू डर नहीं ... यहां सब अच्छे हैं, कोई तुझे कुछ नहीं कहेगा। ठहर, तुझे हम पुकारेंगे कैसे? नाम के बिना तो काम नहीं चल सकता।"

अजनबी थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला:

"हुं, तेरा नाम होगा ... मौसी। समझी? मौसी!"

और कुछ बार "मौसी, मौसी" कहकर वह बाहर चला गया। लाखी बैठ गई और देखने लगी। बिल्ला ज़रा भी हिले-डुले बिना गद्दे पर बैठा हुआ था और सोने का बहाना कर रहा था। हंस गर्दन तानकर और एक ही जगह पर पैर बदलते हुए बड़े ज़ोर-शोर से कुछ कहता जा रहा था। वह शायद बड़ा

अक्लमंद हंस था ; लंबा सा भाषण देकर वह शान के साथ पीछे हट जाता और ऐसे देखता मानो खुद ही अपने भाषण पर मुग्ध हो रहा हो ... उसकी बातें सुनकर और गुर्राहट से उसका जवाब देकर लाखी सारे कोने सूंघने लगी। एक कोने में छोटा सा टब रखा था, जिसमें उसे भीगे हुए मटर के दाने और रोटी के टुकड़े दिखे। उसने मटर चखा – अच्छा नहीं लगा, गीली रोटी के टुकड़े चखे – और खाने लगी। हंस ने इस बात का ज़रा भी बुरा नहीं माना कि अनजान कुतिया उसका खाना खा रही है, उल्टे वह और भी ज़ोर-शोर से बोलने लगा और अपना विश्वास दिखाने के लिए खुद भी वहां चला आया और मटर के कुछ दाने खा लिए।

४. अजूबे ही अजूबे

थोड़ी देर बाद अजनबी फिर आया और अपने साथ एक अजीब सी चीज़ लाया, जो दर जैसी थी। लकड़ी के जैसे-तैसे बने इस दर की आड़ी डंडी पर एक घंटी लटक रही थी और पिस्तौल बंधी हुई थी ; घंटी की लटकन और पिस्तौल की लिबलिबी से डोरी बंधी हुई थी। अजनबी ने इस दर को कमरे के बीचोंबीच रख दिया, बड़ी देर तक कुछ खोलता, बांधता रहा, फिर हंस की ओर देखकर बोला :

"इवान इवानिच, आइए!"

हंस उसके पास गया और प्रतीक्षा की मुद्रा में खड़ा हो गया।

"अच्छा, जी," अजनबी बोला, "तो शुरू से शुरू करते हैं। सबसे पहले झुककर आदाब बजाओ। जल्दी से!"

इवान इवानिच ने गर्दन तानी, चारों ओर सिर झुकाने लगा और पंजा पीछे उठा लिया।

"शाबाश ... अब ढेर हो जाओ!"

हंस पीठ के बल लेट गया और पंजे ऊपर उठा लिए। कुछ और ऐसे ही मामूली से तमाशों के बाद अजनबी ने सहसा अपना सिर पकड़ लिया, चेहरे पर डर का भाव ले आया और चिल्लाया :

"आग ! आग ! बचाओ !"

इवान इवानिच दौड़ा-दौड़ा दर के पास गया, डोरी चोंच में पकड़ी और घंटी बजाने लगा।

अजनबी बहुत खुश हुआ। उसने हंस की गर्दन सहलाई और बोला :

"शाबाश, इवान इवानिच ! अच्छा, तुम यह कल्पना करो कि तुम जौहरी हो और हीरे-जवाहरात बेचते हो। अब यह कल्पना करो कि तुम दुकान पर आए और देखा वहां चोर घुस आए हैं। ऐसी हालत में तुम क्या करोगे ?"

हंस ने दूसरी डोरी चोंच में पकड़ी और खींच दी, तभी ज़ोरदार धमाका हुआ। लाखी को घंटी की आवाज़ बड़ी अच्छी लगी थी और धमाके से तो वह बावली हो उठी, दर के चारों ओर दौड़ने और भौंकने लगी।

"मौसी, चलो अपनी जगह !" अजनबी चिल्लाया। "चुप रहो !"

इवान इवानिच का काम इस धमाके के साथ ही खत्म नहीं हुआ। इसके बाद घंटे भर तक अजनबी उसे अपने इर्द-गिर्द बागडोर पर दौड़ाता रहा और कोड़ा सटकारता रहा। हंस को दौड़ते हुए बाधाओं के ऊपर से और छल्ले में से कूदना पड़ता था, सीखपा होना पड़ता था, यानी दुम पर बैठकर पंजे हवा में हिलाने पड़ते थे। लाखी टकटकी लगाए इवान इवानिच को देख रही थी, वह खुशी से भौंकने लगती और उसके पीछे दौड़ने लगती। आखिर हंस को भी और खुद को भी थकाकर अजनबी ने माथे से पसीना पोंछा और आवाज़ दी :

"मार्या, ज़रा खव्रोन्या इवानव्ना को तो बुलाओ इधर !"

थोड़ी देर में घुरघुराहट सुनाई दी ... लाखी गुर्राने लगी, बड़ी बहादुर सी बन गई, पर फिर भी अजनबी के पास आ गई। दरवाज़ा खुला, किसी बुढ़िया ने अंदर झांककर देखा और कुछ कहकर एक काले से, बहुत ही बदसूरत सूअर को अंदर घुसेड़ दिया। लाखी की गुर्राहट की ज़रा भी परवाह न करते हुए सूअर ने अपना थूथना ऊपर उठाया। लगता था कि वह अपने मालिक, बिल्ले और इवान इवानिच को देखकर बड़ा खुश है। उसने बिल्ले के पास आकर अपना थूथना उसके पेट में लगाया, फिर हंस से कुछ बातें करने लगा। यह सब वह जिस तरह कर रहा था और जैसे अपनी दुम हिला रहा था,

उससे लगता था कि वह नेक स्वभाव का है। लाखी ने तुरंत ही भांप लिया कि ऐसों पर गुर्राना और भौंकना बेकार है।

मालिक ने दर हटाया और चिल्लाया:

"फ्योदर तिमफ़ेइच, पधारिए!"

बिल्ला उठा, अलसाहट के साथ जिस्म तोड़ा और अनमना सा, मानो अहसान करता हुआ सूअर के पास आ गया।

"तो चलो, मिस्री पिरामिड से शुरू करें," मालिक बोला।

वह बड़ी देर तक कुछ समझाता रहा, फिर बोला: "एक... दो... तीन..." उसके तीन कहते ही इवान इवानिच ने पंख फड़फड़ाए और सूअर की पीठ पर जा सवार हुआ... जब वह पंखों और गर्दन से संतुलन करता हुआ सूअर के कड़े बालों वाली पीठ पर टिक गया, तब फ्योदर तिमफ़ेइच सुस्ताया हुआ सा, यह दिखाते हुए कि उसे इस सब तमाशे से कुछ नहीं लेना-देना है, कि यह सब बेकार की बातें हैं, सूअर की पीठ पर चढ़ गया, फिर अनिच्छा से हंस पर जा चढ़ा और पिछली टांगों पर खड़ा हो गया। इसे ही अजनबी मिस्री पिरामिड कहता था। लाखी बेहद खुश हो उठी, किकियाई, पर तभी बिल्ले ने जम्हाई ली और संतुलन खो बैठने से वह हंस की पीठ से गिर गया। इवान इवानिच भी डगमगाया और गिर पड़ा। अजनबी चिल्लाने और हाथ झटकने लगा, फिर से कुछ समझाने लगा। घंटे भर तक पिरामिड बनाते रहने के बाद अथक मालिक इवान इवानिच को बिल्ले की सवारी करना सिखाने लगा, फिर बिल्ले को सिगार पीना, इत्यादि।

आखिर अजनबी ने माथे से पसीना पोंछा और बाहर निकल गया। और इस तरह यह पाठ खत्म हुआ। फ्योदर तिमफ़ेइच ने घिन के साथ फुफकार भरी, गद्दे पर लेट गया और आंखें मूंद लीं। इवान इवानिच टब की ओर चल दिया और सूअर को बुढ़िया ले गई। अनगिनत नई छापों के कारण दिन बीतते पता भी न चला। शाम को लाखी का गद्दा मैले दीवारी काग़ज़ वाले कमरे में रख दिया गया और रात उसने फ्योदर तिमफ़ेइच तथा हंस के साथ काटी।

५. वाह! क्या कमाल है!

एक महीना बीत गया।

लाखी इस बात की आदी हो गई थी कि रोज़ शाम को उसे मज़ेदार खाना मिलता था और मौसी कहकर पुकारा जाता था। अजनबी और नए साथियों की भी वह आदी हो गई थी। ज़िंदगी बड़े मज़े से बीत रही थी।

सभी दिन एक ही तरह से शुरू होते थे। आम तौर पर इवान इवानिच सबसे पहले जागता था। वह तुरंत ही मौसी या बिल्ले के पास जाता, गर्दन तानकर बड़े ज़ोर-शोर से कुछ कहने लगता, पर पहले की ही भांति उसकी कोई बात समझ में न आती। कभी-कभी वह अपनी लंबी गर्दन ऊपर उठाकर लंबे एकालाप करता। पहले कुछ दिन तक तो लाखी यह सोचती रही कि वह बहुत अक्लमंद है, इसीलिए इतना बोलता है, पर थोड़े दिन बीतने पर उसके मन में हंस के लिए कोई आदर न रहा। अब जब वह अपना लंबा भाषण झाड़ता हुआ उसके पास आता, तो वह दुम नहीं हिलाती थी, बल्कि उसके साथ निरे बक्की जैसा ही बर्ताव करती थी, जो सबको तंग करता है, सोने नहीं देता। उसका कोई लिहाज़ किए बिना वह गुर्राकर उसे झाड़ देती थी।

जनाब फ़्योदर तिमफ़ेइच के तौर-तरीक़े बिल्कुल ही और थे। वह सुबह जागने पर कोई आवाज़ नहीं करता था, हिलता-डुलता भी नहीं था और न आंखें ही खोलता था। वह तो बड़ी ख़ुशी से जागता ही न, क्योंकि साफ़ लगता था कि उसे इस ज़िंदगी से कोई लगाव नहीं है। किसी बात में उसकी दिलचस्पी न थी, हर चीज़ को वह लापरवाही और आलस्य से देखता था, किसी की उसे कोई परवाह न थी, यहां तक कि अपना स्वादिष्ट खाना खाते हुए भी वह घिन से फुफकारता रहता था। लाखी सुबह उठकर कमरों का चक्कर काटने और कोने सूंघने लगती। सिर्फ़ उसे और बिल्ले को सारे घर में घूमने की इजाज़त थी। इवान इवानिच को मैले दीवारी क़ागज़ वाले कमरे की दहलीज़ लांघने का हक़ नहीं था और सूअर अहाते में किसी कोठरी में रहता था, केवल पाठ के समय अंदर आता था। मालिक देर से उठता था। जी भर के चाय पीने के बाद वह तुरंत ही अपने तमाशों में लग जाता। रोज़ाना कमरे में दर, कोड़ा

और छल्ले लाए जाते और रोज़ाना प्राय: वही सब दोहराया जाता। पाठ तीन-चार घंटे चलता। कभी-कभी तो इसके बाद फ्योदर तिमफ़ेइच यों लड़खड़ाता, जैसे कि नशे में हो, इवान इवानिच अपनी चोंच खोलकर हांफता, मालिक का चेहरा लाल सुर्ख़ हो जाता और उसके माथे से पसीना पोंछे न पोंछा जाता। इन पाठों और खाने की बदौलत दिन तो बड़े रोचक रहते, पर शाम को लाखी ऊबती रहती। आम तौर पर शाम को मालिक हंस और बिल्ले को लेकर चला जाता था। अकेली रह जाने पर मौसी अपने गद्दे पर लेट जाती और उदास होने लगती ... उस पर अनजाने ही धीरे-धीरे उदासी छा जाती थी, जैसे कमरे में अंधेरा छाता है। इसकी शुरुआत यों होती कि कुतिया का न भौंकने, न कुछ खाने या कमरों में दौड़ने का और यहां तक कि देखने तक का मन न करता। फिर उसकी कल्पना में दो अस्पष्ट सी आकृतियां प्रकट होतीं, न जाने वे कुत्ते होते या लोग, प्यारे से, पर अनबूझ चेहरे, उनके प्रकट होते ही मौसी दुम हिलाने लगती और उसे लगता कि उसने उन्हें कहीं देखा है, कि वह उन्हें प्यार करती थी ... नींद आने लगती, तो उसे लगता कि इन आकृतियों से सरेस, छीलन और वार्निश की गंध आती है।

जब वह नए जीवन की बिल्कुल आदी हो गई और मरियल सी लेंगी के बजाय ऐसी मोटी-तगड़ी कुतिया बन गई, जिसकी अच्छी तरह देखभाल होती है, तो पाठ से पहले एक दिन मालिक ने उसे सहलाया और बोला :

"मौसी, अब कुछ काम करना चाहिए। बहुत निठल्ली बैठ लीं तुम। मैं तुम्हें कलाकार बनाना चाहता हूं ... बनोगी कलाकार?"

और वह उसे कई चीज़ें सिखाने लगा। पहले पाठ में उसने पिछली टांगों पर खड़े होना और चलना सीखा। मौसी को यह बहुत अच्छा लगा। दूसरे पाठ में उसे पिछले पंजों पर कूदकर मालिक के हाथ से चीनी की डली लेनी थी, जो वह उसके सिर के काफ़ी ऊपर हाथ में पकड़े हुए था। फिर अगले पाठों में उसने नाचना, बागडोर पर दौड़ना, बाजे के साथ आवाज़ें निकालना, घंटी बजाना और पिस्तौल चलाना सीखा। महीने भर बाद वह आराम से मिस्री पिरामिड में फ्योदर तिमफ़ेइच का स्थान ले सकती थी। वह बड़ी तत्परता से सब कुछ सीखती और अपनी सफलता पर ख़ुश थी। जीभ निकालकर बागडोर

पर दौड़ना, छल्ले में कूदना और बूढ़े फ्योदर तिमफ़ेइच की सवारी करना इस सब में उसे बड़ा मज़ा आता था। जब भी कोई तमाशा वह अच्छी तरह कर लेती, तो खुशी से ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगती, उस्ताद भी हैरान होता, खुशी से झूम उठता और कहता:

"वाह! क्या कमाल है! क्या कमाल है! तुम ज़रूर लाजवाब रहोगी, मौसी! कमाल है!"

मौसी "कमाल" शब्द की भी इतनी आदी हो गई कि हर बार जब मालिक यह शब्द कहता, तो वह उछलकर खड़ी हो जाती, इधर-उधर देखती, मानो यह उसका नाम हो।

६. बेचैनी भरी रात

मौसी ने कुत्तों का सपना देखा कि जमादार लंबे डंडे वाला झाड़ू लिए उसका पीछा कर रहा है और डर के मारे उसकी आंख खुल गई।

अंधेरे कमरे में सन्नाटा था और बहुत उमस थी। पिस्सू काट रहे थे। मौसी को पहले कभी भी अंधेरे से डर नहीं लगा था, अब न जाने क्यों वह भयभीत हो उठी थी और भौंकने को मन हो रहा था। पास के कमरे में मालिक ने ज़ोर से उसांस भरी, फिर थोड़ी देर बाद सूअर अपनी कोठरी में घुरघुराया और फिर से सन्नाटा छा गया। खाने की बात सोचो, तो मन को चैन मिलता है, सो मौसी यह सोचने लगी कि कैसे उसने आज फ्योदर तिमफ़ेइच के खाने में से मुर्गी की टांग चुरा ली थी और बैठक में अल्मारी और दीवार के बीच छिपा दी थी, जहां ढेर सारी धूल और मकड़ी का जाला है। अच्छा हो, जाकर देख आए: वह टांग सही-सलामत है कि नहीं? हो सकता है, मालिक को वह मिल गई हो और वह उसे खा गया हो। पर सुबह होने से पहले वह कमरे से बाहर नहीं निकल सकती – ऐसा यहां का नियम है। मौसी ने आंखें मूंद लीं, ताकि जल्दी से सो जाए। वह अपने अनुभव से जानती थी कि जितनी जल्दी सो जाओ, उतनी ही जल्दी सुबह हो जाती है। पर अचानक उससे थोड़ी ही दूर कहीं अजीब सी चीख हुई, जिससे वह कांप उठी और चारों पैरों पर खड़ी

हो गई। यह इवान इवानिच चीखा था, पर उसकी चीख हमेशा की तरह बक्की की विश्वास भरी चीख नहीं थी, यह तो कोई तीखी, डरावनी, अस्वाभाविक चीख थी, जैसे फाटक खोले जाने पर चरमराता है। अंधेरे में मौसी को न कुछ दिखा, न समझ में आया, उसका डर और भी ज़्यादा बढ़ गया और वह धीरे से गुर्राई।

कुछ समय बीता, इतना ही जितना अच्छी हड्डी को चिचोड़ने के लिए चाहिए; चीख फिर नहीं सुनाई दी। मौसी धीरे-धीरे निश्चिंत हो गई और ऊंघने लगी। उसे सपने में दो बड़े, काले-काले कुत्ते दिखे, जिनके पुट्ठों और बगलों पर पिछले साल के बालों के गुच्छे थे; वे लकड़ी के बड़े से टब में से गंदले पानी में मिल ली जूठन खा रहे थे। टब में से सफ़ेद भाप उठ रही थी और ज़ायक़ेदार गंध आ रही थी; कभी-कभी कुत्ते मुड़कर उसकी ओर देखते, खीसें निपोड़ते और गुर्राते: "तुझे तो नहीं देंगे!" पर घर में से भेड़ की खाल का ओवरकोट पहने जमादार निकला और उसने चाबुक से उन्हें भगा दिया; तब मौसी टब के पास गई और खाने लगी, पर जैसे ही जमादार फाटक से बाहर गया, दोनों काले कुत्ते गुर्राते हुए उस पर टूट पड़े, अचानक फिर तीखी चीख सुनाई दी।

"कैं-कैं-कैं!" इवान इवानिच चिल्लाया।

मौसी जाग गई, उछली और गद्दे पर खड़ी-खड़ी ही हूकने लगी। उसे लग रहा था कि यह इवान इवानिच नहीं, कोई दूसरा, बाहर का कोई चिल्ला रहा है। कोठरी में भी सूअर फिर से घुरघुराया।

जूतों के घिसटने की आवाज़ सुनाई दी और गाउन पहने, हाथ में मोमबत्ती पकड़े मालिक अंदर आया।

टिमटिमाती रोशनी मैले दीवारी कागज़ और छत पर नाचने लगी और उसने अंधेरे को भगा दिया। मौसी ने देखा कि कमरे में कोई बेगाना नहीं है। इवान इवानिच फ़र्श पर बैठा था, सो नहीं रहा था। उसके पंख फैले हुए थे और चोंच खुली थी, उसकी शक्ल-सूरत से लगता था मानो वह बहुत थक गया हो और उसे प्यास लगी हो। बूढ़ा फ्योदर तिमफ़ेइच भी नहीं सो रहा था। हो न हो, वह भी चीख से जाग गया होगा।

"इवान इवानिच, क्या हुआ तुम्हें?" मालिक ने हंस से पूछा। "क्यों चीख रहे हो? बीमार हो क्या?"

हंस चुप था। मालिक ने उसकी गर्दन और पीठ सहलाई और बोला: "कैसा सनकी है भई तू। खुद भी नहीं सो रहा, दूसरों को भी नहीं सोने देता।"

मालिक चला गया, अपने साथ रोशनी ले गया, और फिर से अंधेरा घिर आया। मौसी को डर लग रहा था। हंस चीख नहीं रहा था, पर उसे फिर यह लगने लगा कि अंधेरे में कोई बेगाना खड़ा है। सबसे डरावनी बात तो यह थी कि इस बेगाने को काटा नहीं जा सकता था, क्योंकि वह अदृश्य था और उसकी कोई आकृति न थी। न जाने उसे क्यों यह ख़्याल आ रहा था कि आज रात को ज़रूर कोई बुरी बात होगी। फ़्योदर तिमफ़ेइच भी शांत नहीं था। मौसी को सुनाई दे रहा था कि कैसे वह अपने गद्दे पर करवटें बदल रहा है, जम्हाइयां ले रहा है और सिर झटक रहा है।

बाहर कहीं किसी ने फाटक खटखटाया और कोठरी में सूअर घुरघुराया। मौसी किकियाने लगी, अगली टांगें सामने बढ़ा दीं और उनपर सिर रख लिया। फाटक पर हुई खटखट, न जाने क्यों सो न रहे सूअर की घुरघुराहट, यह अंधेरा और सन्नाटा – इस सबमें उसे वैसा ही कुछ उदासी भरा और भयावह लग रहा था, जैसा इवान इवानिच की चीख में था। सब कुछ बेचैन, परेशान था। क्यों? कौन है यह बेगाना, जो दिखाई नहीं देता? मौसी के पास क्षण भर को दो धूमिल सी, हरी-हरी चिंगारियां चमकीं। उनकी सारी जान-पहचान के दौरान पहली बार फ़्योदर तिमफ़ेइच मौसी के पास आ बैठा था। उसे क्या चाहिए? मौसी ने उसका पंजा चाटा और यह पूछे बिना कि वह क्यों आया है, हौले से, तरह-तरह की आवाज़ निकालते हुए हूकने लगी।

"कैं-कैं!" इवान इवानिच चीखा। "कैं-कैं!"

फिर से दरवाज़ा खुला और मोमबत्ती लिए मालिक अंदर आया। हंस पहले जैसी मुद्रा में ही चोंच खोले, पंख फैलाए बैठा था। उसकी आंखें बंद थीं।

"इवान इवानिच!" मालिक ने आवाज़ दी।

हंस हिला-डुला नहीं। मालिक उसके सामने फ़र्श पर बैठ गया, पल भर चुपचाप देखता रहा और बोला:

"इवान इवानिच! क्या हुआ? मर रहा है तू क्या? ओह, अब मुझे याद आया," उसने अपना सिर पकड़ लिया। "मुझे पता है, यह सब क्यों हो रहा है। आज तू घोड़े के पैर तले आ गया था न, इसीलिए! हे भगवान! हे भगवान!"

मौसी की समझ में नहीं आ रहा था कि मालिक क्या कह रहा है। पर उसके चेहरे से वह देख रही थी कि उसे किसी बहुत ही बुरी बात के होने की आशंका है। उसने अंधेरी खिड़की की ओर थूथनी बढ़ाई। उसे लग रहा था कि उसमें से कोई बेगाना झांक रहा है, और वह हूकने लगी।

"वह मर रहा है, मौसी!" मालिक ने कहा और हाथ ऊपर को उठाकर झटके। "हां, हां, मर रहा है। तुम्हारे कमरे में मौत आ गई है। क्या करें हम?"

मालिक का चेहरा पीला पड़ गया था। वह घबराया हुआ था। गहरी सांसें भरते और सिर हिलाते हुए वह अपने सोने के कमरे में चला गया। मौसी को अंधेरे में रहते डर लग रहा था, सो वह भी उसके पीछे चल दी। पलंग पर बैठकर मालिक ने कई बार कहा:

"हे भगवान, क्या करें?"

मौसी उसके पैरों के पास चक्कर काट रही थी। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि उसका मन इतना उदास क्यों है, क्यों सब इतने परेशान हो रहे हैं। यह सब समझने की कोशिश में वह मालिक की हर हरकत को ग़ौर से देख रही थी। फ्योदर तिमफ़ेइच विरले ही कभी अपना गद्दा छोड़ता था, अब वह भी मालिक के कमरे में आ गया और उसके पैरों के पास लोटने लगा। वह रह-रहकर यों सिर झटकता, मानो उसमें से कोई बुरा विचार निकाल डालना चाहता हो, और पलंग के नीचे यों झांक रहा था, जैसे कि वहां कुछ हो। मालिक ने रकाबी ली, कमरे में लगे हाथ धोने के छोटे से ड्रम में से पानी उसमें डाला और फिर से हंस के पास गया।

"इवान इवानिच, लो, पी लो," उसके सामने रकाबी रखते हुए उसने लाड़ से कहा। "पी ले, भैया।"

पर इवान इवानिच हिल-डुल नहीं रहा था और न ही आंखें खोल रहा था। मालिक ने उसका सिर रकाबी पर झुकाया और चोंच पानी में डाली,

पर हंस नहीं पी रहा था। उसने पंख और भी फैला दिए और उसका सिर रकाबी पर रखा रह गया।

"नहीं, अब कुछ नहीं किया जा सकता!" मालिक ने उसांस ली। "सब ख़त्म हो गया। गया इवान इवानिच!"

और उसके गालों पर चमकीली बूंदें नीचे ढरकने लगीं, वैसी ही बूंदें, जैसी बारिश के समय खिड़कियों पर होती हैं। मौसी और फ़्योदर तिमफ़ेइच कुछ नहीं समझ पा रहे थे, मालिक से सटे जा रहे थे और भयभीत से हंस को देख रहे थे।

"बेचारा इवान इवानिच!" ठंडी सांस भरते हुए मालिक कह रहा था। "मैं तो सोच रहा था कि बसंत में तुझे दाचा पर ले जाऊंगा और हरी-हरी घास पर तेरे साथ घूमूंगा। मेरे प्यारे जानवर, मेरे अच्छे साथी, तू अब नहीं रहा! तेरे बिना मैं क्या करूंगा?"

मौसी को लग रहा था कि उसके साथ भी ऐसा ही होगा, यानी वह भी ऐसे ही, न जाने क्यों आंखें बंद कर लेगी, टांगें फैला देगी, मुंह खोल लेगी और सब भयभीत से उसे देखेंगे। प्रत्यक्षतः फ़्योदर तिमफ़ेइच के दिमाग़ में भी ऐसे ही विचार घूम रहे थे। बूढ़ा बिल्ला इससे पहले कभी भी इतना मायूस और निराश नज़र नहीं आया था।

पौ फट रही थी। छोटे कमरे में अब वह अदृश्य बेगाना नहीं था, जिससे मौसी को इतना डर लग रहा था। जब बिल्कुल उजाला हो गया, तो जमादार आया, हंस के पंजे पकड़कर उसे कहीं ले गया। थोड़ी देर बाद बुढ़िया आई और टब ले गई।

मौसी बैठक में गई और अल्मारी के पीछे झांककर देखा: मालिक ने मुर्ग़ी की टांग नहीं खाई थी, वह अपनी जगह पर ही, जाले और धूल में पड़ी हुई थी। पर मौसी का मन उखड़ा हुआ था, उसे रोना आ रहा था। उसने टांग को सूंघा भी नहीं, सोफ़े तले जाकर बैठ गई और पतली सी आवाज़ में किकियाने लगी।

७. और तमाशा फ़ेल हो गया

एक शाम को मालिक मैले दीवारी कागज़ वाले कमरे में आया और हाथ रगड़ते हुए बोला :

"अच्छा जी ..."

वह और कुछ कहना चाहता था, पर कहे बिना ही बाहर चला गया। मौसी पाठों के दौरान उसके चेहरे और लहजे के उतार-चढ़ाव को समझना सीख गई थी, सो वह जान गई कि वह उत्तेजित और चिंतित है, लगता है, गुस्से में भी है। थोड़ी देर बाद वह लौटा और बोला :

"आज मैं मौसी और फ़्योदर तिमफ़ेइच को अपने साथ ले जाऊंगा। मिस्री पिरामिड में मौसी आज इवान इवानिच का स्थान लेगी। ओफ़, क्या है यह सब! कुछ तैयार नहीं, सीखा नहीं गया, रिहर्सलें कम हुई हैं! बदनाम हो जाएंगे, तमाशा फ़ेल हो जाएगा!"

वह फिर से बाहर चला गया और मिनट भर बाद ही फ़र का ओवरकोट और ऊंचा टोप पहने लौट आया। बिल्ले के पास जाकर उसने अगली टांगों से उसे पकड़ा और उठाकर अपने ओवरकोट तले छाती पर छिपा लिया। फ़्योदर तिमफ़ेइच इस सबसे बिल्कुल उदासीन लगता था, यहां तक कि उसने आंखें भी नहीं खोलीं। प्रत्यक्षतः, उसके लिए सब बराबर था: वह लेटा रहे या उसे टांगें पकड़कर उठा लिया जाए, गद्दे पर लेटा रहे या मालिक की छाती पर ओवरकोट तले दुबका रहे।

"मौसी, चलो," मालिक ने कहा।

कुछ भी समझे बिना और दुम हिलाते हुए मौसी उसके पीछे चल दी। पल भर बाद ही वह स्लेज गाड़ी में मालिक के पांवों में बैठी थी और सुन रही थी कि कैसे वह ठंड से सिकुड़ता हुआ और घबराता हुआ बुदबुदा रहा था :

"बदनाम हो जाएंगे! तमाशा फ़ेल हो जाएगा!"

स्लेज गाड़ी एक बहुत बड़े, अजीब से मकान के पास रुकी, जो औंधे पड़े डोंगे जैसा था। उस में शीशे के तीन दरवाज़े थे, जो दर्जन भर बत्तियों से जगमगा रहे थे। दरवाज़े शोर करते हुए खुलते और मुंहों की तरह वहां

आ-जा रहे लोगों को निगल जाते। यहां लोग बहुत थे, कई घोड़े आकर रुक रहे थे, पर कुत्ते कहीं नज़र न आते थे।

मालिक ने मौसी को उठाया और ओवरकोट के नीचे घुसेड़ लिया, जहां फ़्योदर तिमफ़ेइच पहले से ही बैठा हुआ था। वहां अंधेरा और उमस थी, पर गरमाहट भी। क्षण भर को दो धूमिल सी, हरी-हरी चिंगारियां चमकीं – कुतिया के ठंडे, सख़्त पंजों से परेशान होकर बिल्ले ने आंखें खोली थीं। मौसी ने उसका कान चाटा, आराम से बैठने की फ़िक्र में वह कुलबुलाने लगी, बिल्ले को अपने ठंडे पंजों तले दबा दिया, अनजाने में सिर ओवरकोट से बाहर निकाल लिया, पर तुरंत ही गुर्राई और फिर से अंदर घुस गई। उसे लगा कि उसने एक विशाल कमरा देखा है, जिसमें बहुत कम रोशनी है। कमरा अजीब-अजीब से भयानक जीवों से भरा हुआ था; कमरे के दोनों ओर बाड़ों और पिंजड़ों के पीछे से डरावने थूथने दिख रहे थे: घोड़ों के, सींगोंवाले, लमकन्ने और एक बहुत ही बड़ा, मोटा थूथना, जिस पर नाक की जगह पूंछ थी और मुंह से दो चिचोड़ी हुई हड्डियां निकली हुई थीं।

बिल्ले ने मौसी तले फटी-फटी आवाज़ में म्याऊं की, पर तभी ओवरकोट खुल गया, मालिक ने कहा "हप!" और मौसी तथा फ़्योदर तिमफ़ेइच नीचे कूद गए। वे अब एक छोटे से कमरे में थे, जिसकी मटमैली सी दीवारें लकड़ी के पटरों की बनी हुई थीं। यहां एक छोटी सी शीशे वाली मेज़, एक स्टूल और कोनों में टंगे कपड़ों के अलावा और कुछ भी नहीं था। लैम्प या मोमबत्ती की जगह पंखेनुमा तेज़ बत्ती जल रही थी, जो दीवार में गड़ी एक नली पर लगी हुई थी। फ़्योदर तिमफ़ेइच ने अपने रोयें चाटे, जो मौसी तले दब गए थे और जाकर स्टूल के नीचे लेट गया। अभी भी घबराते और हाथ रगड़ते हुए मालिक कपड़े उतारने लगा... उसने सिर्फ़ ओवरकोट या कोट ही नहीं उतारा, बल्कि इस तरह कपड़े उतारे जैसे कि वह घर पर कम्बल तले लेटने से पहले उतारता था, यानी वह सिर्फ़ अंतरीय पहने रहा – पूरी बांहों की बनियान और तंग पायजामा। फिर वह स्टूल पर बैठ गया और शीशे में देखते हुए अपने आप को न जाने क्या-क्या करने लगा – देखकर आश्चर्य होता था। सबसे पहले उसने सिर पर नकली बालों का विग पहना, जिसके बीचोंबीच मांग थी और दोनों

ओर बालों से सींग से बने हुए थे, फिर उसने चेहरे पर सफ़ेद सा कुछ पोत लिया और सफ़ेद रंग के ऊपर भौंहें, मूंछें और लाली बनाई। इतने में ही उसके तमाशे खत्म नहीं हुए। चेहरे और गर्दन को लीप-पोतकर वह बहुत ही अजीबो-गरीब पोशाक पहनने लगा। मौसी ने पहले कभी भी न घर पर और न ही सड़क पर किसी को ऐसे कपड़े पहने देखा था। कल्पना कीजिए बोरे जैसी खुली पतलून की, जो बड़े-बड़े फूलोंवाले छींट के कपड़े की बनी हुई थी। ऐसा कपड़ा शहरों के आम घरों में पर्दों के लिए और फ़र्नीचर पर चढ़ाने के काम आता है। पतलून बगलों तक ऊंची थी; उसका एक पायंचा कत्थई छींट का था और दूसरा चमकीली पीली छींट का। पतलून में समाकर मालिक ने ऊपर से छींट का सिंघाड़ेदार कालर वाला कुर्ता पहना, जिसकी पीठ पर सुनहरा सितारा बना हुआ था; अलग-अलग रंग के मोज़े पहने और फिर हरी जूतियां।

मौसी तो चकाचौंध हो गई। सफ़ेद मुंह वाली बोरे जैसी आकृति से मालिक की गंध आती थी, उसकी आवाज़ भी जानी-पहचानी, मालिक जैसी ही थी, मगर ऐसे क्षण भी आते जब मौसी के मन में संदेह उठने लगता। तब उसका जी होता इस भड़कीली आकृति से दूर भागे और भौंकने लगे। नई जगह, पंखेनुमा बत्ती, नई गंधें, मालिक के साथ हुआ कायाकल्प – इस सबसे उसके मन में अजीब सा डर समा रहा था और उसे लग रहा था कि ज़रूर उसका सामना किसी डरावने जीव से होगा, जैसे कि नाक की जगह दुम वाला मोटा थूथना। ऊपर से दीवार के पीछे दूर कहीं वह बैंड-बाजा बज रहा था, जिसे मौसी सह नहीं सकती थी और कभी-कभी अनबूझ दहाड़ भी सुनाई देती। बस फ्योदर तिमफ़ेइच को एकदम निश्चिंत पड़े देखकर ही उसका थोड़ा ढाढ़स बंध रहा था। वह मज़े में स्टूल के नीचे लेटा ऊंघ रहा था, जब स्टूल हिलता तब भी वह आंखें नहीं खोलता था। सफ़ेद वास्कट और लंबा काला कोट पहने एक आदमी ने अंदर झांककर देखा और कहा:

"अभी मिस अराबेला जा रही हैं। उसके बाद आपकी बारी है।"

मालिक ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने मेज़ के नीचे से बड़ा अटैची निकाला और बैठकर इंतज़ार करने लगा। उसके हाथों और होंठों से साफ़ लग रहा था कि वह घबरा रहा है, मौसी उसकी कांपती सांस सुन रही थी।

"मि० जार्ज, चलिए!" दरवाज़े के पीछे से किसी ने आवाज़ दी।

मालिक उठा, छाती पर तीन बार सलीब का निशान बनाया, फिर स्टूल के नीचे से बिल्ले को निकाला और अटैची में घुसेड़ दिया।

"चलो, मौसी!" मालिक ने हौले से कहा।

मौसी कुछ नहीं समझी, मालिक के पास आ गई; उसने मौसी का सिर चूमा और उसे फ़्योदर तिमफ़ेइच के पास रख दिया। और फिर अंधेरा छा गया... मौसी बिल्ले को दबा रही थी, अटैची को खरोंच रही थी, डर के मारे उसके मुंह से आवाज़ नहीं निकल रही थी, अटैची यों हिल रहा था, मानो लहरों पर उछल रहा हो...

"लो जी मैं आ गया!" मालिक ज़ोर से चिल्लाया। "लो जी मैं आ गया!"

मौसी ने महसूस किया कि इस चीख के बाद अटैची किसी सख़्त चीज़ से टकराया और फिर उसका हिलना-डुलना बंद हो गया। ज़ोर से चिंघाड़ने की आवाज़ आई: किसी को थपथपाया जा रहा था और यह कोई, शायद नाक की जगह दुम वाला थूथना इतनी ज़ोर से चिंघाड़ रहा था कि अटैची का ताला खड़खड़ा उठा। चिंघाड़ के जवाब में मालिक बारीक, तीखी आवाज़ में हंसा; घर पर वह कभी भी ऐसे नहीं हंसता था।

"हा-हा-हा!" चिंघाड़ को दबाने की कोशिश करते हुए वह चिल्लाया। "साहेबान मेहरबान! मैं सीधा स्टेशन से आ रहा हूं। मेरी नानी इस दुनिया से चलती बनी है और मेरे लिए यह बक्सा छोड़ गई है! बड़ा भारी है, हो न हो सोने से भरा होगा... हा-हा-हा! अभी देखते हैं कितने लाख हैं इसमें!"

अटैची का ताला चटका। मौसी की आंखें तेज़ रोशनी से चुंधिया गईं; वह उछलकर अटैची से बाहर निकली, शोर-गुल से बौखला गई और बड़ी तेज़ी से मालिक के इर्द-गिर्द दौड़ने लगी, ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगी।

"धत् तेरे की!" मालिक चिल्लाया। "फ़्योदर तिमफ़ेइच! मौसी! आ गए मेरे प्यारे रिश्तेदार! भाड़ में जाओ तुम!"

वह पेट के बल रेत पर गिर गया, बिल्ले और मौसी को पकड़ लिया, उन्हें बांहों में भरने, गले लगाने लगा। जब वह उसे अपने आलिंगन में कस रहा था तो मौसी ने जल्दी से एक नज़र उस दुनिया पर डाली, जहां क़िस्मत

उसे ले आई थी। उसकी भव्यता पर वह आश्चर्यचकित और विमुग्ध हो गई, पल भर को स्तब्ध रह गई, फिर मालिक के हाथों से निकल भागी और इन छापों के तीव्र प्रभाव में लट्टू की तरह घूमने लगी। नई दुनिया विशाल थी और तेज़ प्रकाश से भरपूर; जिधर भी नज़र डालो, फ़र्श से छत तक चेहरे ही चेहरे थे, चेहरे ही चेहरे बस और कुछ नहीं।

"मौसी, तशरीफ़ रखो!" मालिक चिल्लाया।

मौसी को याद था कि इसका क्या अर्थ है। वह तुरंत उछलकर कुर्सी पर चढ़कर बैठ गई। उसने मालिक की ओर देखा। उसकी आंखें सदा की तरह गम्भीर और स्नेह भरी थीं, किंतु चेहरा और ख़ास तौर पर मुंह और दांत चौड़ी, जड़ मुस्कान से विकृत थे। वह ठहाके मारकर हंस रहा था, उछल-कूद रहा था, कंधे बिचका रहा था और यह दिखा रहा था कि हज़ारों लोगों की उपस्थिति में उसे बड़ा मज़ा आ रहा है। मौसी ने उसके उल्लास पर विश्वास कर लिया, सहसा अपने रोम-रोम से उसे यह आभास हुआ कि ये हज़ारों चेहरे उसे देख रहे हैं, उसने लोमड़ी जैसी अपनी थूथनी ऊपर उठाई और ख़ुशी से किकियाने लगी।

"मौसी आप यहां बैठिए," मालिक ने कहा। "हम फ़्योदर तिमफ़ेइच के साथ थोड़ा नाच लें।"

फ़्योदर तिमफ़ेइच उदासीनता से इधर-उधर देखता हुआ इस प्रतीक्षा में खड़ा था कि कब उसे ये बेवकूफ़ी भरी हरकतें करने को कहा जाएगा। वह अनमना सा, लापरवाही से नाच रहा था, उसकी गतियों, उसकी दुम और मूंछों से यह साफ़ दिख रहा था कि वह इस भीड़ और सारी रौनक को तुच्छ मानता था, मालिक और उसका अपना तमाशा उसके लिए छिछोरा था... अपने हिस्से का नाच नाचकर उसने जम्हाई ली और बैठ गया। मालिक बोला:

"हां, तो मौसी, चलो, हम पहले गाएंगे और फिर नाचेंगे। अच्छा?"

उसने जेब से बांसुरी निकाली और बजाने लगा। मौसी संगीत नहीं सह सकती थी, वह बेचैनी से कुलबुलाने लगी और हूकने लगी। चारों ओर से तालियों की गड़गड़ाहट और कोलाहल सुनाई दिया। मालिक ने झुककर सलाम किया और जब सब शांत हो गया तो फिर से बांसुरी बजाने लगा... बांसुरी

बहुत ऊंची तान में बज रही थी, जब ऊपर कहीं दर्शकों में किसी ने आश्चर्य के साथ ज़ोर से आह भरी।

"बापू!" बाल स्वर चिल्लाया। "यह तो लाखी है!"

"लाखी है ही!" नशे से कांपते पुरुष स्वर ने हामी भरी। "हां, लाखी है! फ़ेद्युश्का, खुदा की मार पड़े, यह तो लाखी ही है! पुच-पुच-पुच!"

गैलरी में किसी ने सीटी बजाई, और दो स्वर, एक बच्चे का और एक पुरुष का ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगे:

"लाखी! लाखी!"

मौसी ठिठक गई, उसने उधर देखा जिधर से चिल्लाने की आवाज़ आ रही थी। दो चेहरे: एक बालोंवाला, नशे में मुस्कराता हुआ और दूसरा – गोल-मटोल, लाल और सहमा सा – उसकी आंखों में वैसे ही चौंध गए, जैसे पहले तेज़ प्रकाश चौंधा था।

उसे याद हो आया, वह कुर्सी से गिर पड़ी, रेत पर लोटने लगी, फिर उठी और खुशी से किकियाती हुई इन चेहरों की ओर दौड़ चली। कर्णभेदी कोलाहल हुआ, जिसमें ज़ोर-ज़ोर की सीटियां और एक बच्चे की तीखी चीख साफ़ सुनाई दे रही थीं:

"लाखी! लाखी!"

मौसी ने उछलकर रिंग की मुंडेर पार की, फिर किसी के कंधे के ऊपर से होती हुए बॉक्स में पहुंच गई; अगली कतार में पहुंचने के लिए ऊंची दीवार लांघनी चाहिए थी; मौसी कूदी, पर ऊपर तक न पहुंच पाई, दीवार पर नीचे फिसलने लगी। फिर वह एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने लगी, कई हाथ, चेहरे चाटती हुई ऊपर ही ऊपर बढ़ती गई और आख़िर गैलरी में पहुंच गई।

आधे घंटे बाद लाखी सड़क पर उन लोगों के पीछे जा रही थी, जिनसे सरेस और वार्निश की गंध आ रही थी। लुका अलेक्सान्द्रिच लड़खड़ा रहा था, पर उसे इतना अनुभव था कि उसके पांव उसे अपने आप ही नाली से दूर-दूर लिए जा रहे थे।

"पाप के गरत में लोटा मेरे गरभ में..." वह बड़बड़ा रहा था। "अरी

लाखी, तू तो बस एक भूल है। आदमी के सामने तो तू वैसे ही है, जैसे तरखान के सामने दो कौड़ी का बढ़ई।"

उसके साथ-साथ फ़ेद्युश्का बाप का टोप पहने चल रहा था। लाखी उनकी पीठों को देख रही थी और उसे लग रहा था कि वह न जाने कब से उनके पीछे चल रही है और खुश हो रही है कि जीवन का क्रम पल भर को भी नहीं टूटा।

मैले दीवारी कागज़ वाला कमरा, हंस, फ्योदर तिमफ़ेइच, स्वादिष्ट खाना और सरकस – यह सब उसे याद आया, पर अब यह एक लबा, उलझा-पुलझा सपना ही लग रहा था।

इवान तुर्गेनिव

बेझिन चरागाह

१८५२ में 'शिकारी के शब्दचित्र' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके लेखक इवान तुर्गेनेव का नाम तब बहुत कम लोगों ने ही सुना था। रूसी साहित्य में यह पहली ऐसी कृति थी, जिसमें मध्य रूस के मौलिक सौंदर्य—रई के खेतों, ज़मीन से सटे गांवों, गंदी सरायों, उजले वनों, मंथर नदियों, खेतों के बीच चली गई खुली सड़कों की छवि उतारी गई। इन कहानियों के अधिकांश नायक भूदास किसान हैं—अनपढ़, किंतु सयाने, प्रतिभावान और साफ़ मन के लोग। इस पुस्तक ने लेखक की कीर्ति फैलाई। इन कहानियों में एक थी 'बेझिन चरागाह', जिसमें लेखक ने किसान बच्चों का, जन किंवदंतियों का काव्यमय वर्णन किया है।

इस कहानी के अलावा 'शिकारी के शब्दचित्रों' की कुछ और कहानियों—'बिर्यूक', 'ल्गोव' तथा 'गायक'—को भी बाल-साहित्य में स्थान मिला। तुर्गेनेव की कहानी 'मुमू' बाल-साहित्य की एक बेजोड़ रचना है। यह एक कुत्ते की कहानी है, जिसे उसके मालिक भूदास जमादार गेरासिम को मालकिन के भोंडे हुक्म पर डुबाना पड़ा।

लेव तोलस्तोय के अनुरोध पर तुर्गेनेव ने 'बाल-विश्राम' पत्रिका के लिए 'बटेर' कहानी लिखी। उन्होंने शार्ल पेर्रो की बाल-कथाओं का भी फ़्रांसीसी से रूसी में अनुवाद किया और उनके लिए भूमिका लिखी।

इवान सेर्गेयेविच तुर्गेनेव का जन्म १८१८ में हुआ और मृत्यु १८८३ में।
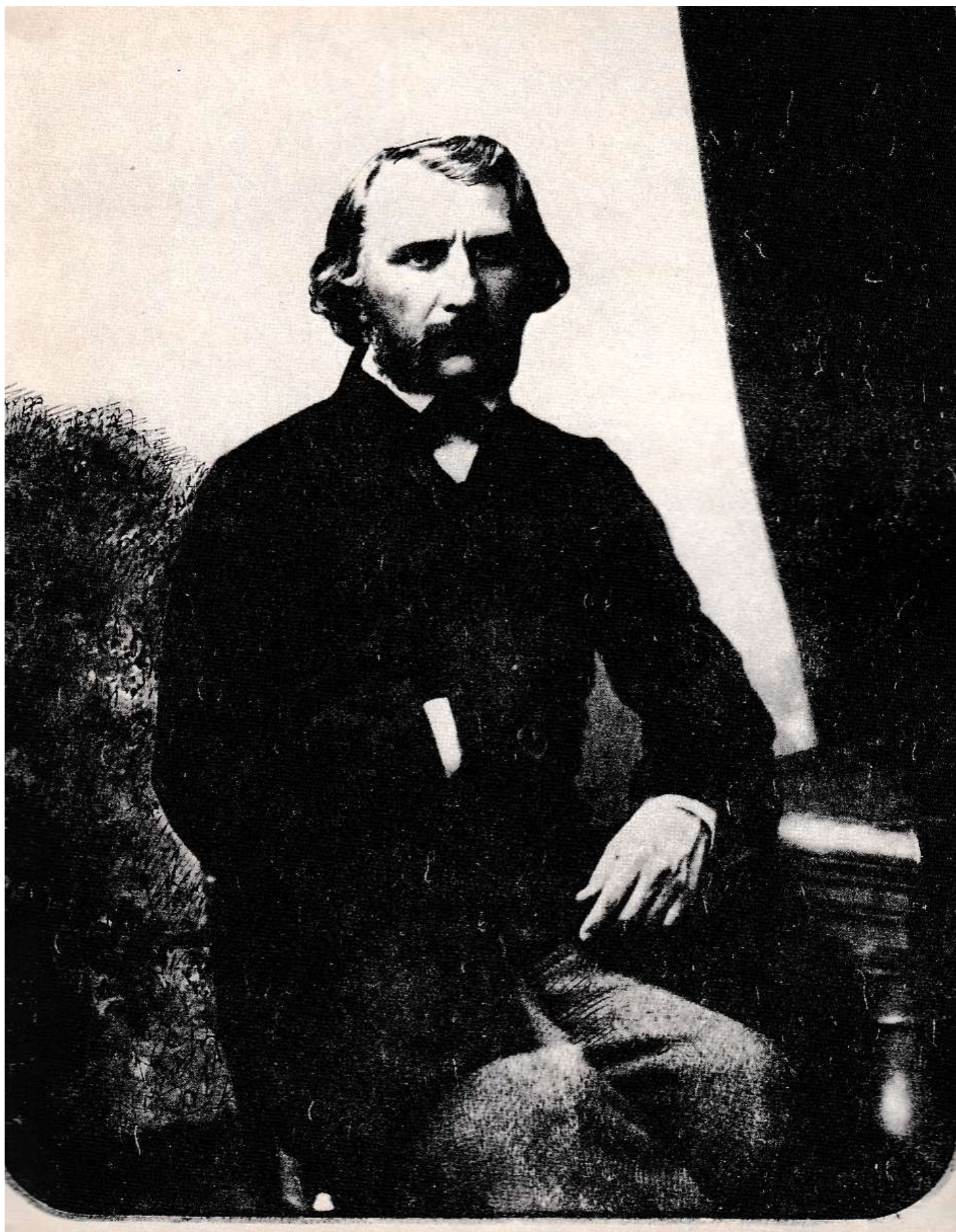
जुलाई का एक सुहावना दिन था। ऐसे दिन मौसम के उतार-चढ़ाव बीत चुकने पर ही अवतरित होते हैं। सुबह तड़के से ही आकाश स्वच्छ होता है। ऊषा आग सी नहीं दमक उठती, बस एक कोमल गुलाबी प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। न तो दमघोट सूखे के दिनों की भांति अग्निल, लाल-भभूका और न ही झंझा की पूर्ववेला जैसा धूमिल लौहित, अपितु दिव्य आभामय उज्ज्वल सूर्य बादल की लंबी, पतली पट्टी तले से हौले से उदय होता है, ताज़गी छिटकाता है और फिर उसकी लाल-नीली धुंध में समा जाता है। बादल की पट्टी के ऊपरी किनारे पर प्रकाश-सर्प बल खाते हैं, चांदी के वर्क से चमचमाते हैं... और फिर किरणें इठलाती हैं, आह्लादित प्रकाश पुंज भव्य पंखों पर ऊपर उठने लगता है। प्रायः दोपहर के समय आकाश में खूब ऊंचे गोल-गोल बादल छा जाते हैं—सुनहरे-सुरमई और दूधिया गोट में टंके। प्लावित नदी के वक्ष पर छितरे वे थिर द्वीपों से लगते हैं, गहरी पारदर्शी नीलवर्ण जलराशि का

असीम विस्तार इन्हें पखारता है। दूर, आकाश के उतार में वे एक दूसरे के पास-पास आते जाते हैं, आपस में गुंथते हैं और उनके बीच नीलिमा अब नहीं दिखती ; पर वे स्वयं भी आकाश जैसे ही आसमानी रंग के होते हैं – आलोक और गरमाहट में पगे हुए। क्षितिज का रंग हल्का नील कमल सा होता है और दिन भर नहीं बदलता, चारों ओर एक सा रहता है। कहीं भी कालिमा नहीं छाती, घटाएं नहीं उमड़तीं। बस कहीं-कहीं ही आकाश धरती की ओर आसमानी हाथ बढ़ा देता है : यह झीनी बरखा है। सांझ घिरते न घिरते ये बादल विलीन हो जाते हैं। धुएं जैसे अनिश्चित आकार के, कालापन लिए उनके अंतिम अवशेष डूबते सूरज के सामने रूई के गुलाबी ढेरों से उतर आते हैं। जिस शांत भाव से सूर्य उदय हुआ था, उसी शांत भाव से वह अस्ताचल को चला जाता है। और वहां झुटपुटे की चादर ओढ़ती धरती के ऊपर कुछ देर तक लालिमा छाई रहती है। संभाल कर ले जाई जा रही दीप शिखा की भांति सांझ का तारा टिमटिमा उठता है। ऐसे दिनों में सब रंग कोमल होते हैं, उजले किंतु चटकीले नहीं। चारों ओर हृदयस्पर्शी मृदुता का वातावरण होता है। ऐसे दिनों में गर्मी काफ़ी तेज़ होती है, कभी-कभी तो खेतों की ढुलवानों पर से भाप सी उठती दिखती है ; पर हवा इस तपस को उड़ा ले जाती है और स्थिर मौसम के पक्के चिह्न – धूल के बगूले ऊंचे सफ़ेद सतूनों से खेतों को पार करते सड़कों पर उड़ते जाते हैं। स्वच्छ खुश्क हवा में चिरायते, काटी हुई रई और कूटू की गंध मिली होती है। रात घिरने से दो घड़ी पहले तक भी नमी का एहसास नहीं होता। किसान फ़सल काटने को ऐसे ही मौसम की कामना करते हैं।

ठीक ऐसे ही दिन तूला प्रांत के चेर्न ज़िले में मैं जंगली मुर्गों का शिकार करने निकला था। मैंने काफ़ी सारी चिड़ियां मार ली थीं और मेरा भरा हुआ झोला बेरहमी से कंधे में गड़ रहा था। सांझ ढल रही थी, अस्त हो गए सूरज की किरणें आकाश को आलोकित नहीं कर रही थीं, पर तो भी वह उजला था, गोधूलि की शीतल आभा में धुंधलका गहराता हुआ बढ़ रहा था। तब कहीं जाकर मैंने घर लौटने का निश्चय किया। तेज़-तेज़ क़दम भरते हुए मैंने झाड़ियों का मैदान पार किया, टीले पर चढ़ गया, लेकिन मेरी आशा के विपरीत न तो दाईं ओर बलूत कुंज था, न दूर कहीं छोटा सा सफ़ेद गिरजा

नज़र आ रहा था, यहां तो बिल्कुल ही दूसरी, अनजान जगह थी। नीचे एक संकरी घाटी फैली हुई थी और बिल्कुल सामने तेज़ ढलान पर एस्प वृक्षों का घना झुरमुट चला गया था। मैं हैरान-परेशान सा रुक गया, इधर-उधर नज़र दौड़ाई। "धत् तेरे की! मैं तो बिल्कुल दूसरी जगह पहुंच गया: ज्यादा दाईं ओर को चला आया," मैंने सोचा। अपनी ग़ल्ती पर चकित होता हुआ मैं फुर्ती से टीले पर से उतर गया। तत्क्षण अप्रिय सी, थिर सीलन ने मुझे घेर लिया, मानो मैं किसी तहख़ाने में उतर आया था। घाटी के तल पर घनी ऊंची घास की एकदम गीली, सफ़ेद, सपाट चादर बिछी हुई थी, उस पर चलते हुए मन कांपता था। मैंने जल्दी-जल्दी घाटी पार की और बाएं घूमता हुआ एस्प वन के बगल-बगल चलने लगा। एस्पों के ऊंघते शिखरों के ऊपर चमगादड़ उड़ने लगे थे। अस्पष्ट से निर्मल आकाश में फरफराते वे रहस्यमयी जीव से लगते थे। आकाश में काफ़ी ऊंचे एक छोटा बाज़ अपने घोंसले पर लौटने की जल्दी में तेज़ी से सीधा उड़ता चला गया। मैं सोच रहा था: "बस, उस छोर तक पहुंचते ही आगे सड़क होगी। हां, पांच फ़र्लांग का चक्कर तो लग ही गया!"

आख़िर मैं जंगल के उस छोर तक पहुंच गया, पर वहां कोई सड़क न थी। मेरे सामने नीची-नीची झाड़ियां फैली हुई थीं और उनके पीछे दूर-दूर तक वीरान खेत दिख रहा था। मैं फिर रुक गया। "क्या माजरा है?.. आख़िर कहां आ पहुंचा मैं?" मैं यह याद करने लगा कि मैं दिन भर किधर-किधर गया था। "अरे हां, ये तो पराख़िनो की झाड़ियां हैं।" आख़िर मेरे मुंह से निकला। "और वह वहां सिन्देयेव कुंज होना चाहिए... कैसे आ गया मैं इतनी दूर?.. अजीब बात है! अब फिर दाएं चलना चाहिए।"

मैं झाड़ियों के बीच से दाईं ओर को बढ़ने लगा। उधर रात घिरती आ रही थी, काली घटा की तरह बढ़ती जा रही थी। लगता था कि सांझ की धुंध के साथ चारों ओर से अंधेरा उठ रहा है और ऊपर से भी छितर रहा है। मैं किसी पगडंडी पर जा पहुंचा। पगडंडी पर घास उग आई थी, न जाने कब से कोई उस पर नहीं चला था। ध्यान से आगे देखता हुआ मैं उस पर चलने लगा। चारों ओर सब कुछ तेज़ी से काला पड़ता जा रहा था और निस्तब्धता छाती जा रही थी – बस कभी-कभार कोई बटेर चहक उठता था। अपने कोमल

पंखों पर निश्शब्द उड़ता कोई निशाचर पंछी मुझसे टकराता-टकराता बचा और सहमा सा एक ओर को अंधेरे में ग़ोता लगा गया। मैंने झाड़ियों का मैदान पार कर लिया और खेत में मेड़-मेड़ चलने लगा। अब दूर की चीज़ें मुश्किल से ही नज़र आ रही थीं: चारों ओर धुंधला सफ़ेद खेत फैला हुआ था। उसके पार उमड़ता-घुमड़ता अंधेरा पल-पल बढ़ता जा रहा था। थिर हो चली हवा में मेरे क़दमों की दबी-दबी आवाज़ गूंज रही थी। धूमिल पड़ गया आकाश फिर से नीला हो रहा था, पर यह रात की नीलिमा थी। तारे छिटक गए, झिलमिलाने लगे।

जिसे मैं कुंज समझे था, वह काला, गोलाकार टीला निकला। "आखिर कहां आ गया मैं?" मैंने फिर से कहा, तीसरी बार थमा और प्रश्न भरी दृष्टि से अपने अंग्रेज़ी नस्ल के पीले-चितकबरे कुत्ते दिआन्का की ओर देखा, जो बिलाशक सभी चौपायों में सबसे अक्लमंद है। पर सबसे अक्लमंद कुत्ते ने बस दुम हिला दी, अपनी थकी-थकी आंखें झपकाईं और कोई काम की सलाह नहीं दी। मुझे उसके सामने शर्म आई और मैं यकायक आगे बढ़ चला, मानो सहसा मुझे यह पता चल गया हो कि किधर जाना चाहिए। टीले का चक्कर काटकर उसे पार किया और एक घाटी में जा पहुंचा, जो अधिक गहरी न थी। यहां चारों ओर ज़मीन जुती हुई थी। मुझे एक अजीब सी अनुभूति हुई।

यह घाटी विशाल कड़ाहे की शक्ल की थी, हल्की सी ढलान नीचे को चली गई थी। और नीचे तलहटी में कुछ बड़े-बड़े सफ़ेद पत्थर सीधे-सतर खड़े थे, लगता था मानो वे किसी गुप्त मंत्रणा के लिए वहां रेंग आए हों। घाटी में सब कुछ इतना अचल और मूक था, इतना सपाट था, उसके ऊपर आसमान ऐसा मनहूस सा लगता था कि मेरा कलेजा बैठ गया। पत्थरों के बीच कोई जीव धीमी सी, दयनीय आवाज़ में चिचियाया। मैंने जल्दी-जल्दी टीले पर लौटने की की। अभी तक मैंने घर का रास्ता ढूंढ़ लेने की आशा न खोई थी, पर अब मैं समझ गया कि बिल्कुल भटक गया हूं। चारों ओर घने अंधकार में डूबी जगहों को पहचानने की कोई कोशिश न करते हुए मैं तारों को देखता नाक की सीध में अललटप्पू चल दिया... कोई आधे घंटे तक मैं यों ही मुश्किल से पैर घसीटता चलता रहा। लगता था कि पहले कभी भी मैं ऐसे निर्जन इलाक़े

में नहीं आया ; कहीं कोई आग नहीं टिमटिमा रही थी, कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे रही थी। एक के बाद एक हल्की ढलान वाले टीले आ रहे थे, खेतों के सिलसिले का कोई अंत न था, झाड़ियां अचानक ऐन नाक के सामने ज़मीन में से निकल पड़ती थीं। मैं चलता जा रहा था और सोच रहा था कि बस अब कहीं लेटकर रात काट लूं, पर तभी मैंने अपने आप को एक अथाह गर्त के किनारे पाया।

आगे बढ़ा पांव मैंने जल्दी से पीछे हटा लिया। रात के प्रायः अभेद्य अंधकार में मुझे बहुत नीचे एक विशाल मैदान दिखा। चौड़ी नदी ने उसे अर्द्धवृत्त में घेर रखा था, जो मेरे से दूर को जा रहा था। जब-तब नज़रों से टकराती नदी की अस्पष्ट सी, फ़ौलादी झिलमिल से उसके बहाव का आभास हो रहा था। जिस टीले पर मैं खड़ा था वह एकदम सीधी कगार के रूप में नीचे चला गया था। घनी नीली रिक्तता में टीले की विशाल काली आकृति अलग से दिख रही थी। मेरे ठीक नीचे कगार और मैदान के बीच एक कोना सा बन गया था। यहां नदी प्रायः थिर ही थी, काले दर्पण सी। टीले की खड़ी ढलान की ओट में नदी के पास एक दूसरे के निकट ही दो अलावों की लाल लपटें उठ रही थीं, धुआं छोड़ रही थीं। उनके इर्द-गिर्द लोग हिलडुल रहे थे, परछाइयां मंडरा रही थीं, कभी-कभी छोटे से – घुंघराले बालों वाले सिर का अगला हिस्सा चमक उठता था।

अब मैं पहचान गया कि मैं कहां आ भटका हूं। यह चरागाह हमारे इलाक़े में 'बेझिन चरागाह' के नाम से जानी जाती है। पर घर लौटने की अब हिम्मत न रही थी, वह भी रात में। थकावट के मारे खड़ा न हुआ जा रहा था। मैंने तय किया कि अलावों के पास जाता हूं और इन लोगों के साथ बची-खुची रात काट लेता हूं। मेरा ख़्याल था कि ये लोग मवेशियों को हाट में ले जानेवाले चरवाहे हैं। मैं सही-सलामत नीचे उतर गया, पर जिस आख़िरी टहनी को मैंने पकड़ रखा था, उसे हाथ से छोड़ भी न पाया था कि दो बड़े-बड़े, झबरीले, सफ़ेद कुत्ते ग़ुस्से से भौंकते हुए मेरी ओर लपके। अलावों के पास से बच्चों की खनकती आवाज़ें आईं। दो-तीन लड़के तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने चिल्लाकर पूछा : "कौन है?", मैंने जवाब दिया और वे दौड़े-दौड़े मेरी ओर आए, कुत्तों

को हटा लिया, जो मेरे दिआन्का को आया देखकर ख़ास तौर पर हैरान थे। मैं लड़कों के पास चला गया।

अलाव के इर्द-गिर्द बैठे लोगों को चरवाहा समझना मेरी भूल थी। ये तो पड़ोस के गांव के लड़के थे, जो घोड़ों के झुंड की रखवाली कर रहे थे। गर्मियों के दिनों में हमारे यहां घोड़ों को रात में ही चरागाहों में छोड़ा जाता है: दिन में मक्खियां और कुकुरमाछियां उन्हें तंग कर मारें। गोधूलि की वेला में घोड़ों को चरागाह में ले जाना और प्रभात वेला में वापिस हांक लाना – किसान बच्चों के लिए इससे बढ़कर ख़ुशी का काम और कोई नहीं। नंगे सिर, भेड़ की खाल के पुराने कोट कसे वे मरियल सी, पर तेज़ तर्रार घोड़ों पर सवारी गांठते हैं। चिल्लाते हुए, हू-हा करते, टांगें-बाहें हिलाते, ऊंचे-ऊंचे उछलते वे घोड़ों को दौड़ा ले जाते हैं, खिलखिलाकर हंसते जाते हैं। सड़क पर अपने पीछे धूल के पीले सतूने छोड़ते जाते हैं; घोड़ों की टापें दूर तक सुनाई देती हैं, कनौतियां खड़ी किए वे दौड़ते जाते हैं; आगे-आगे अपनी दुम हवा में उठाए निरंतर चाल बदलता कोई झबरा सुरंग घोड़ा दौड़ता जाता है, जिसकी अयाल में गोखरू उलझे होते हैं।

मैंने लड़कों को बताया कि मैं भटक गया हूं और उनके पास बैठ गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कहां से आया हूं, फिर चुप हो गए, एक ओर को हट गए। हमने कुछ देर बातें कीं। मैं एक बूची झाड़ी के नीचे लेट गया और इधर-उधर देखने लगा। बड़ा ही मनमोहक दृश्य था: अलावों के इर्द-गिर्द लाल दमक का घेरा थरथरा रहा था और अंधेरे से टकराकर मानो ठिठक जाता था; कभी-कभार कोई लपट तेज़ हो उठती और इस घेरे की परिधि के बाहर प्रकाश की द्रुत कौंध फैल जाती; कोई अग्नि जिह्वा पतली-पतली सूखी टहनियों को चाटती और तुरंत ही विलीन हो जाती; और कभी टेढ़ी-मेढ़ी लंबी-लंबी परछाइयां अलावों तक बढ़ आतीं: प्रकाश अंधकार से जूझ रहा था। कभी-कभी लौ धीमी पड़ जाती और प्रकाश का घेरा सिकुड़ जाता, आगे बढ़ आए अंधकार में से सहसा किसी घोड़े का सिर – धारीदार कुम्मैत या नुकरा, भावहीन आंखें गाड़कर हमारी ओर देखता, लंबी घास तेज़ी से चरता और फिर से झुककर तुरंत ही ओझल हो जाता। बस घोड़े के घास चरने और फुफकारने की ही

आवाज़ सुनाई देती रहती। उजली जगह में से यह देखना कठिन होता है कि अंधकार में क्या हो रहा है, अत: लगता था कि आसपास सब कुछ काले परदे में छिपा हुआ है। हां, दूर, क्षितिज के पास टीले और जंगल धुंधले-धुंधले धब्बों के रूप में दिख रहे थे। काला, तारों से भरा, ओर-छोर विहीन आकाश अपनी सारी रहस्यमय गरिमा में हमारे सिरों के ऊपर छाया हुआ था। रूस की गर्मियों की रात की विशिष्ट, अभिभूत कर देनेवाली और ताज़गी भरी सुगंध फेफड़ों में भर रही थी और उससे हृदय में मीठी कसक उठ रही थी। चारों ओर कहीं कोई ध्वनि, कोई स्वर न था। बस कभी-कभार ही पास की नदी में किसी बड़ी मछली के उछलने से ज़ोर से छपछपाहट होती और दौड़ आई लहर से तट के सरकंडों में हुई हल्की सी आहट सुनाई देती ... सिर्फ़ अलाव ही धीरे-धीरे तड़-तड़ करते जल रहे थे।

लड़के इन अलावों के इर्द-गिर्द ही बैठे थे और वे दो कुत्ते भी बैठे थे, जो मुझे काट खाने को इतने उतावले हो उठे थे। काफ़ी देर तक वे मेरी उपस्थिति को शांति से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे और उनींदे से आंखें मिचमिचाते और तिरछी नज़रों से अलावों की ओर देखते हुए रह-रहकर गुर्रा उठते – मानो उनका असाधारण अभिमान उन्हें कचोटता। पहले वे गुर्राते रहे, फिर धीरे-धीरे किकियाने लगे, मानो इस बात पर खेद प्रकट कर रहे हों कि अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकते। कुल पांच लड़के थे वहां: फ़ेद्या, पव्लूशा, इल्यूशा, कोस्त्या और वान्या। (उनकी बातचीत से मुझे उनके नाम पता चले और अब मैं तुरंत ही पाठकों को उनसे परिचित कराना चाहता हूं।)

लड़कों में सबसे बड़ा था फ़ेद्या। वह लगभग चौदह बरस का लगता था। मुघड़ शरीर, सुंदर, किंतु कुछ छोटे-छोटे नाक-नक्श, सुनहरी घुंघराले बाल और होठों पर सदा छाई रहनेवाली मुस्कान, जिसमें प्रसन्नता भी थी और अन्यमनस्कता भी। उसके हाव-भाव से साफ़ लगता था कि वह किसी खाते-पीते घर का है और ज़रूरत से मजबूर होकर नहीं, बल्कि मौज करने यहां चरागाह में आया है। वह चटकीली छींट की, पीली गोटवाली कमीज़ पहने था। नया छोटा कोट उसने ओढ़ रखा था, जो उसके संकरे कंधों पर खिसक-खिसक जाता था। नीली सी पेटी में कंघा लटक रहा था। पिंडलियों तक ऊंचे बूट जो वह

पहने था, उसके अपने ही थे, उसके पिता के नहीं। दूसरे लड़के पव्लूशा के काले बाल उलझे-पुलझे थे, आंखें सुरमई, कल्ले चौड़े, चेहरा पीला सा, चेचक के दाग़ों से छलनी, बड़ा लेकिन अच्छे तराशवाला मुंह। कुल जमा उसका सिर काफ़ी बड़ा था, जैसा कि हमारे यहां कहा जाता है – हांडी जैसा, बदन ठिगना और बेढ़ब सा था। यह तो मानना पड़ेगा कि लड़का देखने में सुंदर नहीं था, पर फिर भी वह मुझे अच्छा लगा: वह एकदम सीधे देखता था और उसकी आंखों में बुद्धिमत्ता का भाव था। उसकी आवाज़ से भी शक्ति का आभास होता था। अपनी वेश-भूषा पर वह गर्व नहीं कर सकता था: घर की कती-बुनी कमीज़ और पैबंद लगी पतलून – यही था उसका सारा पहनावा। तीसरे बालक इल्यूशा का चेहरा ख़ासा मामूली सा था – लम्बूतरा, चुंधी सी आंखें, और तोते सी नाक। उसके चेहरे पर किसी ठस, चिड़चिड़ी बेचैनी की छाप थी। होंठ मिंचे हुए थे और उनमें ज़रा भी गति न थी, भौंहें भी सिकुड़ी की सिकुड़ी ही थीं – मानो अलाव से वह बराबर चुंधिया रहा हो। उसके हल्के पयाल के रंग के, प्राय: सफ़ेद से बालों की लटें चिपकी सी फ़ैल्ट टोपी के नीचे से जहां-तहां निकली हुई थीं। वह रह-रहकर दोनों हाथों से अपनी टोपी को कानों पर खींचता था। उसकी टांगों और पांवों पर मोज़ों की जगह कपड़े की चौड़ी पट्टियां लिपटी हुई थीं और उनके ऊपर वह छाल की जूतियां पहने था। मोटी डोरी तीन बार उसकी कमर पर लिपटी हुई थी और उसके काले रंग के झगले को अच्छी तरह संभाले हुए थी। पव्लूशा और वह देखने में बारह साल से ज़्यादा के नहीं लगते थे। चौथा, कोस्त्या कोई दस बरस का था। उसके विचारमग्न और उदास से चेहरे को देखकर मुझे कौतूहल हो रहा था। उसका सारा चेहरा छोटा सा, दुबला-पतला, नीचे को नुकीला था – गिलहरी जैसा; होंठ मुश्किल से नज़र आते थे; किंतु उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें और उनकी तरल चमक एक विचित्र सा प्रभाव डालती थीं। वे मानो कोई ऐसी बात कहना चाहती थीं, जिसे ज़बान, कम से कम उसकी ज़बान, शब्दों में व्यक्त करने में असमर्थ थी। वह नाटे कद और कमज़ोर बदन का था। कपड़े भी वह मामूली से ही पहने थे। आख़िरी लड़के वान्या पर तो पहले मेरी नज़र ही नहीं पड़ी: वह एक चौड़ी सी चटाई तले आराम से ज़मीन पर पड़ा हुआ था, कभी-कभार ही

वह अपना घुंघराले बालों वाला सिर चटाई के नीचे से बाहर निकालता था। इस लड़के की उम्र सात बरस से ज़्यादा न थी।

सो, मैं एक ओर को झाड़ी तले लेटा हुआ चुपके-चुपके लड़कों को देख रहा था। एक अलाव पर छोटा सा पतीला लटक रहा था, उसमें आलू उबल रहे थे। पव्लूशा उन पर नज़र रख रहा था, घुटनों के बल खड़ा होकर वह उबलते पानी में खपची डालकर देख रहा था। फ़ेद्या कोहनी टेककर लेटा हुआ था, उसके कोट का दामन फैला हुआ था। इल्यूशा कोस्त्या के पास बैठा था और पहले की ही भांति भौंहें सिकोड़े हुए था। कोस्त्या सिर एक ओर को झुकाए कहीं दूर नज़रें गड़ाए हुए था। वान्या अपनी चटाई तले हिले-डुले बिना लेटा हुआ था। मैंने सोने का बहाना किया। धीरे-धीरे लड़कों की बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू हो गया।

पहले उन्होंने कुछ इधर-उधर की बातें कीं, कल के काम की, घोड़ों की; और फिर सहसा फ़ेद्या ने मानो बीच में छूट गई बातचीत का सिलसिला फिर से पकड़ते हुए इल्यूशा से कहा:

"अच्छा तो, तूने घर-भुतने को देखा था?"

"नहीं देखा तो नहीं, वह दिखाई देता भी नहीं," इल्यूशा ने फटी-फटी, मरियल सी आवाज़ में जवाब दिया। उसका स्वर चेहरे के हाव-भाव से एकदम मेल खाता था। "हां, उसकी आवाज़ सुनी थी ... सो भी मैंने अकेले ने नहीं।"

"कहां डेरा डाले है वह?" पव्लूशा ने पूछा।

"पुरानी मिल में।"

"अरे! तू क्या मिल में जाता है?"

"और नहीं तो क्या। मेरा भाई अव्यूश्का और मैं कागज़ चिकनाते हैं।"

"वाह रे, कामगार बन गया!"

"अच्छा तो कैसे तूने आवाज़ सुनी थी?" फ़ेद्या ने पूछा।

"अभी बताता हूं। हुआ यह कि अव्यूश्का और मैं, और वह फ्योदर मिख़ेयेव्स्की, और इवाश्का कसोइ, साथ में वह लाल टीले वाला इवाश्का भी, और इवाश्का सुख़ारूकव और दूसरे भी लड़के, बस पूरी पाली के ही लड़के थे हम; सो हमें मिल में रात काटनी पड़ी, काटनी तो क्या पड़ी, वह

हमारा मुखिया नज़ारव बोला कि भई लड़को कल काम बहुत है, तो तुम क्या बेकार अब घर जाओगे, मत जाओ। सो हम वहीं रुक गए। सब लेट गए पास-पास ही और तभी अव्यूश्का कहने लगा कि भाइयो अगर कहीं यहां घर-भुतना आ गया तो?.. और बस उसके इतना कहने की देर थी कि हमारे ऊपर कोई चलने लगा, हम लोग तो नीचे की मंज़िल में लेटे हुए थे, और वह ऊपर डग नाप रहा था, जहां चक्के हैं। वह ऐसे टहल रहा था और तख़्ते तो बस उसके बोझ से सारे झुके जा रहे थे, चरमरा रहे थे; हमारे सिरों के ऊपर से होता हुआ वह गुज़र गया और अचानक चक्के पर ज़ोर से पानी गिरने लगा; चक्का खड़खड़ाया, खड़खड़ाया और लो चल दिया; और पानी के डट्टे तो बंद थे। हम हैरान: यह किसने डट्टे उठा दिए कि पानी बहने लगा। चक्का थोड़ी देर घूमा और फिर रुक गया। अब वह ऊपर के दरवाज़े की ओर चल दिया और ज़ीने से उतरने लगा, बड़े इत्मीनान से वह उतरता जाए, सीढ़ियां तो जैसे उसके बोझ से कराह उठीं... आख़िर वह हमारे दरवाज़े तक आ गया, थोड़ी देर खड़ा रहा, खड़ा रहा और फिर दरवाज़ा एकदम सारा का सारा खुल गया। हमारी तो बस सिट्टी-पिट्टी गुम! पर देखा तो कुछ है ही नहीं... और अचानक देखते क्या हैं कि एक टंकी का जाल हिलने लगा, फिर वह उठा, उठता गया, फिर नीचे हो गया, हवा में यों घूमा जैसे कोई उसे फटक रहा हो और फिर अपनी जगह जा टिका। अब एक दूसरी टंकी के पास एक कांटा अपनी खूंटी से उतर गया और फिर खूंटी पर जा लटका; फिर मानो कोई दरवाज़े की ओर चल दिया और अचानक ऐसे ज़ोर से कोई खांसा-खंखारा, बड़ी भारी-भारी आवाज़ में। हम सब तो बस एक दूसरे से चिपक गए, सिर दुबकाने लगे... तौबा, कितना डर गए थे हम!"

"ओहो!" पव्लूशा बोला। "पर वह खांसा क्यों?"

"पता नहीं, शायद सीलन थी, इसलिए।"

थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

"क्यों, आलू उबल गए क्या?" फ़ेद्या ने पूछा।

पव्लूशा ने छपटी से छूकर देखे।

"नहीं, अभी कच्चे हैं... बाप रे, कैसे जोर का छपाका हुआ," नदी

की ओर मुंह मोड़कर वह बोला, "ज़रूर कोई बड़ी मछली है... वह देखो, तारा टूटा!"

"लो, मैं एक मज़ेदार क़िस्सा सुनाता हूं," कोस्त्या अपनी पतली सी आवाज़ में बोलने लगा। "सुनो भाइयो, अभी उस दिन बापू ने मेरे सामने यह बात सुनाई थी।"

"अच्छा तो सुना," फ़ेद्या ने मानो आज्ञा देते हुए कहा।

"गव्रीला को तो तुम जानते ही हो, वही जो गांव में बढ़ई है।"

"हां, जानते हैं।"

"पता है क्यों वह हमेशा इतना उदास, खोया-खोया रहता है, कभी हंसता-बोलता नहीं, पता है? सुनो, मैं बताता हूं: बापू बता रहे थे कि एक दिन वह गया जी जंगल में, जंगली अखरोट बीनने। गया जो जंगल में, तो वहां रास्ता भूल गया; न जाने कहां जा पहुंचा, कहां भटक गया। इधर भी जाए, उधर भी जाए, पर नहीं, कहीं रास्ता मिले ही नहीं। ऊपर से रात घिरती आ रही थी। लो जी, आख़िर वह एक पेड़ तले बैठ गया। सोचने लगा कि चलो, सुबह होने तक यहीं बैठ लेता हूं। सो जी, वह बैठा-बैठा ऊंघने लगा और सो गया। अचानक सुनता क्या है कि कोई उसे पुकार रहा है। इधर-उधर देखा पर कोई है ही नहीं। वह फिर ऊंघने लगा, फिर वही पुकार सुनाई दी। वह फिर ताकने लगा, आख़िर जी देखता क्या है कि उसके सामने पेड़ की डाली पर जलपरी बैठी है, झूलती जा रही है, उसे बुला रही है और ख़ुद हंसी से लोट-पोट हो रही है... अब, भैया जी, रात तो चांदनी थी, ऐसी चांदनी कि बस एक-एक पत्ता दिखाई देता था। सो, लो जी वह उसको बुलाए जाए, और ख़ुद ऐसी गोरी-चिट्टी डाली पर बैठी हुई थी, जैसे डेस मछली या रोच या फिर वो कार्प मछली भी यों चांदी सी चमकती है... अब, भैया जी, गव्रीला बढ़ई के होश हवास गुम, उधर वो जलपरी उसे इशारे किए जाए, हंस-हंसकर बुलाती जाए। गव्रीला तो उठकर चल ही दिया था, पर यह समझो कि भगवान ने उसके दिल में डाल दी: उसने अपनी छाती पर सलीब का निशान बना ही लिया... पता है कितनी मुश्किल हुई थी उसे ऐसा करने में, वह कह रहा था: हाथ तो जैसे पत्थर का हो गया था, उठता ही न था। ओफ़, कमबख़त,

चल !.. बस, भैया जी, जैसे ही उसने सलीब का निशान बनाया जलपरी का हंसना बंद, और लगी वह फूट-फूटकर रोने ... रोती जाए, रोती जाए, बालों से आंखें पोंछती जाए, और बाल तो उसके हरे-हरे थे, जैसे तुम्हारा सन। सो जी, गव्रीला उसे देखता रहा, देखता रहा और आखिर पूछ बैठा : 'अरी, जलपरी, तू रोती क्यों है ?' जलपरी ने भी उसे तुरंत जवाब दिया, बोली : 'अगर तू सलीब का निशान न बनाता, तो आखिरी दिन तक मौज से मेरे साथ रहता ; रोना मुझे इसी बात का है, इसीलिए मैं दुखी हूं कि तूने सलीब का निशान बनाया, पर मैं अकेली दुखी नहीं रहूंगी ; जा, तू भी मरते दम तक अब दुखी रहेगा।' लो जी, बस इतना कहकर वह तो ग़ायब हो गई और गव्रीला को भी फ़ौरन घर का रास्ता समझ में आ गया ... बस, तभी से वह इतना उदास-उदास रहने लगा है।"

"हुं, देखो तो !" कुछ देर की ख़ामोशी के बाद फ़ेद्या बोला। "कैसे कोई यह भुतनी-वुतनी ईसाई आत्मा को भ्रस्ट कर सकती है – आखिर गव्रीला ने उसका कहना तो माना नहीं था ?"

"बस, ऐसे ही होता है।" कोस्त्या बोला। "गव्रीला भी कहे था कि उसकी आवाज़ इतनी पतली और दयनीय थी जैसे कोई मेंढकी हो।"

"तेरे बापू ने खुद यह बात सुनाई थी क्या ?" फ़ेद्या पूछे जा रहा था।

"हां। मैं बिस्तर में लेटा था, सब कुछ सुन रहा था।"

"गज़ब की बात है ! उसे भला काहे की उदासी !.. हां, भई, ज़रूर वह जलपरी को भा गया होगा, तभी तो वह उसे बुला रही थी।"

"अजी हां, भा गया !" इल्यूशा बोल पड़ा। "ज़रूर भाएगा ! वह तो उसे गुदगुदाकर मार डालना चाहती थी, समझे। इन जलपरियों का काम ही यही है।"

"यहां भी तो जलपरियां होंगी," फ़ेद्या ने कहा।

"नहीं, यह जगह साफ़ है," कोस्त्या ने जवाब दिया। "बस यह नदी ही पास है, और तो कुछ नहीं।"

सब चुप हो गए। अचानक कहीं दूर सुदीर्घ, बिल्कुल विलाप जैसी चीख गूंजी। यह रात्रि की उन रहस्यमयी ध्वनियों में से एक थी, जो गहन नीरवता

में सहसा उत्पन्न हो जाती हैं, हवा में उठती हैं, गुंजायमान होती रहती हैं और फिर धीरे-धीरे विलीन होती हुई दूर चली जाती हैं। कान लगाएं तो लगता है कोई आवाज़ नहीं है, पर एक हल्की सी गूंज गूंजती रहती है।

ऐसा लगता था मानो ऐन आसमान के पास किसी ने बहुत ही लंबी चीख छोड़ी और फिर जंगल में कोई उसके जवाब में तीखी आवाज़ में खिलखिलाकर हंसा और नदी के वक्ष पर सरसरी सी फुफकार बढ़ गई। लड़कों ने एक दूसरे की ओर देखा, सिहर उठे...

"ईसा हमारे साथ हैं!" इल्यूशा बुदबुदाया।

"वाह रे, कबूतरो!" पव्लूशा चिल्लाया। "क्यों कांप उठे? देखो, आलू उबल गए।" सब लड़के पतीले के पास आ गए और गरम-गरम भाप छोड़ते आलू खाने लगे; सिर्फ़ वान्या ही हिला-डुला नहीं। "अरे, खाएगा नहीं क्या?" पव्लूशा ने पूछा।

पर वह अपनी चटाई के नीचे से नहीं निकला। पतीला जल्दी ही खाली हो गया।

"अच्छा, तुमने सुना, अभी उस दिन हमारे यहां वर्नावित्सी में क्या हुआ?" इल्यूशा ने बात छेड़ी।

"बांध के पास?" फ़ेद्या ने पूछा।

"हां, हां, वहीं, टूटे बांध के पास। वह है असली भुतहा जगह, और इतनी वीरान। चारों ओर खड्ड, गड्ढे, निचानें हैं और इतने सांप हैं वहां..."

"अच्छा, बता तो क्या हुआ वहां?"

"सुनो, क्या हुआ वहां। तुझे फ़ेद्या शायद पता नहीं, पर वहां एक आदमी डूब गया था, बहुत पहले जब पानी गहरा था। तो उसकी क़ब्र भी वहीं पर है। वैसे तो अब क़ब्र बस ज़रा सी ही दिखती है, एक ढूह सा ही रह गया है... तो हुआ यह कि कुछ दिन पहले कारिंदे ने येर्मील शिकारिये को बुलाया। वह येर्मील है न, जो शिकारी कुत्तों को पालता है। कुत्ते तो उसके सब मर गए हैं, पता नहीं क्यों उसके पास रहते ही नहीं, कभी नहीं रहे, वैसे काम वह अपना ख़ूब जानता है। अच्छा तो कारिंदे ने येर्मील को बुलाया और बोला कि जा डाक ले आ। हमारे यहां हमेशा येर्मील डाक लेने जाता है। सो येर्मील शहर

चला गया, बस वहां उसने कुछ देर-वेर कर दी, वापस जब चला, तो पिए हुए था। घोड़े पर वह आ रहा था, रात पड़ गई, चांदनी रात... तो आया येर्मील बांध पर से, बस ऐसा रास्ता निकला उसका। लो जी, चला आ रहा येर्मील शिकारिया और देखता क्या है कि जहां वो क़ब्र है न, वहीं ढूह पर एक मेमना टहल रहा है – ऐसा घुंघराले रेशों वाला, सफ़ेद-सफ़ेद। सो येर्मील ने सोचा क्यों न, मैं इसे उठा लूं। क्या यहां बेकार जाएगा। बस वह घोड़े से उतरा और मेमने को गोद में उठा लिया। मेमना भी चुपके से गोद में आ गया। बस उसे उठाकर येर्मील घोड़े की ओर चल दिया, और घोड़ा लगा थूथनी फेरने, फुफकारने; पर ख़ैर उसने घोड़े को फटकारा और मेमने को लेकर उस पर सवार हो गया, आगे चल दिया। मेमने को उसने अपने सामने रखा हुआ था। वह मेमने की ओर देखे और मेमना भी सीधा उसकी आंखों में आंखें डालकर देखता जाए। बस डर गया जी येर्मील शिकारिया: याद नहीं पड़ता कि कभी कोई मेमना यों ताकता हो; पर ख़ैर कोई बात नहीं; वह मेमने को सहलाने लगा, बोला: 'पुच-पुच-पुच!' लो जी मेमने ने भी दांत निकाले और बोल पड़ा: 'पुच-पुच-पुच'...

कहानी कहनेवाले के मुंह से यह आख़िरी शब्द निकला भी न था कि सहसा दोनों कुत्ते एकबारगी उठ खड़े हुए, ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए अलाव से दूर लपके और अंधेरे में ओझल हो गए। सब लड़के डर गए, वान्या झट से अपनी चटाई तले से निकल आया, पव्लूशा चिल्लाता हुआ कुत्तों के पीछे दौड़ा। उनके भौंकने की आवाज़ दूर होती जा रही थी... बौखला उठे घोड़ों के झुंड की बेचैनी भरी भगदड़ की आवाज़ आई। पव्लूशा ज़ोर से चिल्लाया: "भूरे! झूचका!" कुछ क्षण बाद कुत्तों का भौंकना बंद हो गया; पव्लूशा की आवाज़ अब दूर से आ रही थी... कुछ और क्षण बीते; लड़के हैरान-परेशान से एक दूसरे की ओर देख रहे थे, मानो यह प्रतीक्षा करते हुए कि क्या होगा... सहसा तेज़ी से दौड़ते घोड़े की टापें सुनाई दीं, घोड़ा अलाव के बिल्कुल पास ही झटके से रुक गया, उसका अयाल पकड़कर पव्लूशा फुर्ती से नीचे कूद पड़ा। दोनों कुत्ते प्रकाश के घेरे में उछल आए और तुरंत ही अपनी लाल-लाल जीभें बाहर निकाले बैठ गए।

"क्या हुआ ? क्या था ?" लड़कों ने पूछा।

"कुछ नहीं," पावेल ने जवाब दिया और घोड़े की ओर हाथ हिलाया। "ऐसे ही कुत्तों को कुछ खटका हुआ होगा। मैंने सोचा था, भेड़िया आ गया," लापरवाही से उसने बात पूरी की। वह पूरी छाती फुलाकर सांस ले रहा था।

मैं बरबस विमुग्ध सा पव्लूशा को देखने लगा। इस क्षण वह बहुत अच्छा लग रहा था। उसका असुंदर मुखड़ा घोड़ा दौड़ाने से दमक उठा था और उससे बहादुरी और दृढ़ता झलकती थीं। हाथ में एक संटी तक भी लिए बिना, रात को वह अकेले ही, बेझिझक भेड़िये का सामने करने लपका था। "कितना प्यारा लड़का है!" उसे देखते हुए मैं सोच रहा था।

"देखे हैं क्या यहां भेड़िए ?" डरपोक कोस्त्या ने पूछा।

"यहां हमेशा बहुत होते हैं," पव्लूशा ने जवाब दिया। "पर वे तो जाड़ों में ही तंग करते हैं।"

वह फिर से अलाव के पास बैठ गया। ज़मीन पर बैठते हुए उसने एक कुत्ते के झबरीले सिर पर हाथ रख लिया। कुत्ता खुश हो गया, बड़ी देर तक उसने सिर नहीं घुमाया और तिरछी नज़र से कृतज्ञता और गर्व के साथ पव्लूशा को देखता रहा।

वान्या फिर से चटाई के नीचे दुबक गया।

"हां तो, इल्यूशा, कैसी डरावनी बातें तू सुना रहा था," फिर से फ़ेद्या ने बातों का सिलसिला शुरू किया, सम्पन्न घर का होने के नाते उसे लड़कों की बातचीत में अगुवाई करनी पड़ती थी। (खुद वह कम ही बोलता था, मानो अपना मान बनाए रखने के लिए)। "इधर ये कुत्ते भी न जाने क्यों भौंक पड़े। सचमुच ही मैंने सुना था कि तुम्हारी वह जगह भूतों का अड्डा है।"

"वर्नावित्सी ?.. और नहीं तो क्या। पूरा अड्डा ही है! कहते हैं वहां कई बार बूढ़े मालिक को देखा है—स्वर्गीय मालिक को। लंबा कफ़्तान पहने घूमता रहता है, आहें भरता जाता है और ज़मीन पर कुछ ढूंढ़ता रहता है। सुना है एक बार त्रफ़ीमिच बाबा ने उसे वहां देखा था, पूछने लगा: 'मालिक क्या ढूंढ़ रहे हैं ?'"

"पूछा था उसने ?" आश्चर्यचकित फ़ेद्या बीच में बोल उठा।

"हां, पूछा था।"

"बड़ा बहादुर है तब तो वह ... तो क्या जवाब दिया उसने।"

"बोला, 'तोड़ बूटी* ढूंढ़ रहा हूं'। ऐसे खोखली आवाज़ में कहा: तोड़-बूटी। 'मालिक, तोड़-बूटी का क्या करोगे?' बोला: 'क़ब्र का बोझ नहीं सहा जाता। बाहर निकलना चाहता हूं, बाहर ...'"

"ज़रा देखो तो थोड़ा जिया था क्या! और जीना चाहता है," फ़ेद्या ने कहा।

"क्या अजूबा है!" कोस्त्या बोला। "मैं तो सोचता था कि शनिवार वाले श्राद्ध को ही मरे हुओं को देखा जा सकता है।"

"मरे हुओं को तो कभी भी देखा जा सकता है," इल्यूशा ने विश्वासपूर्वक बात का सूत्र पकड़ा। मैं देख रहा था कि गांव के अंधविश्वासों के बारे में वही सबसे ज्यादा जानता है। "शनिवार वाले श्राद्ध को तो तुम जीते हुओं को भी देख सकते हो, उनको, जिनकी उस साल मरने की बारी है। बस रात को गिरजे के ओसारे पर बैठ जाओ और सड़क की ओर देखते रहो। बस जिनकी मरने की बारी है, वे आते दिखेंगे। हमारे यहां पिछले साल बुढ़िया उल्याना देखने गई थी।"

"देखा उसने किसी को?" कोस्त्या ने कौतूहल से पूछा।

"और नहीं तो क्या। पहले तो वह बड़ी देर बैठी रही। कुछ दिखा नहीं, न कुछ सुनाई दिया ... बस लगता था कहीं एक कुत्ता रह-रहकर भौंक उठता था ... अचानक देखती क्या है कि सड़क पर एक लड़का चला आ रहा है। सिर्फ़ एक कमीज़ पहने। वह ध्यान से देखने लगी – इवाश्का फ़ेदासेयेव चला आ रहा था ..."

"वही, जो वसंत में मर गया?" फ़ेद्या ने बात काटी।

"हां, वही। चलता आ रहा था और सिर नहीं उठा रहा था ... पर उल्याना बुढ़िया उसे पहचान गई ... फिर देखती है कि एक बुढ़िया चली आ

---

* तोड़ बूटी – लोक विश्वास के अनुसार ऐसी बूटी, जिससे सभी कुंडे, ताले टूट जाते हैं। – सं०

रही है ... वह ध्यान से देखने लगी, देखती जाए, देखती जाए ... हे भगवान! – यह तो वह ख़ुद ही चली आ रही थी।"

"सच?" फ़ेद्या ने पूछा।

"हां, सचमुच वही थी।"

"पर वह तो अभी मरी नहीं?"

"तो क्या, साल तो अभी पूरा नहीं हुआ। उसकी हालत तो देखो: जैसे-तैसे प्राण अटके हुए हैं।"

फिर से सब शांत हो गए। पव्लूशा ने मुट्ठी भर सूखी टहनियां आग में डालीं। सहसा तेज़ हो उठी लौ में वे एकदम काली-काली दिखीं, तड़तड़ाने, धुआं छोड़ने और ऐंठने लगीं, जले सिरे ऊपर को उठ-उठ जाते थे। थरथराती हुई चमक चारों ओर फैली, ख़ास तौर पर ऊपर को। सहसा न जाने कहां से एक सफ़ेद कबूतर प्रकाश की परिधि में उड़ आया, सहमा-सहमा सा एक ही जगह पर मंडराया, गरम दमक से चमचमा उठा और पंख फड़फड़ाता हुआ ग़ायब हो गया।

"लगता है भटक गया है," पव्लूशा बोला, "अब उड़ता जाएगा, जब तक कहीं टकरा नहीं जाएगा। जहां टकराएगा बस वहीं रात काटेगा।"

"पव्लूशा, हो सकता है, यह कोई पवित्र आत्मा स्वर्ग को जा रही हो? हैं?" कोस्त्या ने कहा।

पाव्लूशा ने एक और मुट्ठी टहनियों की आग पर फेंकी।

"हो सकता है," आख़िर उसने जवाब दिया।

"अच्छा, पव्लूशा, यह तो बता, तुम्हारे यहां शलामवो में भी वो दैवी चमत्कार* हुआ था?" फ़ेद्या ने फिर से बात छेड़ी।

"जब वो सूरज दिखाई देना बंद हो गया था? क्यों नहीं।"

"ख़ूब डर गए होगे तुम लोग तो?"

"हां, हम अकेले थोड़े ही डरे थे। हमारा मालिक भी हमें पहले से बताता रहा था कि हमें दैवी चमत्कार देखने को मिलेगा, पर जब अंधेरा हुआ, तो

---

* ग्रामीण लोग सूर्य ग्रहण को यही कहते थे। – ले०

सुना है, खुद ही ऐसा डर गया कि पूछो मत और वो जो उसकी बावर्चिन है न, उसने तो जैसे ही अंधेरा हुआ उठाकर सारी हांडियां-वांडियां तोड़ डालीं। बोली: 'अब कौन खाएगा! क़यामत का दिन आ गया।' बस सारा खाना चूल्हे में गिर गया। हमारे गांव में तो भैया ऐसी-ऐसी अफ़वाहें फैल गईं कि अब सफ़ेद भेड़िये धरती को रौंदेंगे, लोगों को फाड़कर खा जाएंगे, आसमान से ख़ूनी पंछी झपटेंगे, और नहीं तो त्रीश्का ही प्रकट होगा।

"कौन त्रीश्का?" कोस्त्या ने पूछा।

"तुझे पता नहीं?" इल्यूशा बड़े जोश से बोल उठा। "अरे वाह रे, किस गांव का है तू, जो तुझे इतना भी नहीं पता कि त्रीश्का कौन है? घर के घोंघचू ही हैं तुम्हारे गांव वाले, निरे घोंघचू। अरे, त्रीश्का ऐसा अद्भुत आदमी होगा, जो एक दिन आएगा; और वो अद्भुत आदमी आएगा ऐसा कि कोई उसे पकड़ नहीं सकेगा और न उसका कुछ बिगाड़ा जा सकेगा: ऐसा अद्भुत आदमी होगा। अब मान लो किसान उसे पकड़ना चाहेंगे: डंडे, लाठियां लेके उसे पकड़ने निकलेंगे, घेर लेंगे, और वह उनकी आंखों में ऐसी धूल झोंकेगा कि वे एक दूसरे को ही मार डालेंगे। उसे मान लो, जेल में बंद कर देंगे, वह पीने को पानी मांगेगा, उसी में डुबकी लगा लेगा और बस ग़ायब हो जाएगा। उसे बेड़ियों, ज़ंजीरों में कस देंगे, वह ताली बजाएगा और वे सब वहीं गिर जाएंगी। बस यह त्रीश्का गांव-गांव, नगर-नगर घूमता फिरेगा और भैया रे, ऐसा धूर्त, ऐसा कुटिल होगा यह त्रीश्का कि सभी भले लोगों को, ईसा के भक्तों को भटकाएगा... और कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा... ऐसा अद्भुत, धूर्त आदमी होगा वह!"

"हां, ऐसा ही होगा वह," पव्लूशा ने धीर-गंभीर स्वर में अपनी बात जारी रखी। "बस उसी का इंतज़ार था हमारे यहां। बड़े-बड़े कह रहे थे कि जैसे ही वो दैवी चमत्कार लगेगा, तभी त्रीश्का आ पहुंचेगा। तो लो जी, चमत्कार भी हो गया। और सब लोग घरों से निकल आए, खेत में जमा हो गए, देखने लगे कि क्या होता है। हमारे यहां तो, तुम्हें पता ही है, जगह खुली है। अचानक देखते क्या हैं कि उधर टीले की ओर से कोई आदमी आ रहा है, ऐसा कमाल का, अजीबोग़रीब सिर उसका। सब चिल्ला पड़े: 'हाय

त्रीश्का आ गया ! हाय त्रीश्का आ गया !' और भाग खड़े हुए ! हमारे गांव का मुखिया नाले में जा कूदा, उसकी घरवाली फाटक में ही फंस गई, चीखने-चिल्लाने लगी, अपने कुत्ते को ही इतना डरा दिया कि वह जंजीर तोड़कर बाड़ के पार कूदा और दुम दबाकर जंगल में भाग गया। और वो कूज़्का का बाप है न, दराफ़ेइच, वह जई के खेत में दुबक गया, और लगा बटेर की तरह चीखने : 'शायद, पंछी पर तो हत्यारा हाथ न ही उठाए।' ओह ऐसी भगदड़ मची कि पूछो मत ! आदमी वो हमारे गांव का ही था ववीला, जो लकड़ी के पीपे बनाता है। उसने मटका खरीदा था और खाली मटका सिर पर डाले आ रहा था।"

सब लड़के हंसने लगे और फिर पल भर को चुप हो गए, जैसा कि प्रायः खुली हवा में बतिया रहे लोगों के साथ होता है। मैंने चारों ओर नज़र दौड़ाई : भव्य रात थी ; सांझ ढले की ओसीली ताज़गी की जगह अब मध्य रात्रि की खुश्क गरमाहट ने ले ली थी। नींद में डूबे खेतों पर रात का मुलायम परदा पड़ा हुआ था और उसके उठने में, प्रभात की पहली सरसराहट, पहली चहक होने में, ओस की पहली बूंदों की झिलमिलाहट होने में अभी काफ़ी देर थी। आकाश पर चांद नहीं था, उसके देर से निकलने के दिन थे। अनगिनत सुनहरे तारे टिमटिमाते हुए मंथर गति से आकाश गंगा की ओर बढ़ते प्रतीत होते थे। और सचमुच ही उन्हें निहारते हुए लगता था मानो हम स्वयं पृथ्वी की अंतहीन, भंवर सी गति का अनुभव कर रहे हों। सहसा नदी पर एक के बाद एक दो बार अजीब सी, दयनीय चीख गूंजी और फिर कुछ क्षण पश्चात दूर से आई ...

कोस्त्या कांप उठा ... "क्या है यह ?"

"बगुला चीखा है," पव्लूशा ने शांत भाव से कहा।

"बगुला," कोस्त्या ने दोहराया। "पव्लूशा, कल शाम को मैंने क्या सुना था, शायद तुझे पता हो ..."

"क्या सुना था तूने ?"

"अभी बताता हूं। मैं कामेन्नया ग्रिदा से शाश्किनो जा रहा था ; पहले तो मैं हेज़ल की झाड़ियों के झुरमुट में चलता रहा, फिर वो जो छोटी सी चरागाह है न उसमें चलने लगा, पता है, जहां वह खोह की ओर को रास्ता है,

वहां, तुझे पता होगा, एक बड़ा गड्ढा है, जिसमें वसंत में पिघली बर्फ़ का पानी भरा रहता है। गड्ढा सारा नरकट के झाड़-झंखाड़ से भरा है। बस इसी गड्ढे के पास से मैं जा रहा था कि भैया अचानक गड्ढे में कोई कराह उठा, ऐसी दर्द भरी आवाज़ थी : "आ-आ-ह – आ-आ-ह ..." मैं तो भैया रे बुरी तरह से डर गया : सांझ का वकत और वो आवाज़ ऐसी दर्दीली थी। लगता था, बस मैं ख़ुद भी रो पड़ंगा। क्या हो सकता था यह? हैं?"

"इस गड्ढे में पार साल चोरों ने बनपाल अकीम को डुबो दिया था," पव्लूशा ने राय दी। "हो सकता है उसकी आत्मा बिलख रही हो ..."

"हे भगवान," कोस्त्या की बड़ी-बड़ी आंखें भय और विस्मय से और भी फैल गईं। "मुझे तो पता ही नहीं था कि अकीम को वहां डुबोया था; नहीं तो मैं डर के मारे मर ही जाता।"

"कहते हैं, ऐसे छोटे-छोटे मेंढक भी होते हैं," पव्लूशा ने अपनी बात जारी रखी। "वे भी बोलते हैं तो रोते लगते हैं।"

"मेंढक? नहीं, वो मेंढक नहीं थे ... मेंढक कैसे ... (नदी पर बगुले ने फिर चीत्कार किया।) ओफ़ कमबख़त!" कोस्त्या के मुंह से बरबस निकला। "जैसे बन-भुतना चीख रहा हो।"

"बन-भुतना नहीं चीखता, वह तो गूंगा है," इल्यूशा ने बात पकड़ी, "वह तो बस तालियां बजाता है ..."

"तुमने देखा है क्या बन-भुतने को?" फ़ेद्या ने चुटकी लेते हुए पूछा।

"नहीं, देखा नहीं। और भगवान न करे, कभी सामना हो। पर दूसरों ने देखा है। अभी थोड़े दिन पहले हमारे गांव के एक आदमी को उसने भटकाया था; बड़ी देर तक वह जंगल में भटकता रहा, बस एक ही मैदान के चक्कर काटता रहा ... मुश्किल से दिन चढ़े कहीं घर पहुंचा।"

"तो क्या, देखा था उसने?"

"हां, देखा था। कहता था, बहुत बड़ा है वह, अंधियाला, ऐसा चिथड़ों में लिपटा सा और पेड़ के पीछे छिपता जाता है, ठीक तरह से कुछ नहीं दिखता, जैसे कि बस चांदनी से छिप रहा हो और अपनी इत्ती बड़ी-बड़ी आंखें झपकाता जाता है, घूरता जाता है ..."

"ओह! थू!" थोड़ा कांपते और कंधे बिचकाते हुए फ़ेद्या ने दुतकारा।

"पता नहीं क्यों यह गंदगी धरती पर फैली हुई है?" पावेल ने कहा।

"देख, बुरा मत कह, कहीं सुन न ले," इल्यूशा बोला।

फिर से चुप्पी छा गई।

"देखो भाइयो, देखो," सहसा वान्या का बाल स्वर सुनाई दिया। "देखो तो भगवान के प्यारे-प्यारे तारों को, मधुमक्खियों से मंडरा रहे हैं।"

उसने चटाई के नीचे से अपना ताज़गी भरा मुखड़ा बाहर निकाला, मुट्ठी पर ठोड़ी रखी और धीरे-धीरे अपनी मृदु आंखें ऊपर उठाईं। सब लड़कों की आंखें आसमान की ओर उठ गईं और फिर देर तक वहीं टिकी रहीं।

"वान्या," फ़ेद्या दुलार से बोला, "तेरी बहन अन्यूत्का ठीक-ठाक है न?"

"हां, ठीक है," वान्या ने थोड़ा तुतलाते हुए जवाब दिया।

"उससे कहियो – हमारे यहां क्यों नहीं आती?"

"पता नहीं।"

"कह देना कि आया करे।"

"कह दूंगा।"

"उस से कहियो मैं उसे मिठाई दूंगा।"

"मुझे देगा?"

"तुझे भी दे दूंगा।"

वान्या ने एक उसांस भरी।

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए। तुम उसे ही दे देना, वह इतनी भली है।"

वान्या ने फिर से अपना सिर ज़मीन पर टिका लिया। पव्लूशा खड़ा हो गया और ख़ाली पतीला उठाकर चल दिया।

"कहां चला?" फ़ेद्या ने पूछा।

"नदी पर, पानी लेने: प्यास लगी है।"

कुत्ते भी उठकर उसके पीछे चल दिए।

"देख, नदी में गिर मत जाइयो!" इल्यूशा ने चिल्लाकर कहा।

"गिरेगा क्यों?" फ़ेद्या बोला। "संभलकर रहेगा।"

"हुं, संभलकर रहेगा। कुछ भी हो सकता है: वह झुकेगा, पानी भरने

लगेगा और जल-भुतना उसका हाथ पकड़कर खींच लेगा। फिर लोग कहेंगे कि जी वह तो पानी में गिर गया ... गिरा-विरा क्या? वो देखो सरकंडों में पहुंच गया," आहट सुनते हुए उसने कहा।

सचमुच ही सरकंडों में ऐसी सरसराहट हुई, जैसे कोई उन्हें हाथ से हटा रहा हो।

"अच्छा, क्या यह सच है कि अकुलीना बावली उसी दिन से हुई, जब वह पानी में गिरी थी?" कोस्त्या ने पूछा।

"हां, तभी से। देखो तो क्या हाल हो गया। सुना है, पहले बड़ी सुंदर थी। जल-भुतने ने उसका दिमाग़ ख़राब कर दिया। उसे यह उम्मीद नहीं होगी कि अकुलीना को इतनी जल्दी निकाल लेंगे। बस उसने उसे अपने यहां, नदी के तल पर, ख़राब कर दिया।"

(इस अकुलीना को मैंने अपनी आंखों कई बार देखा था। चीथड़ों में लिपटी, बेहद दुबली, कोयले सा काला चेहरा, आंखें एकदम भावशून्य, हर वक़्त खीसें निपोड़े वह कहीं सड़क पर घंटों एक ही जगह खड़ी रहती है, अपनी हड़ियल बांहें छाती पर बांधे और धीरे-धीरे पैर बदलती डोलती रहती है, जैसे पिंजड़े में बंद कोई जंगली जानवर हो। उसे कुछ भी कहो वह कुछ नहीं समझती, बस कभी-कभी ठहाके मारके हंसने लगती है।)

"सुना है," कोस्त्या कह रहा था, "अकुलीना इसीलिए नदी में जा कूदी थी कि उसके प्रेमी ने उसे धोखा दिया था।"

"हां, इसीलिए।"

"याद है, एक वास्या था?" कोस्त्या ने दुखद स्वर में कहा।

"कौन वास्या?" फ़ेद्या ने पूछा।

"वही, जो डूब गया था," कोस्त्या ने जवाब दिया। "इसी नदी में। कितना अच्छा लड़का था! ओह, कितना अच्छा! और मां उसकी, फ़ेक्लीस्ता, उसे कितना प्यार करती थी, अपने वास्या को! उसे जैसे पता था कि बेटे की पानी में ही मौत आएगी। गर्मियों में हम सब बच्चे नदी में नहाने जाते, तो वह भी हमारे साथ हो लेता, मां उसकी डर के मारे पीली पड़ जाती। दूसरी लुगाइयों को कुछ परवाह नहीं, वे अपने कपड़े धोने की लकड़ी की लंबी

चिलमचियां उठाए चली जातीं। पर, वो फ़ेक्लीस्ता चिलमची ज़मीन पर रख देती और पुकारने लगती: 'लौट आ, मेरे लाल! मत जा, मेरी आंखों के तारे!' भगवान जाने डूब भी कैसे गया। तट पर ही तो खेल रहा था, मां भी वहीं थी, कटी घास के ढेर लगा रही थी: अचानक उसने सुना कि कोई पानी में बुलबुले छोड़ रहा है, पलटकर देखा तो बस वास्या की टोपी ही पानी पर तैर रही थी। बस तभी से फ़ेक्लीस्ता की अकल मारी गई है। बेटा जहां डूबा था न, उसी जगह आकर लेट जाती है, और भैया रे, लेटकर बस वही गान छेड़ देती है, – याद है, वास्या वो गाना गाया करता था? – बस वही गान वह भी छेड़ती है और ख़ुद रोती जाती है, भगवान के आगे अपना दुखड़ा रोती है..."

"लो, पव्लूशा आ रहा है," फ़ेद्या ने कहा।

पानी से भरा पतीला हाथ में लिए पव्लूशा अलाव के पास आया। थोड़ी देर चुप रहकर बोला:

"क्यों, भाइयो, मामला तो गड़बड़ है।"

"क्या हुआ?" कोस्त्या ने चट से पूछा।

"मैंने वास्या की आवाज़ सुनी है।"

सब एकदम सिहर उठे।

"अरे, अरे, यह क्या कहता है, तू?" कोस्त्या जल्दी-जल्दी बुदबुदाया।

"भगवान कसम। मैं पानी की ओर झुकने लगा, तभी सुनता क्या हूं, कोई वास्या की आवाज़ में मुझे पुकार रहा है और जैसे पानी के नीचे से आवाज़ आ रही है: 'पव्लूशा, ऐ पव्लूशा, इधर आ।' मैं तुरंत पीछे हट गया। हां, पानी भर लिया।"

"हे भगवान! हे भगवान!" लड़कों ने सलीब का निशान बनाते हुए कहा।

"यह तो जल-भुतने ने तुझे बुलाया होगा," फ़ेद्या ने कहा। "हम अभी-अभी वास्या की ही बातें कर रहे थे।"

"ओह, यह तो बुरा सगुन है," इल्यूशा ने धीरे-धीरे बोलते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, हुआ करे," पव्लूशा ने दृढ़तापूर्वक कहा और बैठ गया। "जो भाग में लिखा है होकर रहेगा।"

लड़के शांत हो गए। पव्लूशा के शब्दों का उन पर गहरा असर पड़ा लगता था। वे मानो सोने की तैयारी करते हुए आग के सामने परसने लगे।

"अरे, यह क्या?" सहसा कोस्त्या ने उठकर पूछा।

पव्लूशा ने कान लगाकर सुना।

"चाहे उड़ रहे हैं, चहक रहे हैं।"

"कहां उड़े जा रहे हैं?"

"उन देशों को, जहां कहते हैं कभी जाड़ा नहीं पड़ता।"

"क्या ऐसे देश भी हैं?"

"हां, हैं।"

"दूर हैं?"

"बहुत दूर, गरम समुद्रों के पार।"

कोस्त्या ने उसांस भरी और आंखें मूंद लीं।

लड़कों के पास आए मुझे तीन घंटे हो चले थे। आख़िर चांद निकल आया था। मैं तो उसे तुरंत देख ही नहीं पाया: इतना छोटा और पतला था वह। चंद्र विहीन रात पहले की ही भांति राजसी वैभव के साथ फैली हुई थी... हां, अब कई तारे, जो थोड़ी देर पहले आकाश में बहुत ऊंचे दिख रहे थे, धरती के अंधेरे सिरे की ओर झुक रहे थे; चारों ओर पूर्ण नीरवता थी, जैसी कि केवल रात्रि के अंतिम पहर में ही होती है, सब कुछ गहरी, अटूट नींद में डूबा हुआ था, पौ फटने से पहले की नींद में। हवा में फैली गंधें अब क्षीण पड़ रही थीं, मानो फिर से नमी आती जा रही थी... गर्मियों की रातें कितनी छोटी होती हैं!.. बुझते अलाव के साथ-साथ लड़कों की बातचीत भी ख़त्म होती जा रही थी... कुत्ते तो ऊंघ ही रहे थे; तारों के झिलमिलाते मंद प्रकाश में जहां तक मुझे दीख पड़ता था, घोड़े भी सिर लटकाए सो रहे थे... अलस बेसुधी ने मुझे घेर लिया और मेरी आंख लग गई।

ताज़ी हवा का झोंका मेरे चेहरे को छूता हुआ बढ़ गया। मैंने आंखें खोलीं: पौ फट रही थी। ऊषा की लाली अभी कहीं नहीं छाई थी, पर पूरब में उजाला हो चला था: चारों ओर सब कुछ दिखने लगा, धुंधला-धुंधला ही, पर दिख रहा था। हल्का सुरमई आकाश उजला होता जा रहा था, उसमें ठंडा, नीला

रंग भरता जा रहा था। तारे कहीं टिमटिमाते और ओझल हो जाते, धरती का दामन गीला हो गया था, पत्तियों पर ओस थी। कहीं-कहीं से जीवन की ध्वनियां और स्वर आने लगे और प्रभात की बयार फरफराती हुई धरती पर बहने लगी। उसके मधुर स्पर्श से मेरे शरीर में हल्का सा मीठा-मीठा कंपन हुआ। मैं झटपट उठा और लड़कों के पास गया। धीमे-धीमे सुलगते अलाव के इर्द-गिर्द वे बेसुध सोए पड़े थे। केवल पव्लूशा ही आधा उठा और ध्यान से मेरी ओर देखने लगा।

मैंने सिर हिलाकर उससे विदा ली और नदी के किनारे-किनारे चल पड़ा। नदी से भाप उठ रही थी। मैं कोई डेढ़ मील ही गया हूंगा कि मेरे चारों ओर से – भीगी चरागाह में, और दूर, सामने – जंगल से जंगल तक फैले हरे-हरे टीलों पर, और पीछे – धूल भरी लंबी सड़क पर, झिलमिलाती, लाल झाड़ियों पर और झीने पड़ते कोहरे तले लज्जा से अपना नीला वक्ष उघाड़ती नदी पर नया आलोक बरसने लगा, पहले लाल, फिर रक्तिम और फिर सुनहरी... हर चीज़ स्पंदित हो रही थी, जाग रही थी, गा रही थी, कलरव कर रही थी, चहक रही थी। ओस की बड़ी-बड़ी बूंदें सर्वत्र हीरों सी चमक उठीं ; सामने से गिरजे के घंटे के सुस्पष्ट, मानो प्रभात की शीतलता से निखरे स्वर हवा में तैरते आए और फिर सहसा थकावट मिटा चुके घोड़ों का झुंड मेरे पास से गुज़र गया। मेरे परिचित लड़के ही उन्हें हांके लिए जा रहे थे।

मुझे खेदपूर्वक इतना और कहना पड़ रहा है कि उसी वर्ष पव्लूशा नहीं रहा। वह डूबा नहीं, घोड़े से गिरकर मर गया। दुख की बात है : लड़का बड़ा अच्छा था!

द्मीत्री मामिन-सिबिर्याक

हिरनौटा

१८८४ में लिखी गई कहानी 'हिरनौटा' के लेखक द्मीत्री मामिन-सिबिर्याक का जन्म उराल में हुआ और यहीं उन्होंने जीवन के अधिकांश वर्ष बिताए। उराल पहाड़ों और जंगलों का इलाक़ा है, जहां १८वीं सदी के आरम्भ में ज़ार प्योत्र प्रथम के ज़माने में रूसी सौदागरों ने लोहे के कारखाने बनाये थे। लेखक ने अपने संस्मरणों में लिखा था: "अभी तक मेरी आंखों के आगे लकड़ी का वह पुराना घर है, जिसकी पांच खिड़कियां चौक पर खुलती थीं। उसकी ख़ूबी यह थी कि एक ओर उसकी खिड़कियां यूरोप में खुलती थीं और दूसरी ओर—एशिया में। मेरे पिता मुझे दूर की पहाड़ियां दिखाते हुए बताया करते थे: 'वह देखो, वे पहाड़ एशिया में हैं, हम यूरोप और एशिया की सीमा रेखा पर रहते हैं...'"

लेखक के पिता एक कारख़ाने के पादरी थे और कोई ख़ास अमीर आदमी नहीं थे, लेकिन उन्हें किताबों का बड़ा शौक़ था। वह अपनी आमदनी का बड़ा भाग किताबें ख़रीदने पर ख़र्च करते थे। बेटे को पिता से यह साहित्य-प्रेम विरासत में मिला।

मामिन-सिबिर्याक उराल के सौदागरों, कारख़ानेदारों और आम लोगों के बारे में उपन्यास लिखते थे। उन दिनों उराल के आम लोग खानों और मिलों में मज़दूरी भी करते थे और साथ ही खेती भी। लेनिन ने मामिन-सिबिर्याक के बारे में कहा था: "इस लेखक की रचनाओं में हम उराल के लोगों के विशिष्ट जीवन, उनके रहन-सहन के सजीव दृश्य पाते हैं..."

मामिन-सिबिर्याक ने बच्चों के लिए लगभग १३० रचनाएं रचीं। इनमें सबसे प्रसिद्ध है जानवरों के बारे में कहानियों की पुस्तक: 'सुनो कहानी, बिटिया रानी'। इसके अलावा 'नदी किनारे शीत निवास' और 'हिरनौटा' कहानियां भी बहुत लोकप्रिय हैं। इन रचनाओं में उराल की प्रकृति का काव्यमय चित्रण है और मेहनतकश रूसी व्यक्ति की उच्च नैतिकता उजागर की गई है।

१९१२ में साठ वर्ष की आयु में मामिन-सिबिर्याक का देहांत हुआ।

(१)

बहुत दूर कहीं उराल पहाड़ों के उत्तरी भाग के घने जंगल में तीच्की नाम का एक गांव था। गांव में सिर्फ़ ग्यारह घर थे, या यों कहिए कि दस, क्योंकि ग्यारहवां घर सबसे अलग बिल्कुल जंगल के पास ही था। गांव के चारों ओर चीड़ आदि सदाबहार पेड़ों का वन ऊंची दीवार सा खड़ा था। फ़र वृक्षों की चोटियों के पीछे कुछ पहाड़ दिखाई देते थे। इन विशाल नीले-सुरमई पहाड़ों ने तीच्की को चारों ओर से अपने घेरे में बंद कर रखा था। सबसे पास था 'झरनों का पहाड़', जिसकी सफ़ेद चोटी ख़राब मौसम में धुंधले बादलों के पीछे छिप जाती थी। 'झरनों के पहाड़' से बहुत से सोते और झरने बहते थे। ऐसा ही एक झरना तीच्की तक आता था और सर्दी-गर्मी – बारहों महीने – लोग उसका ठंडा, ओस सा निर्मल जल पीते थे।

तीच्की में घर बेतरतीब बने हुए थे, जिसका जहां मन आया बना लिया। दो घर ऐन नदी के तट पर थे, एक – पहाड़ की तेज़ ढलान पर और बाकी –

नदी किनारे इधर-उधर बने हुए थे – तितर-बितर हो गई भेड़ों के समान। तीच्की में कोई गली भी नहीं थी, घरों के बीच बस एक पगडंडी चली गई थी। तीच्की वालों को गली की ज़रूरत ही नहीं थी, क्योंकि उनके पास कोई घोड़ा-गाड़ी तक न थी, जिसे वे गली में चलाते। गर्मियों में यह गांव दुर्गम दलदलों और झाड़-झंखाड़ भरे जंगल से घिरा होता था, सो संकरी जंगली पगडंडियों से भी वहां मुश्किल से ही पहुंचा जा सकता था और वह भी सदा नहीं। बारिशों के दिनों में पहाड़ी नदियां उफनतीं और तीच्की के शिकारियों को तीन-तीन दिन तक पानी उतरने का इंतज़ार करना पड़ता।

तीच्की के सभी मर्द शिकार के धत्ती थे। सर्दियां हों या गर्मियां वे जंगल में ही घुसे रहते थे – अच्छा था कि जंगल भी बगल में ही था। हर मौसम का अपना शिकार होता था: जाड़ों में वे भालू, मार्टेन, भेड़िये और लोमड़ी का शिकार करते थे; शरद में गिलहरी का, वसंत में जंगली बकरियों और गर्मियों में भांति-भांति के पक्षियों का शिकार करते थे। संक्षेप में, बारहों महीने उनको भारी काम करना होता था, जो अकसर ख़तरे से खाली नहीं होता था।

जंगल के बिल्कुल पास ही बने घर में बूढ़ा शिकारी येमेल्या अपने नन्हे पोते ग्रिशूक के साथ रहता था। येमेल्या का लकड़ी के लट्ठों का बना घर ज़मीन में धंसा हुआ लगता था, उसमें बस एक ही खिड़की थी। छत की लकड़ियां कब की सड़ चुकी थीं, चिमनी ईंटों का ढेर बनकर रह गई थी। येमेल्या के घर के चारों ओर बाड़ नहीं थी, न ही फाटक था और न कोई कोठरी ही। घर के दरवाज़े पर बने लट्ठों के चबूतरे तले रात को भूखा लीस्को हूकता रहता था। लीस्को पूरे गांव का एक सबसे अच्छा शिकारी कुत्ता था। हर बार शिकार पर निकलने से पहले येमेल्या बेचारे लीस्को को तीन दिन तक भूखा रखता था, ताकि वह अच्छी तरह शिकार ढूंढ़े।

"दादा ... दादा ... अब तो हिरन हिरनौटों के साथ घूम रहे होंगे। है न, दादा ..." एक दिन शाम को नन्हा ग्रिशूक दादा से पूछ रहा था। उसके मुंह से बोल मुश्किल से निकल रहे थे।

"हां बेटे, हिरनौटों के साथ घूम रहे हैं," पेड़ की छाल से अपने लिए जूता बनाते हुए दादा ने जवाब दिया।

"दादा, हिरनौटा ले आओ, तो कितना अच्छा रहे, हैं दादा?"

"हां, हां, बेटे, लाएंगे। क्यों नहीं लाएंगे। गर्मियां आ गई हैं, अब हिरन हिरनौटों के साथ कुकुरमाछियों से बचने के लिए घने झुरमुटों में छिपेंगे। बस तभी मैं हिरनौटे का शिकार कर लाऊंगा। तुम थोड़ा सब्र रखो।"

लड़के ने कुछ जवाब नहीं दिया, बस एक ठंडी सांस भरी। ग्रिशूक सिर्फ़ छह बरस का था, पिछले दो महीनों से वह लकड़ी के तख़्त पर हिरन की गर्म खाल ओढ़े पड़ा हुआ था। वसंत में, जब बर्फ़ पिघल रही थी, तभी उसे सर्दी लग गई थी और वह तब से ठीक ही नहीं हो पा रहा था। उसका सांवला चेहरा पीला पड़ गया था, लंबा हो गया था, आंखें बड़ी-बड़ी लगने लगी थीं, नाक तीखी हो गई थी। येमेल्या देख रहा था कि पोता दिन पर दिन घुलता जा रहा है, पर समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। जड़ी-बूटियों का काढ़ा बनाकर भी पिलाता रहा था, दो बार उसे हम्माम में भी ले गया था–पर बच्चे की हालत सुधर नहीं रही थी। ग्रिशूक खाता भी कुछ नहीं था। रोटी का टुकड़ा चबा लेता और बस। वसंत से बकरी का नमक लगा मांस बचा हुआ था, पर ग्रिशूक उसकी ओर देखना तक नहीं चाहता था।

छाल के जूते बन चले थे। दादा सोच रहे थे: "देखो तो, क्या चाहता है–हिरनौटा ... जैसे-तैसे हासिल करना ही होगा।"

येमेल्या सत्तर बरस का हो चला था–बाल सफ़ेद, कमर झुकी हुई, शरीर दुबला-पतला और लंबी-लंबी बांहें। येमेल्या के हाथों की उंगलियां मुश्किल से मुड़ती थीं, मानो वे काठ की बनी हों।

पर चलता वह फुर्ती से था और थोड़ा-बहुत शिकार भी कर लेता था। हां, बूढ़े की नज़र जवाब देने लग गई थी, ख़ास तौर पर जाड़ों में जब धवल हिम झिलमिलाता था, हीरों की कनियों की तरह चमकता था, तब बूढ़े येमेल्या को बहुत तकलीफ़ होती थी। येमेल्या की आंखों की वजह से ही चिमनी ढह गई थी और छत सड़ गई थी और ख़ुद भी वह अक्सर घर पर बैठा रहता था, जबकि दूसरे लोग जंगल में होते थे।

बूढ़े के लिए चैन से घर पर आराम से रहने के दिन आ गए थे, पर कोई उसकी जगह संभालनेवाला नहीं था, ऊपर से ग्रिशूक को भी बस उसी का

सहारा रह गया था, बूढ़े येमेल्या को उसकी देखभाल करनी थी... ग्रिशूक के बाप को तीन साल पहले ताप हुआ था, उसी में वह मर गया था। मां जाड़े की एक शाम को बेटे के साथ गांव से घर लौट रही थी, जब भेड़ियों ने उन्हें आ घेरा था। यह चमत्कार ही था कि बच्चा बच गया। मां की टांगों पर जब भेड़िये टूट पड़े थे, तो उसने बेटे को अपने शरीर से ढक लिया था और ग्रिशूक बच गया था।

बूढ़े दादा को पोते का पालन-पोषण करना पड़ा, ऊपर से यह बीमारी आ गई। मुसीबत कभी अकेली नहीं आती...

(२)

जून महीने के आखिरी दिन थे। तीच्की में इन्हीं दिनों सबसे ज्यादा गर्मी पड़ती थी। बूढ़े और बच्चे ही घरों पर रह गए थे। शिकारी जंगलों में हिरनों का शिकार करने जा चुके थे। येमेल्या के घर में बेचारा लीस्को तीन दिन से भूख से हूक रहा था, जैसे भेड़िये जाड़ों में हूकते हैं।

"लगता है, येमेल्या शिकार पर जा रहा है," गांव में औरतें कह रही थीं।

यह सच था। सचमुच ही, थोड़ी देर में येमेल्या तोड़ेदार बंदूक हाथ में लिये घर से निकला, कुत्ते को खोला और जंगल की ओर चल दिया। वह छाल के नए जूते पहने था, कंधे पर झोला लटक रहा था, जिसमें रोटी थी। उसने फटा-पुराना कफ़्तान* और सिर पर हिरन की खाल का कनटोप पहन रखा था। बूढ़ा कई बरसों से हल्की टोपी नहीं पहन रहा था, सर्दी-गर्मी में हिरन की खाल का कनटोप ही पहने रहता था जो उसके गंजे सिर की पाले से भी और गर्मी से भी अच्छी तरह रक्षा करता था।

"अच्छा ग्रिशूक बेटे, अब तुम मेरे आने तक ठीक हो जाओ," येमेल्या

---

* लम्बे ओवरकोट जैसा पहनावा। – सं०

ने चलते हुए पोते से कहा। "बुढ़िया मलान्या तुझे देख जाया करेगी, मैं जाकर तेरे लिए हिरनौटा लाता हूं।"

"दादा, हिरनौटा लाओगे न?"

"कहा तो बेटे, ले आऊंगा।"

"पीला-पीला हिरनौटा?"

"हां, बच्चे, पीला-पीला ..."

"अच्छा, मैं तुम्हारी बाट जोहूंगा ... देखना, गोली चलाओगे, तो निशाना न चूकना ..."

येमेल्या कई दिनों से हिरनों के शिकार पर जाने की सोच रहा था, लेकिन पोते को अकेले नहीं छोड़ना चाहता था। मगर अब उसकी हालत कुछ सुधरी लगती थी, सो बूढ़े ने क़िस्मत आज़माने का फ़ैसला किया था। और बूढ़ी मलान्या भी ग्रिशूक की देखभाल करने को तैयार हो गई थी – घर पर अकेले बैठे रहने से यही अच्छा था।

जंगल येमेल्या के लिए घर के समान ही था। वह जंगल को जानता भी कैसे नहीं, जबकि सारी उम्र वह बंदूक और कुत्ते के साथ जंगल में घूमता रहा था। चारों ओर सौ मील तक वह सारी पगडंडियां, सारी निशानियां जानता था।

अब जून के अंत में जंगल बड़ा ही सुहावना लग रहा था। तरह-तरह की घास और बूटियों में रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे, हवा में भीनी-भीनी महक थी और आकाश में गर्मियों का स्निग्ध सूरज चमक रहा था, जंगल और घास पर, कलकल बहती नदी और दूर के पहाड़ों पर प्रकाश बरसा रहा था।

हां, जिधर नज़र जाती, वहीं मनभावना दृश्य नज़र आता था। येमेल्या कई बार रुका – सांस लेने को और इधर-उधर देखकर आंखों से सुख पाने को।

जिस पगडंडी पर वह जा रहा था, वह सांप की तरह बल खाती, बड़े-बड़े पत्थरों और चट्टानों के तेज़ उभारों से बचकर निकलती हुई पहाड़ पर चली गई थी। बड़े-बड़े पेड़ काटे जा चुके थे, रास्ते के आस-पास भोज के नए पेड़ और मधु लवंग की झाड़ियां उग रही थीं, रोवान वृक्षों के हरे छत्र फैले हुए थे। जहां-तहां नए फ़र वृक्षों के घने झुरमुट भी थे – रास्ते के पास ही उनकी

हरी बाड़ बनी होती, पंजेनुमा, झबरीली टहनियां फैली होतीं। पहाड़ के बीच तक पहुंचकर एक जगह से दूर के पहाड़ों और तीच्की का खुला नज़ारा दिखता था। गांव गहरी, तंग घाटी के तल पर खोया हुआ था। किसानों के घर यहां से काले धब्बों से लगते थे। येमेल्या आंखों को धूप से बचाते हुए देर तक अपने घर को देखता रहा और पोते के बारे में सोचता रहा।

पहाड़ से उतरकर जब वे फ़र वृक्षों के घने जंगल में घुसे तो येमेल्या ने कहा: "चल, लीस्को, ढूंढ़!"

लीस्को को दो बार कहने की ज़रूरत नहीं थी। वह अपना काम अच्छी तरह जानता था। अपनी नुकीली थूथनी से ज़मीन सूंघता हुआ वह हरे झुरमुट में खो गया। थोड़ी देर को ही पीले चकत्तोंवाली उसकी पीठ नज़र आई।

शिकार शुरू हो गया था।

भीमकाय फ़र वृक्षों की नुकीली चोटियां आसमान तक उठी लगती थीं। झबरीली टहनियां एक दूसरे में गुंथी हुई थीं और उनसे शिकारी के सिर के ऊपर अभेद्य छत बनी हुई थी, जिसमें से कहीं-कहीं ही सूरज की किरण इठलाती चली आती थी और पीली सी काई पर सुनहरा चकत्ता बना देती थी या पर्णांग की चौड़ी पत्ती को चमका देती थी। ऐसे जंगल में घास नहीं उगती, येमेल्या कालीन जैसी नरम काई पर चला जा रहा था।

कुछेक घंटों तक शिकारी इस जंगल में भटकता रहा। लीस्को तो मानो धरती में समा गया था। बस, कभी-कभार ही पांव तले टहनी चटक जाती या कोई चटकीला कठफोड़वा एक पेड़ से उड़कर दूसरे पर जा बैठता। येमेल्या बड़े ध्यान से चारों ओर सब कुछ देख रहा था: कहीं कोई निशानी तो नहीं है, हिरन अपने सींगों से कोई टहनी तो नहीं तोड़ गया, काई पर कहीं खुरों के निशान तो नहीं। जंगल में कहीं-कहीं काई के बीच ज़मीन उभरी हुई थी और इन उभारों पर घास उगती थी। येमेल्या देख रहा था कि यह घास कहीं नुची हुई है कि नहीं। अंधेरा घिरने लगा था। बूढ़े को थकावट महसूस होने लगी थी। रात काटने का भी कोई इंतज़ाम करना था। "शायद हिरनों को दूसरे शिकारियों ने डरा दिया है," येमेल्या सोच रहा था। पर तभी लीस्को

के किकियाने की हल्की सी आवाज़ सुनाई दी, और आगे कहीं टहनियां चटकीं। येमेल्या फ़र के तने से सटककर खड़ा हो गया और इंतज़ार करने लगा।

यह हिरन ही था। दस सींगों वाला सुंदर हिरन, सभी वन्य पशुओं में सबसे भव्य जीव। लो, उसने अपने सींगों को पीठ से लगा लिया और ध्यान से सुनने लगा, हवा को सूंघने लगा, ताकि पलक झपकते ही बिजली की तरह हरे झुरमुट में ग़ायब हो जाए।

बूढ़े येमेल्या ने हिरन को देख लिया, पर वह बहुत दूर था: गोली वहां तक नहीं पहुंचेगी। लीस्को झुरमुट में लेटा हुआ, सांस रोके गोली चलने का इंतज़ार कर रहा था; उसके नथुनों में हिरन की गंध थी।

गोली चली और हिरन तीर की तरह भाग उठा। येमेल्या का निशाना चूक गया था, लीस्को भूख के मारे हूक उठा। बेचारे कुत्ते को हिरन के भूने मांस की गंध आ रही थी, बड़ी सी हड्डी दिखाई दे रही थी, जो मालिक उसे देगा, लेकिन इसके बजाय उसे भूखे पेट सोना पड़ रहा था। बहुत ही बुरी बात थी।

"चलो, मौज लेने दो उसे... हमें तो हिरनौटा पाना है... सुना तूने, लीस्को?" रात को सौ साला फ़र वृक्ष के नीचे आग के पास बैठे हुए येमेल्या कह रहा था।

कुत्ता अपनी नुकीली थूथनी अगले पंजों पर रखे दुम हिला रहा था। उसके भाग में आज बस रोटी का सूखा टुकड़ा ही लिखा था, जो येमेल्या ने उसे दिया।

(३)

तीन दिन तक येमेल्या जंगल में भटकता रहा और सब बेकार: हिरनौटे के साथ हिरन उसकी नज़र में नहीं आए। बूढ़े को लग रहा था कि उसमें अब और हिम्मत नहीं रही, मगर ख़ाली हाथ घर लौटने का साहस भी वह नहीं कर पा रहा था। लीस्को बिल्कुल उदास हो गया था और दुबला पड़ गया था, हालांकि इस बीच दो-एक छोटे-छोटे ख़रगोश उसने पकड़ लिए थे।

तीसरी रात भी उन्हें जंगल में आग के पास काटनी पड़ रही थी। सपने में भी बूढ़े येमेल्या को पीला सा हिरनौटा दिखता था, जैसा ग्रिशूक ने लाने को कहा था; बूढ़ा देर तक निशाना बांधता रहता, पर हर बार हिरन भाग निकलता। लीस्को को भी शायद हिरन दिख रहे थे, क्योंकि वह कई बार किकियाया था और भौंकने लगा था।

चौथे दिन जब शिकारी और कुत्ता बिल्कुल निढाल हो गए थे, अचानक ही उन्हें हिरन और हिरनौटे के निशान मिल गए। वे पहाड़ की ढलान पर फ़र के घने झुरमुट में थे। सबसे पहले तो लीस्को ने वह जगह ढूंढ़ी, जहां हिरन ने रात काटी थी और फिर घास में खोई खुरी भी सूंघ निकाली।

"हिरनी और हिरनौटा हैं," घास पर छोटे और बड़े खुरन्यास देखते हुए येमेल्या सोच रहा था। "आज सुबह यहीं थे... लीस्को, ढूंढ़, भैया, ढूंढ़..."

चिलचिलाती धूप थी, हवा में तपस थी। कुत्ता जीभ बाहर निकाले झाड़ियां और घास सूंघ रहा था; येमेल्या मुश्किल से टांगें घसीट रहा था। अचानक जानी-पहचानी चटक और सरसराहट सुनाई दी। लीस्को घास पर सपाट हो गया, ज़रा भी हिल-डुल नहीं रहा था। येमेल्या के कानों में पोते के शब्द गूंज रहे थे: "दादा, हिरनौटा लाना... पीला हिरनौटा हो।" वह रही हिरनी। कितनी सुंदर थी हिरनी। वह जंगल के सिरे पर खड़ी थी और सहमी सी सीधे येमेल्या की ओर देख रही थी। कीड़े-मकोड़ों का झुंड उसके ऊपर मंडरा रहा था, जिससे वह रह-रहकर सिहर उठती थी

"नहीं, तू मुझे धोखा नहीं दे पाएगी," येमेल्या अपने घात-स्थान से बाहर निकलते हुए सोच रहा था।

हिरनी काफ़ी पहले ही शिकारी की गंध पा चुकी थी, पर वह निडर होकर उसकी हरकतों को देखे जा रही थी।

"मुझे हिरनौटे से दूर ले जाना चाहती है," रेंग-रेंगकर उसके पास पहुंचते हुए येमेल्या के मन में आया।

बूढ़ा निशाना बांधना ही चाहता था कि हिरनी सावधानी से थोड़ी दूर भाग गई और फिर खड़ी हो गई। येमेल्या फिर अपनी बंदूक के साथ रेंगने लगा।

फिर वह हौले-हौले हिरनी के पास पहुंचा और फिर से ज्यों ही उसने गोली चलानी चाही, हिरनी भाग खड़ी हुई।

कई घंटों तक येमेल्या बड़े धीरज से हिरनी का पीछा करता रहा। वह बुदबुदा रहा था: "नहीं तू हिरनौटे से दूर नहीं जा पाएगी।"

मनुष्य और पशु का यह द्वंद्व सांझ ढले तक चलता रहा। शिकारी को छिपे बैठे हिरनौटे से दूर ले जाने की चेष्टा में मां ने दस बार अपनी जान खतरे में डाली। बूढ़े येमेल्या को अपने शिकार की इस निडरता पर ग़ुस्सा भी आ रहा था और हैरानी भी हो रही थी। आखिर बचकर तो वह जा नहीं पाएगी ... कितनी बार उसने इस तरह अपनी बलि दे रही मां को मारा था! लीस्को परछाईं की भांति अपने मालिक के पीछे-पीछे रेंग रहा था, और जब हिरन नज़रों से बिल्कुल ओझल हो गया, तो हौले से अपनी गर्म नाक उसकी टांग पर मारी।

बूढ़े ने पलटकर देखा और फ़ौरन नीचे झुक गया। उससे कोई बीस गज़ दूर मधु लवंग की झाड़ी तले वही पीला हिरनौटा खड़ा था, जिसकी खोज में वह तीन दिन से भटक रहा था। बड़ा प्यारा हिरनौटा था, कुछ ही हफ़्तों का – पीले-पीले रोयें और पतली टांगें, सुंदर सिर पीछे को उठा हुआ था, और जब वह ऊपर की टहनी को पकड़ना चाहता तो अपनी लचीली गरदन खींचता।

शिकारी के हृदय की धड़कन मानो थम गई थी, उसने बंदूक का घोड़ा चढ़ाया और नन्हे, असहाय जीव के सिर का निशाना साधा ...

बस एक क्षण और, और नन्हा हिरनौटा अंतिम चीख के साथ घास पर लुढ़क जाता, पर इसी क्षण बूढ़े शिकारी को याद हो आया कि कितनी वीरता के साथ इसकी मां इसकी रक्षा कर रही थी, यह भी याद हो आया कि कैसे उसके ग्रिशूक की मां ने अपनी जान देकर बेटे को भेड़ियों का निवाला होने से बचाया था। बूढ़े येमेल्या के दिल पर सहसा एक चोट सी लगी, और उसने बंदूक नीची कर ली। हिरनौटा पहले की ही तरह झाड़ी के पास टहल रहा था, पत्तियां नोच रहा था और ज़रा सी आहट सुनने को चौकन्ना था। येमेल्या ने जल्दी से खड़े होकर सीटी बजाई, नन्हा हिरनौटा बिजली की तरह झाड़ियों में ग़ायब हो गया।

"वाह रे, कैसे दौड़ता है," बूढ़ा कह रहा था और कुछ सोचते हुए मुस्करा रहा था। "तीर सा उड़ गया... देखा, लीस्को, भाग गया हमारा हिरनौटा! ठीक है, अभी तो उसे बड़ा होना है... देख तो, कितना फुर्तीला है!"

बूढ़ा देर तक एक ही जगह पर खड़ा-खड़ा मुस्कराता रहा, हिरनौटे को याद करता रहा।

दूसरे दिन येमेल्या अपने घर लौटा।

"दादा... हिरनौटा लाए?" ग्रिशूक ने पूछा, जो बड़ी बेसब्री से दादा के लौटने का इंतज़ार करता रहा था।

"नहीं, ग्रिशूक, पर मैंने देखा था उसे!"

"पीला था?"

"हां, पीला-पीला, और थूथनी काली। झाड़ी के नीचे खड़ा पत्तियां नोच रहा था... मैंने निशाना साधा..."

"और चूक गए?"

"नहीं, ग्रिशूक: मुझे तरस आ गया नन्हे हिरनौटे पर, हिरनी पर। मैंने सीटी बजाई और बस हिरनौटा चौकड़ियां भरता झाड़ियों में ग़ायब हो गया। भाग गया, कमबख़्त..."

बूढ़ा येमेल्या बड़ी देर तक पोते को यह बताता रहा कि कैसे वह तीन दिन तक जंगल में हिरनौटे को खोजता रहा था और कैसे वह उससे बचकर भाग निकला। लड़का सुनता रहा और बूढ़े दादा के साथ जी खोलकर हंसता रहा।

"मैं तुम्हारे लिए जंगली मुर्गा लाया हूं, ग्रिशूक," कहानी ख़त्म करते हुए येमेल्या दादा ने कहा। "इसे मैं न मारता, तो भेड़िये खा जाते।"

जंगली मुर्ग़े को छील-छालकर साफ़ किया गया और पतीले में डाल दिया गया। लड़के ने ख़ुशी-ख़ुशी शोरबा पिया। सोने से पहले उसने कई बार दादा से पूछा:

"दादा, हिरनौटा भाग गया?"

"हां, बेटे, भाग गया..."

"पीला था ?

"हां, सारा पीला-पीला था, बस थूथनी और खुर काले थे।"

यह सब सुनते-सुनते ही बच्चा सो गया और सारी रात उसे सपने में नन्हा सा, पीला-पीला हिरनौटा दिखाई देता रहा, जो जंगल में अपनी मां के साथ घूम रहा था; बूढ़ा भी अलावघर पर सो रहा था और नींद में मुस्करा रहा था।

निकोलाई तेलेशोव

घर की ललक

निकोलाई तेलेशोव ने लंबी उम्र पाई। उनका जन्म १८६७ में हुआ—रूस में भूदास प्रथा खत्म किए जाने के केवल छह बरस बाद और मृत्यु १९५७ में हुई, जब महान अक्तूबर क्रांति हुए चालीस वर्ष बीत चुके थे।

युवावस्था में तेलेशोव ने ज्ञान प्रसार का काम किया। वह बच्चों के लिए कहानियों और कविताओं के संग्रह छापते थे, मास्को के पास ही एक स्कूल उन्होंने खोला। १८९४ में चेखोव के परामर्श पर तेलेशोव ने साइबेरिया की यात्रा की, ताकि जनता के जीवन को अच्छी तरह देख जान सकें।

उन दिनों ज़ार की सरकार रूस के यूरोपीय भाग के ग़रीब किसानों को साइबेरिया के निर्जन इलाक़ों में बसा रही थी। उराल पार के क्षेत्र में रेल लाइनें न के बराबर ही थीं। किसान अपने परिवारों के साथ घोड़ागाड़ियों पर यात्रा करते थे। लंबे रास्ते में वे भूखे रहते थे, रोगों के शिकार होते थे, ठंड से मरते थे, बच्चे अनाथ हो जाते थे, मां-बाप बच्चों के बिना रह जाते थे। साइबेरिया के केंद्रीय भाग में तेलेशोव ने बहुत सी ऐसी बैरकें देखीं, जो इन किसानों के बेघरबार हो गए बच्चों से भरी हुई थीं। साइबेरिया से लौटने पर तेलेशोव ने लिखा: "इन बच्चों के माता-पिता या तो रास्ते में मर गए, या फिर बाक़ी परिवार को कंगाली और भूख से बचाने की कोशिश में अपने बच्चे को, जिसके बचने की उन्हें कोई उम्मीद न थी, छोड़कर आगे बढ़ गए। उनके पास न इतनी शक्ति है, न इतना पैसा ही कि वे रुककर बच्चे के मर जाने का इंतज़ार करें और वे उसे मरा हुआ ही मानकर आगे बढ़ जाते हैं। बेशक, इस तरह छोड़े गए अधिकांश बच्चे बीमारी से ठीक नहीं हो पाते, पर ऐसा भी होता है कि बच्चे की हालत सुधर जाती है और फिर वह 'ख़ुदाई औलाद' बन जाता है।"

तेलेशोव की सबसे अच्छी कहानियां इन अभागे बच्चों के बारे में ही हैं। मां-बाप बीमार निकोला को छोड़कर चले गए, वह ठीक हो गया और किसी का नहीं रह गया—यह है 'ग़रीबी' कहानी। 'नया साल' कहानी में लेखक ने यह बताया है कि किस तरह बूढ़े सिपाही मीत्रिच को इन अभागे बच्चों पर तरस आता है और वह अपना पेट काटकर उनके लिए नए साल पर त्योहार मनाने का प्रबन्ध करता है। १८९६ में प्रकाशित 'घर की ललक' ऐसे बालक की कहानी है, जो साइबेरिया जाते हुए अनाथ हो गया और वापस घर लौटने की कोशिश करता है।

(१)

गर्मियों की उजली रात थी। चांदनी में जीवन की उमंग थी और सहज शांति : खेतों-मैदानों और सड़कों पर वह चांदी बरसा रही थी, जंगल को अपनी किरणों से बींध रही थी और नदियों में सोना घोल रही थी... इसी रात को बैरक के दरवाज़े में से दस-ग्यारह बरस का, घुंघराले बालों और पीले चेहरे वाला एक लड़का – स्योम्का चुपके-चुपके बाहर निकला। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, छाती पर सलीब का निशान बनाया और सहसा सिर पर पैर रखकर उस मैदान की ओर दौड़ा, जहां से "रूस की सड़क" शुरू होती थी। लड़के को डर था कि उसका पीछा किया जाएगा, इसलिए वह बार-बार मुड़कर देख रहा था, लेकिन कोई उसके पीछे नहीं दौड़ रहा था। लड़का सही-सलामत पहले मैदान तक और फिर बड़ी सड़क तक पहुंच गया। यहां पर वह रुका, थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा और फिर धीरे-धीरे सड़क के किनारे-किनारे चलने लगा।

वह उन बेघरबार बच्चों में से एक था, जो साइबेरिया में बसाए जा रहे किसानों के पीछे अनाथ रह जाते हैं। उसके मां-बाप रास्ते में टाइफ़ायड से मर गए थे और स्योम्का बेगाने लोगों के बीच अकेला रह गया था। यहां की प्रकृति भी उसकी जन्मभूमि से बिल्कुल अलग थी। उसे याद था कि उसकी जन्मभूमि में पत्थर का सफ़ेद गिरजा है, पवन-चक्कियां हैं, उज़्यूप्का नदी है, जहां वह अपने दोस्तों के साथ नहाया करता था और बेलये (सफ़ेद) नाम का गांव है। परंतु यह जन्मभूमि, वह गांव और नदी कहां हैं, यह सब उसके लिए उतना ही बड़ा रहस्य था, जितना कि वह स्थान, जहां पर अब वह था। उसे बस एक बात याद थी कि वे यहां इसी सड़क पर आए थे और इससे पहले उन्होंने एक बहुत बड़ी नदी पार की थी और उससे भी पहले कई दिनों तक स्टीमर पर यात्रा की थी, फिर रेलगाड़ी पर, फिर स्टीमर और रेलगाड़ी पर। उसे लगता था कि वह बस यह सड़क का फ़ासला तय कर ले, तो फिर नदी आएगी, उसके बाद रेलगाड़ी होगी और फिर बस उज़्यूप्का नदी और बेलये गांव आ जाएगा और उसका अपना घर, जहां वह जन्मा और बड़ा हुआ, जिसके बिना वह नहीं रह सकता, जहां वह सभी बूढ़ों और लड़कों को जानता है। उसे यह भी याद था कि कैसे उसके मां-बाप मरे थे, कैसे लोगों ने उन्हें ताबूत में रखकर पेड़ों के झुरमुट के पीछे किसी अनजान कब्रिस्तान में दफ़ना दिया था। स्योम्का को यह भी याद था कि कैसे वह रोता रहा था और उसे घर भेज देने को कहता रहा था, मगर उसे यहां बैरक में रहने पर मजबूर किया गया। यहां उसे रोटी और बंदगोभी का सूप 'श्ची' मिलता था और हमेशा कहा जाता था: "जा, जा, तेरे बिना यहां क्या कम काम है"। यहां तक कि बड़ा साहब अलेक्सान्द्र याकव्लेविच, जो सब पर हुक्म चलाता था, उस पर बरस पड़ा था और बोला था – चुपके से रहे जाओ, ज़्यादा तंग करोगे, तो बाल नोच डालूंगा। और स्योम्का मन मसोसकर वहां रह रहा था। उसके साथ बैरक में तीन लड़कियां और एक लड़का और थे, जिन्हें उनके मां-बाप यहां भूल गए थे और पता नहीं कहां चले गए थे, पर वे बच्चे इतने छोटे थे कि स्योम्का ने उनके साथ खेल सकता था न शरारतें कर सकता था।

एक के बाद एक दिन और हफ़्ते गुज़रते रहे और स्योम्का इस घिनौनी बैरक में रहता रहा, कहीं जाने का साहस वह नहीं कर पाता था। पर आखिर वह तंग आ गया। वह तो रही सड़क, जिस पर वे रूस से यहां आए थे। अच्छी तरह से नहीं जाने देते तो ठीक है, वह भाग जाएगा। कौन सी कोई बहुत देर की बात है? और वह फिर से अपनी नदी उज्यूप्का, अपना गांव बेलये देखेगा और अपने पक्के यारों से मिलेगा, मास्टरनी अफ़ोसिन्या येगोरव्ना के पास जाएगा और पादरी के लौंडों के पास, जिनके घर पर बहुत सारे चैरी और सेब के पेड़ हैं।

पकड़े जाने का डर स्योम्का को कई दिनों तक रोके रहा, परंतु अपनी नदी, अपने जन्म के गांव, अपने हमजोलियों को देखने की आशा इतनी प्रबल थी कि स्योम्का ने मन में यह सपना संजोकर मौक़ा देखा और सदा के लिए फोकट के खाने को लात मारकर सड़क पर भाग आया। अब वह बहुत खुश था कि घर लौट रहा है। उसे लगता था कि बेलये जैसी अच्छी जगह और कहीं नहीं और सारी दुनिया में उज्यूप्का जैसी कोई नदी नहीं है।

चांद क्षितिज पर पहुंच रहा था, पौ फट रही थी, पर स्योम्का चलता जा रहा था, ताज़ी, ओस से भीगी हवा में सांस लेता हुआ और इस बात पर खुश होता हुआ कि हर क़दम उसे घर के पास ले जा रहा है।

(२)

लगता है कि इन्सान के लिए जिस किसी बात की भी कल्पना की जा सकती है, वह सब असीम साइबेरिया ने देखा और अनुभव किया है और उसे किसी बात पर आश्चर्य नहीं हो सकता। इसके रास्तों पर बेड़ियों में बंद क़ैदियों ने हज़ारों मील पार किए हैं–भारी जंजीरें खनखनाते हुए, इसके गर्भ की अंधेरी खानों में उन्होंने खुदाई की है, इसकी सड़कों पर घुंघरुओं की झंकार के साथ त्रोइका गाड़ियां हवा से बातें करती चलती हैं और इसके घने जंगलों में भगोड़े क़ैदी भटकते-फिरते हैं, जानवरों से जूझते हैं और कभी बस्तियां जला डालते हैं, तो कभी ईसा के नाम पर रोटी का टुकड़ा मांगकर पेट भरते हैं;

रूस से यहां बसने आनेवालों का तांता लगा रहता है, उनके क़ाफ़िले अपनी गाड़ियों तले रात काटते हैं, अलाव के पास बैठकर आग सेंकते हैं, उधर उनके सामने से, उल्टी दिशा में भी झुंड के झुंड कंगाल हो गए, भूखे, नंगे, बीमार लोग बढ़ते जाते हैं, और न जाने कितने रास्ते में मौत का निवाला बनते हैं, पर यहां किसी के लिए कुछ नया नहीं है।

साइबेरिया ने इतना ज़्यादा पराया दर्द देखा है कि अब आश्चर्य की कोई बात नहीं रह गई। जब स्योम्का किसी गांव या बस्ती से गुज़रता हुआ पूछता: "रूस को कौन सी सड़क जाती है?", तो इसपर भी किसी को कोई हैरानी न होती।

"यहां सब रास्ते रूस को जाते है," उसे सीधा सा जवाब मिलता और जवाब देनेवाला सड़क की ओर इशारा कर देता, मानो उसकी दिशा दिखा रहा हो।

स्योम्का चलता जा रहा था, वह न थकावट महसूस कर रहा था, न उसके मन में डर था: वह अपनी आज़ादी पर खुश था, रंग-बिरंगे फूलों वाले मैदान और डाक वाली त्रोइका गाड़ी की घंटियों की टुन-टुन उसके मन में उमंगें भरती थी। कभी-कभी वह घास पर लेट जाता था और जंगली गुलाब की झाड़ी तले गहरी नींद में सो जाता था या जब गर्मी ज़्यादा होती तो सड़क किनारे के किसी कुंज में बैठ लेता। उदारमना साइबेरियाई औरतें उसे रोटी और दूध दे देती थीं और सड़क पर जाते किसान कभी-कभी उसे अपनी घोड़ागाड़ी पर बिठा लेते थे।

"बाबा, गाड़ी में बिठा लो, दया करो!" पास से कोई घोड़ागाड़ी गुज़रती, तो स्योम्का मिन्नत करता।

"माई, रोटी दे दे," गांवों में वह औरतों से मांगता था।

सब को उसपर दया आती थी और स्योम्का का पेट भरा रहता था।

(३)

दो हफ़्ते बीत गए।

स्योम्का कई रास्ते और गांव पीछे छोड़ चुका था। वह हिम्मत नहीं

हारा था, आराम से चलता जा रहा था। हां, कभी-कभार वह लोगों से पूछ लेता था :

"रूस अभी दूर है?"

"रूस? हां, पास नहीं है। चलते जाओ, जाड़ों तक पहुंच जाओगे, या शायद कुछ पहले ही।"

"और जाड़ा जल्दी ही आनेवाला है क्या?"

"नहीं, जाड़ा आने में अभी देर है। अभी तो पतझड़ भी नहीं आया।"

स्योम्का जब किसी गांव से गुज़रता, या जब उसे दूर से ही गिरजे का ऊंचा सफ़ेद घंटाघर और उसके ऊपर सुनहरी सलीब दिखाई दे जाता, तो उसकी आंखों में आंसू आ जाते, मन में ख़ुशी उमड़ती। वह टोपी उतार लेता, घुटनों के बल गिर पड़ता और रोते हुए प्रार्थना करता :

"हे, प्रभु, जल्दी से जाड़ा आ जाए!"

कभी-कभी स्योम्का को सड़क के किनारे लकड़ी का सलीब लगा दिखाई देता ; आस-पास कोई घर नहीं, कहीं पहरेदार की कोठरी तक नहीं, बस एक ओर जंगल तथा दूसरी ओर स्तेपी ही होती।

ऐसा सलीब देखकर स्योम्का सोच में पड़ जाता, हर बार उसे अपने मां-बाप की याद आ जाती, खुले मैदान में लगा तम्बू याद हो आता, जिसमें वे मरे थे, और स्योम्का सारी थकावट भूल-भालकर, तेज़ क़दम भरने लगता। उसके मुंह पर बस एक ही शब्द होता :

"घर! घर!"

लो, आखिर एक शहर आ गया...

चुंगी चौकी से आगे स्योम्का को दाएं-बाएं लट्ठों के घर दिखाई दे रहे थे। मटमैले घरों की छतें हरी, लाल या सुरमई थीं। आगे पत्थर के सफ़ेद मकान थे। गलियों में मुर्गियां घूम रही थीं, सूअर घुरघुरा रहे थे। फिर ऊंची बाड़ों और हरे-भरे अहातों का क्रम चला, डाक-चौकी के पास काली-सफ़ेद धारियों वाले मील-खंभे लगे हुए थे। खुले चौक में लोहे के जंगले के पीछे ऊंचा घंटाघर था और उसके बिल्कुल सामने लट्ठों का पतला सा बुर्ज था, उसके ऊपर एक

सिपाही चक्कर काट रहा था और आगे फिर शहर की चौकी की बुर्जियां दिखाई देने लगी थीं।

स्योम्का बिना रुके ही शहर से होता हुआ निकल गया और फिर से खुली सड़क पर पहुंच गया। यहां वह निश्शंक होकर अपनी धुन में मस्त चलता जा सकता था।

(४)

ज्यों-ज्यों स्योम्का दूर जाता जा रहा था, त्यों-त्यों उसे चारों ओर शरद ऋतु के आने की अधिक निशानियां दिख रही थीं। "कोई बात नहीं। जल्दी ही जाड़ा आ जाएगा,"—स्योम्का के मन में आता और उसे लगता कि बस उसका गांव अब पास ही आता जा रहा है। खेतों में रंग-बिरंगी तितलियां नहीं फड़फड़ा रही थीं, टिड्डे नहीं फुदक रहे थे, पेड़ों की पत्तियां झड़ने लगी थीं, घास मुरझाने लगी थी, आसमान पर अक्सर झीने-झीने सुरमई बादल छा जाते थे और रातें भी ठंडी हो गई थीं।

पर स्योम्का सोचता था: "अब तो थोड़ी ही दूर है। बस अब जल्दी ही घर पहुंच जाऊंगा।" स्योम्का सड़क पर चलता जा रहा था। भूख उसे सता रही थी। सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था।

झाड़ियों में एक आदमी पालथी मारकर बैठा कुछ चबा रहा था। उसे देखकर स्योम्का थम गया। वह ईर्ष्या भरी नज़रों से यह देख रहा था कि कैसे वह आदमी अंडा छीलकर दांतों से काट रहा था और ऊपर से रोटी खा रहा था।

"क्या चाहिए तुझे?" उस आदमी ने पूछा। वह न उठा और न उसने चबाना ही बंद किया।

स्योम्का चुपचाप खड़ा था।

वह आदमी जवान न था। चेहरे पर छोटी सी खिचड़ी दाढ़ी थी, आंखें संकरी और धंसी हुई, मुंह की चमड़ी सांवली पड़ गई थी और खुश्क हवाओं से फट गई थी। पैरों में वह नमदे के जूते पहने हुए था, कंधे पर भड़कीले रंग का कोट और सिर पर टोप।

"क्या चाहिए तुझे ?" स्योम्का की ओर ग़ौर से देखते हुए उसने फिर से पूछा।

"बाबा," स्योम्का डरते-डरते बोला, "ईसा के नाम पर थोड़ी सी रोटी दे दो..."

"अरे भैया, यहां तो खुद भले लोगों से मांगी है... पर खैर ले, बांट लेते हैं।" उसने रोटी का टुकड़ा बढ़ा दिया और फिर पूछा : "किसका है तू ? कहां से आ टपका ?"

"घर जा रहा हूं... रूस में।"

"रूस ? मैं भी रूस जा रहा हूं। तू काहे को जा रहा है ?"

स्योम्का उसे अपनी सारी कहानी सुनाने लगा। वह बता रहा था कि उसे बैरक में कितनी ऊब होती थी, कैसे उसका मन घर जाने को होता था और कैसे वह रात को भागा। बूढ़ा उसकी बातें सुनता जा रहा था और यों सिर हिला रहा था, मानो किसी बात पर उसकी प्रशंसा कर रहा हो।

"शाबाश, बेटे !" स्योम्का का हाथ थपथपाते हुए बूढ़े ने कहा। "पर ज़िंदगी तेरी खराब ही होगी। लगता है मेरे ही क़दमों पर चलेगा : न तुझे घर देखने को मिलेगा, न तेरा कोई ठौर-ठिकाना होगा... कुत्तों की सी ज़िंदगी... बिल्कुल कुत्तों की ही !"

"बाबा, तुम कौन हो ?" स्योम्का ने बड़ी दिलचस्पी से पूछा और बूढ़े के सामने बैठ गया।

"मैं कौन हूं ? कुछ भी नहीं... बस, यों ही... एक अनजान बुड्ढा।"

बूढ़े ने गहरी सांस ली और मुंह पर हाथ फेरा, मानो चेहरा पोंछ रहा हो।

"हां, भैया... है तो तू छोटा सा ही, पर देख तुझे भी घर की ललक वापस खींच रही है। बस, सदा यही होता है, घर न हुआ, सगी मां हुई... ऐसी ललक है, खींचे जाती है, खींचे जाती है... इसके बिना कहीं चैन नहीं। एक बार जाके उसे नज़र भर देख लिया, बस मन को राहत मिल गई।"

"अच्छा तो, बाबा, मैं जाड़ों तक पहुंच जाऊंगा रूस कि नहीं?"

"नहीं, नहीं पहुंच पाएगा। क्योंकि अभी ठंड पड़ने लगेगी और तेरे बदन पर कोई गरम कपड़ा तक नहीं। मैं तो गया हूं, पता है मुझे। बस कह दिया न नहीं पहुंचेगा, ठंड से अकड़ जाएगा।"

उसकी ये बातें सुनकर स्योम्का के कलेजे पर सांप लोटने लगे। बूढ़ा भी सोच में डूब गया। दोनों सिर झुकाए चुप बैठे रहे।

स्योम्का को तब यह ख्याल आ रहा था कि कैसे वह ठंड से अकड़ जाएगा। और यह सोचकर उसे दुख हो रहा था कि बेलये में किसी को इसका पता भी नहीं चलेगा। बूढ़ा अपनी सोच सोच रहा था और चुपचाप मूंछें हिलाए जा रहा था।

"तो फिर किधर चला तू?" सहसा अनजान बाबा ने पूछा और उठ खड़ा हुआ।

"मैं तो, बाबा, घर को जा रहा हूं..."

"मैं भी घर चल रहा हूं। चल, इकट्ठे चलते हैं।"

दोनों चुपचाप सड़क पर पहुंचे और पांव घसीटते आगे बढ़ चले।

(५)

सांझ ढल आई थी। दोपहर से बरसते पानी से स्योम्का और बूढ़ा तरबतर हो गए थे।

"चल, भैया मेरे, चल," बूढ़ा उसकी हिम्मत बढ़ा रहा था। "तेज़-तेज़ क़दम बढ़ा। नहीं तो यह शरद सचमुच ही आ धमकेगा और हम अभी पहाड़ों* तक भी नहीं पहुंचे। तब हम क्या करेंगे? तब तो बस अपना काम तमाम हो जाएगा।"

"चल रहा हूं, बाबा।"

---

* आशय उराल पर्वतमाला से है। —सं०

"वैसे ही हमें देर हो गई है। मुझे डर है कहीं पाला * न पड़ने लगे। तब तो बहुत बुरी होगी।"

थकावट के बावजूद स्योम्का भला-चंगा था। हमराही मिल जाने पर वह खुश था और इससे उसका साहस भी बढ़ा था। अब वह निश्चिंत था कि भटकेगा नहीं, कि बाबा उसे ठिकाने तक पहुंचा देगा; और फिर बातें करना भी अच्छा लगता था। बूढ़ा उसे अपने जन्म स्थान की और साइबेरिया की बातें बताता रहता था, कि कैसे साइबेरिया में सोना खोदा जाता है, कैसा भयानक जाड़ा वहां होता है। बूढ़ा स्योम्का को साइबेरिया की जेलों की और आज़ादी की कहानियां सुनाता, बताता कि वसंत में जब हरी-हरी घास निकलती है, तो कैसे आदमी घर जाने को तड़प उठता, हैं, रात-दिन उसे चैन नहीं मिलता।

"बाबा, हमने काफ़ी रास्ता पार कर लिया, क्या?" स्योम्का उससे पूछता।

"देख रहा है, यहां खाने-वाने को कम मिलता है, मतलब रूस के पास पहुंच रहे हैं। जब पहाड़ पार कर लेंगे, तो वहां और भी कम मिलेगा, इसीलिए तो कहता हूं जल्दी कर! रूस में लोग पैसे के भूखे हैं और तेरी-मेरी जेब ख़ाली है: सो बस, जहां मन आए, सोओ, जो चाहो, खाओ। साइबेरिया में तो, भाई मेरे, लोग भले हैं। पर उनकी भलाई भी हमारे गले में अटकती है। चल, बेटा, जल्दी चल!"

सड़क के एक ओर गाड़ियां रुकी हुई थीं। चारों ओर अंधेरा था और ठंड थी। गाड़ियों के पास जल रहे अलावों की आग पथिकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। गाड़ी से खोल दिए गए घोड़े अंधेरे में मैदान में भटक रहे थे, शरद ऋतु की मुरझाई घास नोच रहे थे। गाड़ियों के बम ऊंचे उठे हुए थे। किसान आग जलाकर हाथ सेंक रहे थे और खाना बना रहे थे।

"भगवान तुम्हें खूब रोटी-नमक दे!" अलाव के पास जाते हुए बूढ़े ने कहा। "ज़रा आग सेंक लेने दो, भाइयो!"

---

* यहां पाला शब्द तापमान शून्य से नीचे चले जाने के अर्थ में प्रयुक्त है। — सं०

"बैठ जाओ," उदासीन स्वरों में जवाब मिला।

बूढ़े ने बैठकर हाथ आग की ओर बढ़ा दिए। स्योम्का भी पास आ गया। उसके गीले कपड़े जल्दी ही गर्म हो गए और पीठ पर मीठी सिहरन दौड़ गई।

"कहां से आ रहे हो?" वहां बैठे लोगों में से एक ने अनजान बाबा के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए पूछा।

"बड़ी दूर से आ रहे हैं। घर जा रहे हैं।"

"छोकरा तुम्हारा है क्या?"

"नहीं, रास्ते में मिल गया। साइबेरिया बसने जा रहे थे इसके मां-बाप। अनाथ रह गया है।"

"देखो तो बेचारा कैसे भीग गया है!"

स्योम्का की ओर सबका ध्यान गया। वह आग के बिल्कुल पास ही बैठा था और ठंड से सिकुड़ते हुए देख रहा था कि कैसे अलाव में लकड़ियां जलते हुए ऐंठ रही हैं, कैसे हवा में सफ़ेद धुआं उठ रहा है और कैसे पतीले में पकते खाने में झाग उठ रही है, सूं-सूं हो रही है।

"अच्छा तो अनाथ है?" किसानों ने पूछा और फिर से स्योम्का की ओर देखने लगे।

फिर वे फ़सल की, अपने काम की बातें करने लगे; जब खाना तैयार हो गया, तो खाने लगे।

"खा ले, बच्चे, खा ले," स्योम्का को खाना देते हुए वे कह रहे थे। "देखो तो, कैसे ठंड से ठिठुर रहा है।"

स्योम्का ने भर पेट खाना खाया और आराम करने को लेट गया। गरम खाने के बाद आग के पास लेटना बड़ा अच्छा लग रहा था। लकड़ियां चटख रही थीं, धुएं की और ताज़ी छाल की गंध आ रही थी – बिल्कुल वैसे ही, जैसे उसके गांव बेलये में हुआ करता था। हां, अगर वह घर पर होता, तो कुछ आलू खोद लाता और उन्हें आग में डाल देता। स्योम्का को भूने हुए आलू याद हो आए, जिनकी भीनी-भीनी महक आती है और जिनसे हाथ जलते हैं और जो दांतों तले खस-खस करते हैं।

स्योम्का के सिर के ऊपर तारे चमक रहे थे। बेलये के आसमान में भी

इतने सारे तारे होते थे और इतने साफ़ चमकते थे। स्योम्का का मन कहता था, हाय बेलये कहीं पास ही हो। टांगें थकावट से दुख रही थीं, पीठ व बग़ल को ज़मीन से ठंडक पहुंच रही थी और चेहरे, छाती व घुटनों को आंच की सुहानी गर्मी मिल रही थी।

किसान अभी भी कुछ बातें कर रहे थे और बाबा भी उनके साथ बातें कर रहा था। स्योम्का को उसकी आवाज़ सुनाई दे रही थी: "बड़ा मुश्किल है जीना, भाइयो, बड़ा मुश्किल है..." किसान भी कह रहे थे कि बड़ा मुश्किल है। फिर उनकी आवाज़ें दबी-दबी सी और धीमी हो गईं, मानो मधुमक्खियां भिनभिना रही हों ... फिर स्योम्का की आंखों के सामने लाल घेरे बनने लगे, फिर चौड़ी नदी बहने लगी और उसके पार था बेलये गांव। स्योम्का नदी में कूदना चाहता था, पर अनजान बाबा ने उसकी टांग पकड़ ली और कहा: "मुश्किल है! मुश्किल है!" इसके बाद फिर से लाल और हरे घेरे बनने लगे, और सब कुछ गडमड हो गया।

स्योम्का सुध-बुध खोए सो रहा था।

(६)

प्रभात वेला में स्योम्का की आंख खुली। आकाश पर बादल तैर रहे थे, बुझे अलाव पर ठंडी हवा के झोंके आते, राख उठाते और सायं-सायं करते हुए उसे मैदान में फैला देते। किसान वहां नहीं थे। अनजान बाबा गठरी बना ज़मीन पर पड़ा हुआ था।

स्योम्का उठकर बैठ गया।

"बाबा!" उसने बूढ़े को आवाज़ दी।

"किसान कहां गए?" उसके दिमाग में यह सवाल कौंधा और सहसा यह सोचकर वह भयभीत हो गया कि बाबा को कुछ हो तो नहीं गया।

सायं-सायं करती हवा राख उड़ा रही थी; काले, अधजले कुंदों पर जली टहनियों की सरसर हो रही थी और लगता था मानो सारा मैदान कराह रहा है। स्योम्का का डर बढ़ता जा रहा था।

"बाबा!" वह फिर से चिल्लाया, पर उसकी आवाज़ को हवा दूसरी ओर ले गई।

स्योम्का की आंखें मुंद रही थीं, सिर भारी हो गया था और कंधे पर लुढ़क-लुढ़क जाता था। स्योम्का फिर से लेट गया, चारों ओर से उसके कानों में हवा की गूंज आ रही थी। उसे लग रहा था कि डाकुओं ने बाबा को मार डाला है, फिर से कहीं पास ही बेलये गांव दिखा, पर कोई उसे गांव में घुसने से रोक रहा था, उसे पीछे खींच रहा था, वहां खुले मैदान में, जहां गंदी मटमैली बैरक थी। "अच्छा, तू घर जाएगा?!" गुस्से भरी आवाज़ में कोई कह रहा था। फिर कोई गर्म-गर्म श्ची लाया और जबरदस्ती स्योम्का के मुंह में डालने लगा, सिर पर उंडेलने लगा, वह उंडेलता ही जा रहा था, उंडेलता ही जा रहा था, स्योम्का के सिर पर गर्म पहाड़ बन गया, पर वह उंडेलता ही जा रहा था ... सिर फूल गया, अंदर आग जल रही थी। स्योम्का की सांस रुक रही थी – फिर उसने आंखें खोलीं। बाबा उसके ऊपर झुका बैठा था और दुख से सिर हिला रहा था।

"क्यों भैया?" उसके चेहरे को छूते हुए बाबा ने कहा और स्योम्का को ऊपर आसमान, सूरज, खिचड़ी दाढ़ी और धंसी हुई आंखें दिखाई दीं। "क्यों, भैया? लगता है, मामला गड़बड़ है।"

"बाबा ..." स्योम्का मुश्किल से बोल पाया।

"उठो तो भैया, ज़रा बैठो तो।"

बूढ़े ने उसे उठाकर अपनी गोद में बिठाया और सिर अपनी छाती से लगा लिया।

"क्यों, भैया?"

"कुछ नहीं ..." स्योम्का बुदबुदाया।

"थोड़ा होश संभालो, जैसे-तैसे चलना चाहिए ... यहीं तो मरना नहीं।"

घंटे भर बाद वे एक दूसरे की कमर में बांहें डाले धीरे-धीरे सड़क पर चल रहे थे। बूढ़ा दृढ़तापूर्वक नपे-तुले क़दम भर रहा था, पर स्योम्का अक्सर लड़खड़ा जाता था।

"शहर भी तो बड़ी दूर है," बूढ़ा कह रहा था। "तुझे तो अस्पताल में

भरती कराना चाहिए। तेरी बात और है। तू जा सकता है। मुझे तो वहां, शहर में शकल नहीं दिखानी चाहिए। ओफ़, कैसी ज़िंदगी है!"

थोड़ी देर बाद स्योम्का रुक गया:

"बाबा, चला नहीं जाता ... थोड़ी देर बैठ लें।"

"चल, उधर पेड़ों तले चलते हैं। वहां कुछ गर्माहट होगी। आ जा, मुझे पकड़ ले। ऐसे! चल, चलें।"

पेड़ों के झुरमुट में वे बैठ गए। अनजान बाबा ने स्योम्का को सिर गोद में रखने को कहा। खुद कुछ टहनियां तोड़कर उसने बिस्तर बना दिया।"

"लेट जा, भैया। लेट जा।"

"बाबा," स्योम्का ने गिड़गिड़ाते हुए कहा। "मुझे अकेले न छोड़ जाना! बाबा!"

वह फूट-फूटकर रो पड़ा। उसके मुंह से एक शब्द भी और नहीं निकला। फिर उसे लगने लगा कि चारों ओर सायं-सायं हो रही है, फिर से कोई उसका सिर पकड़कर खींच रहा है, सब कुछ घूम रहा है, जल रहा है ...

"घर! घर!" स्योम्का के मुंह से अस्पष्ट से बोल फूटे और ज़ोर लगाकर उसने आंखें खोलीं, पर कुछ नहीं दिखा ...

कभी-कभी उसे अपने आस-पास नए, अनजान चेहरे मंडराते लगते, नई बैरक दिखती; कभी मां उसे दिखती, कभी उज़्यूप्का नदी, कभी फिर अनजान लोग और कभी वही बाबा; रात-दिन सब गडमड हो गए और आख़िर स्योम्का ने फिर से आंखें खोलीं।

वह एक कमरे में, नरम बिस्तर पर लेटा हुआ था, उसे ऊपर छत साफ़-साफ़ दिख रही थी, खिड़की के बाहर बूची टहनियोंवाला पेड़ हिल रहा था।

वह भयभीत हो उठा: "फिर बैरक में आ गया?" उसने उठकर भाग जाना चाहा, पर उसका शरीर हिलता न था, सिर मानो सिरहाने से चिपका हुआ था।

"बाबा कहां हैं?" स्योम्का ने आंखें घुमाकर परिचित चेहरा ढूंढ़ना चाहा।

पर न वह बूढ़ा था, न जंगल और न बड़ी सड़क। स्योम्का दुखी हो उठा: क्यों अनजान बाबा उसे छोड़कर चला गया। और उसके सूखे हुए, पीले चेहरे पर आंसू बहने लगे।

(७)

एक दिन, बीमारी के बाद कमज़ोर स्योम्का अस्पताल का चोगा पहने, खिड़की के पास खड़ा था और विचारमग्न निर्जन सड़क को देख रहा था, जहां, हवा सूखी पत्तियों को डबरों के पार उड़ा रही थी। स्योम्का के पीछे अस्पताल का सिपाही देमीदिच खड़ा था, वह भी अपनी सोच में डूबा हुआ बाहर देख रहा था। उसने स्योम्का को बताया था कि कैसे एक बूढ़ा उसे बेहोशी की हालत में यहां लाया था। संयोग से दरोगा भी यहीं खड़ा था। उसने बूढ़े को देखा और बोला: "आ गया, पट्ठे!" बूढ़ा बस वहीं का वहीं बैठ गया। दरोगा बोला: "फिर भाग निकला?" और उसे फ़ौरन पकड़ लिया गया। तीसरी बार वह क़ैद से भागा था। तीसरी बार पकड़ा गया।

ये सब बातें स्योस्का सिपाही से कई बार सुन चुका था। हर रोज़ वह सुबह-शाम ठंडी आहें भरता और सोचता: "हे, भगवान, बाबा को बचा लो।"

"आज उन्हें ले जाया जा रहा है," सिपाही कह रहा था। "देख अभी निकलेंगे।"

थोड़ी देर में स्योम्का को अजीब सी दबी-दबी आवाज़ें सुनाई दीं। फिर कंधों पर बंदूकें डाले सिपाही दिखे और पीछे मटमैले चोगे और गोल टोपियां पहने लोगों की भीड़। उनके हाथों और पैरों पर बेड़ियां खनक रही थीं। भीड़ के दोनों ओर तथा पीछे भी सिपाही चल रहे थे; सब ठंड से ठिठुर रहे थे।

स्योम्का का कलेजा थम गया, वह शीशे से चिपक गया और आंखें फाड़-फाड़कर इस भीड़ को देखने लगा कि कहीं वह जाना-पहचाना चेहरा नज़र आ जाए। सहसा वह बेतहाशा चीखा और शीशे पर मुट्ठियां मारने लगा:

"बाबा! बाबा! बाबा!"

क़ैदियों में उसे अनजान बाबा दिखाई दे गया था, जो बेड़ियों में उलझता हुआ खिड़की के पास से ही गुज़र रहा था।

"बाबा! बाबा!" स्योम्का चिल्ला रहा था। ख़ुशी और भय से वह बदहवास हो गया था।

दस्तक सुनकर कइयों ने मुड़कर देखा। अनजान बाबा ने भी सिर घुमाया। स्योम्का ने देखा कि बाबा ने अपनी धंसी हुई बदरंग आंखों से उसे देखा है, उसने देखा कि बाबा ने गहरी सांस भरी और सिर हिलाया।

स्योम्का के आंसू फूट पड़े, छाती में दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। इस बीच क़ैदी और कॉनवाय के सिपाही आगे बढ़ गए थे और मोड़ के पीछे छिप गए थे। स्योम्का अभी भी मुक्के मारता जा रहा था और चिल्ला रहा था: "बाबा, बाबा!" सिपाही उदासीन स्वर में कह रहा था:

"अबे, रोता क्यों है? काहे का रोना है: तुझे जल्दी ही तेरे घर पहुंचा देंगे। बच्चा है तू, सो तेरा यहां कोई काम नहीं। कह दिया न, लौटा देंगे, अब चिल्ला मत!"

पर स्योम्का फूट-फूटकर रो रहा था और उधर मोड़ के पीछे देखने का जतन कर रहा था, जहां संयोगवश ही उसे मिल गया उसका सच्चा, अनजान मित्र अपनी बेडियां घसीटता चला गया था।

लेओनीद अन्द्रेयेव
बस एक याद

१९वीं सदी के अंत और २०वीं के आरम्भ के जाने-माने लेखक लेओनीद निकोलायेविच अन्द्रेयेव (१८७१—१९१९) ने विशेषत: बच्चों के लिए तो कुछ नहीं लिखा। परंतु आज तक बच्चों के पढ़ने योग्य पुस्तकों की सूची में उनकी दो कहानियां 'बेर्गामोत और गेरास्का' (१८९८) तथा 'बस एक याद' (१८९९) अवश्य शामिल की जाती हैं।

बचपन में अन्द्रेयेव को फ़ेनिमोर कूपर, माइन रीड, गुस्ताव ऐमार और ऐडगर पो की पुस्तकें सबसे ज़्यादा पसंद थीं। 'बस एक याद' कहानी रेड इंडियनों के जीवन पर रोचक उपन्यास या जासूसी कहानी जैसी तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन इसे बच्चों के पठन-पाठन में केवल इसलिए ही स्थान प्राप्त नहीं है कि इसका नायक एक बालक है, बल्कि इसलिए भी कि जीवन की साधारण सी घटना को लेखक ने असाधारण ढंग से प्रस्तुत किया है। एक मामूली सी बात है—शहरी लड़का कुछ दिन देहाती इलाक़े में रहता है, पर उसके लिए यह यात्रा बिल्कुल ही अनोखी यात्रा होती है, जिसमें वह एक बिल्कुल नई, खुशियों से भरपूर दुनिया देखता है। इसीलिए कहानी का अंत और भी दुखद लगता है—लड़के को फिर उसी कठोर, नीरस, निर्मम जीवन में लौटना पड़ता है।

हां, यह कहना भी सही नहीं होगा कि कहानी पढ़कर पाठक के मन में पेत्का नामक लड़के के प्रति करुणा ही जागती है। पेत्का को आज़ादी और सुख के जो दो क्षण मिलते हैं, उनकी याद उसके मन में सदा के लिए बस जाती है और पाठक के हृदय पर भी वे अपनी छाप छोड़ जाते हैं।

नाई ओसिप अब्रामविच ग्राहक की छाती पर मैला सा कपड़ा ठीक करता, उंगलियों से उसे कालर के पीछे घुसेड़ता और तीखी आवाज़ में चिल्लाता :

"छोकरे, पानी!"

शीशे में अपनी शक्ल निहारता ग्राहक देखता कि उसकी ठोड़ी पर एक और फुंसी निकल आई है और वह मुंह लटकाकर नज़र मोड़ लेता, जो सीधी छोटे से, दुबले-पतले हाथ पर पड़ती। यह हाथ कहीं एक ओर से बढ़ता और शीशे के पास टीन की कटोरी में गर्म पानी रख देता। जब ग्राहक नज़रें ऊपर उठाता तो उसे नाई का अक्स दिखाई देता – अजीब, टेढ़ा सा और दिखती उसकी धमकी भरी नज़र, जो वह नीचे किसी के सिर पर तेज़ी से डालता। साथ में नाई के होंठो में बुदबुदाहट की हरकत होती। बुदबुदाहट सुनाई तो न देती, पर उसका मतलब साफ़ होता। अगर ख़ुद नाई ओसिप अब्रामविच की जगह प्रकोपी या मिख़ाइला नाम का कोई शागिर्द उसकी हजामत कर रहा होता, तो बुदबुदाहट ज़ोरदार होती और उसमें अनिश्चित सी धमकी होती :
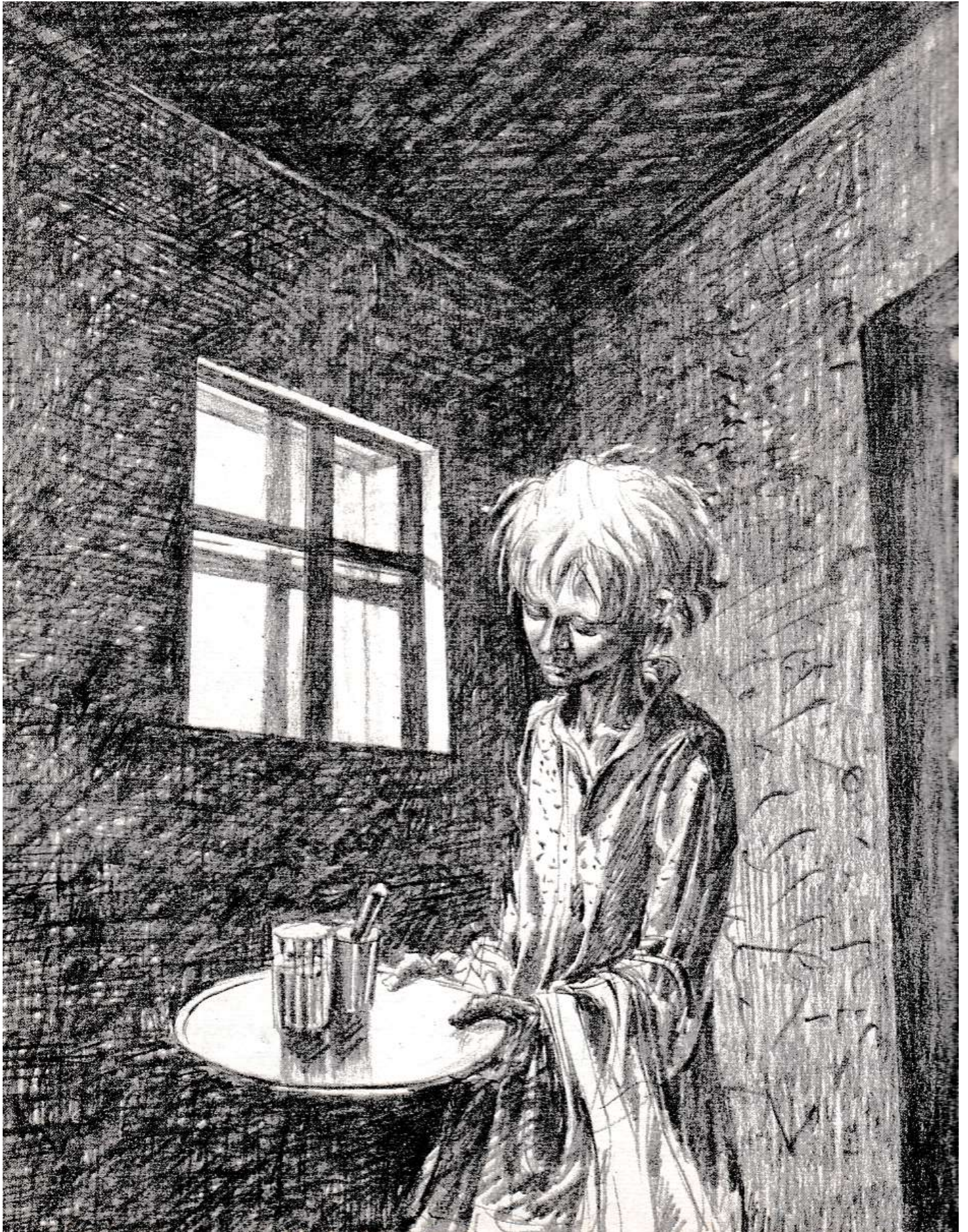
"ज़रा ठहर, बच्चू!"

इसका मतलब होता कि छोकरे ने पानी जल्दी से नहीं दिया और उसे सज़ा मिलेगी।

"इसी लायक़ हैं ये," ग्राहक सोचता और गर्दन टेढ़ी करके अपनी नाक के ऐन पास पसीने से लथपथ बड़े से हाथ को निहारने लगता। हाथ की तीन उंगलियां फैली होतीं और बाक़ी दो चिपचिपी व खुशबू मारती उंगलियां ग्राहक के गाल और ठोड़ी का कोमल स्पर्श करती होतीं, जबकि भोथरा उस्तरा अप्रिय सी सरसराहट के साथ साबुन की भाग और दाढ़ी के सख़्त बाल साफ़ करता।

जिस लड़के को सबसे ज़्यादा डांट पड़ती थी उसका नाम था पेत्का और वह नाई की दुकान में काम करनेवालों में सबसे छोटा था। दूसरा छोकरा निकोल्का पेत्का से तीन साल बड़ा था और जल्दी ही शागिर्द बनने वाला था। अब भी, जब कोई मामूली सा ग्राहक दुकान में आता और शागिर्दों को मालिक की अनुपस्थिति में काम करने में आलस लगता, तो वे निकोल्का को हजामत करने को भेज देते और यह देखकर हंसते कि उसे भारी-भरकम जमादार की टांड के बाल देखने के लिए पंजों के बल खड़ा होना पड़ता है। कभी-कभी ग्राहक चीखता-चिल्लाता कि उसके बाल ख़राब कर दिए और तब शागिर्द भी निकोल्का पर चिल्लाते। लेकिन ऐसा बहुत कम ही होता था, सो वह बड़ों की तरह बनता फिरता था: सिगरेट पीता था, दांत भींचकर थूकता था, गंदी-गंदी गालियां देता था। पेत्का के सामने वह इस बात की भी डींग मारता था कि उसने वोद्का पी है, पर यह शायद भूठ ही था। शागिर्दों के साथ वह पड़ोस की गली में ज़ोरदार लड़ाई देखने जाता था और जब वहां से हंसता-खेलता लौटता था, तो ओसिप अब्रामविच उसे दो थप्पड़ रसीद करता था: एक गाल पर एक।

पेत्का दस बरस का था। वह न सिगरेट पीता था और न वोद्का ही, गालियां भी नहीं देता था, हालांकि उसे बहुत सी गालियां आती थीं और इन सब मामलों में उसे अपने साथी से ईर्ष्या होती थी।

जब दुकान में कोई ग्राहक न होता तो पेत्का और निकोल्का बैठकर बातें करते। ऐसे मौक़ों पर निकोल्का सदा भला बन जाता था और "छोकरे" को यह समभाता था कि कौन सी काट के बाल कैसे काटे जाते हैं।

कभी-कभी वे दोनों खिड़की पर बैठ जाते, जहां मोम का बना औरत का आधा बुत रखा हुआ था। बुत के गाल गुलाबी थे। यहां बैठकर वे बुल्वार की ओर ताकते रहते। बुल्वार पर सुबह से ही ज़िंदगी की चहल-पहल शुरू हो जाती थी। बुल्वार के पेड़ धूल से धूसर पड़ गए थे, तेज़ धूप में उनकी एक पत्ती तक न हिलती और उनसे जो छाया पड़ती वह भी धूसर ही होती, उसमें ज़रा भी शीतलता न होती। सभी बेंचों पर औरतें, मर्द बैठे होते – मैले-कुचैले, अजीब से कपड़े पहने हुए, औरतों के सिर पर कोई रूमाल नहीं, मर्दों के सिर पर कोई टोपी नहीं, मानो वे यहीं रहते हों और उनका कोई दूसरा घर ही न हो। अक्सर किसी का झबरीला सिर बेबस ही कंधे पर लुढ़क जाता और शरीर अनचाहे ही सोने को जगह ढूंढ़ता, तीसरे दर्जे की सवारी की तरह, जिसने एक सीट पर बैठे-बैठे ही हज़ारों किलोमीटर का सफ़र किया हो, पर लेटने को कोई जगह न थी। पगडंडियों पर नीली वर्दी पहने चौकीदार डंडा उठाए घूमता रहता था और देखता था कि कोई बेंच पर न लेट जाए, या घास पर न लंबा पड़ जाए, जो तेज़ धूप से सूख गई थी, पर फिर भी इतनी नरम और ठंडी थी।

निकोल्का इन में से कई लोगों के नाम तक जानता था। वह पेत्का को उनके बारे में तरह-तरह के क़िस्से सुनाया करता था और खीसें निपोरता था। पेत्का हैरान होकर सोचता था कि निकोल्का कितना अक्लमंद और निडर है, कि कभी वह भी उसके जैसा बन जाएगा। पर अभी तो वह कहीं और चला जाना चाहता था ... बस यही एक ख़्वाहिश थी उसकी।

पेत्का के लिए सभी दिन बिल्कुल एक जैसे थे। जाड़ा हो या गर्मी, उसे बस वही शीशे देखने को मिलते थे, जिनमें से एक में बाल पड़ा हुआ था और दूसरा टेढ़ा था। गंदी सी, धब्बेदार दीवार पर वही एक ही तसवीर सदा टंगी रहती थी। सुबह, शाम, सारा दिन पेत्का के सिर पर एक ही कर्कश आवाज़ गूंजती थी: "छोकरे, पानी!" और वह पानी देता रहता था, देता रहता था। उसके लिए कोई छुट्टी या त्यौहार न थे। इतवार को जब दूसरी दुकानों में कोई रोशनी न होती, नाई की दुकान से रात गए तक सड़क पर तेज़ रोशनी गिरती रहती। वहां से गुज़रते लोग प्रायः दुकान के एक कोने में स्टूल पर गठरी

बनकर बैठे दुबले-पतले लड़के को देखते, जो न जाने किसी सोच में डूबा होता या ऊंघ रहा होता। पेत्का बहुत सोता था; तो भी उसे हर समय नींद आती रहती थी और प्रायः ऐसा लगता था कि उसके चारों ओर जो कुछ भी है वह सच्चाई न होकर एक लंबा, अप्रिय सपना मात्र ही है। अक्सर उससे पानी बिखर जाता, उसे "छोकरे, पानी!" की कर्कश चीख ही सुनाई न देती। वह सूखता जा रहा था और उसके मुंडे सिर पर पपड़ी सी जमने लगी थी। ग्राहक इस दुबले-पतले लड़के को घिन से देखते थे, जिसकी आंखों में सदा नींद भरी रहती, मुंह अधखुला होता और गर्दन व हाथ बेहद गंदे। आंखों के पास और नाक के तले बारीक-बारीक झुर्रियां बन गई थीं, मानो नुकीली सुई से बना दी गई हों और इनके कारण वह बूढ़ा हो गया बौना सा लगता था।

पेत्का नहीं जानता था कि वह यहां ऊबता है या खुश है, पर उसका मन कहीं और चले जाने को होता था। उस जगह के बारे में वह कुछ नहीं कह सकता था कि वह कहां है और कैसी है। जब उसकी मां, नादेझ्दा बावर्चिन उससे मिलने आती, तो वह बिना किसी चाव के मां की दी मिठाई खा लेता, उससे किसी बात की शिकायत न करता, बस इतना ही कहता कि वह उसे यहां से ले जाए। पर जल्दी ही वह अपना यह अनुरोध भी भूल जाता, अनमना सा मां को नमस्ते करता और इतना तक न पूछता कि वह फिर कब आएगी। नादेझ्दा यह सोचकर दुखी होती कि उसके एक ही बेटा है, और वह भी भोंदू है।

पेत्का को कुछ पता नहीं था कि वह कितने दिनों तक यों ही जीता रहा। एक दिन दोपहर के खाने के समय मां आई, उसने ओसिप अब्रामविच से बातें कीं और बेटे से कहा कि उसे दाचा * जाने की छुट्टी मिल गई है। यह दाचा त्सरीत्सिनो ** में था और वहां नादेझ्दा के मालिक रहते थे। पहले तो पेत्का

---

* शहर के बाहर रमणीय ग्रामीण इलाक़े में स्थित घर, जहां नगरवासी गर्मियों में रहते और आराम करते हैं। —अनु०

** मास्को से थोड़ी दूर स्थित एक सुन्दर स्थल। १७७५-१७८५ में यहां एक महल बनाया गया था। १७८५ में ज़ारनी येकातेरीना द्वितीया ने पहला महल तोड़कर नया बनाने का आदेश दिया। नये महल का निर्माण पूरा नहीं हुआ और अब यहां खण्डहर ही बचे हुए हैं। —सं०

कुछ समझा नहीं पर फिर निश्शब्द हंसी से उसका चेहरा बारीक-बारीक झुर्रियों से भर गया और वह मां से जल्दी करने को कहने लगा। नादेझ्दा को अभी शिष्टाचार के नाते ओसिप अब्रामविच से उसकी पत्नी का हालचाल पूछना था, पर पेत्का उसे धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर धकेल रहा था और बांह खींच रहा था। वह नहीं जानता था कि यह दाचा क्या होता है, पर उसका ख्याल था यह वही जगह है, जहां जाने का उसका इतना मन था। अपनी ख़ुशी में वह निकोल्का को भूल ही गया। निकोल्का जेबों में हाथ डाले पास ही खड़ा था और सदा की तरह ढिठाई से नादेझ्दा की ओर देखने की कोशिश कर रहा था। पर उसकी आंखों में ढिठाई की जगह गहरा विषाद था: उसके मां थी ही नहीं, और इस क्षण वह इस मोटी नादेझ्दा जैसी औरत को भी मां मानने को तैयार था। बात यह थी कि वह भी कभी दाचा नहीं गया था।

स्टेशन पर ख़ूब चहल-पहल और भीड़-भड़क्का था। आती-जाती रेलगाड़ियां घड़घड़ा रही थीं, इंजन सीटियां बजा रहे थे – किसी की आवाज़ ओसिप अब्राम-विच जैसी भारी और ग़ुस्से भरी थी और किसी की उसकी बीमार पत्नी जैसी चिचियाती हुई और पतली। सवारियां उतावली सी इधर-उधर आ जा रही थीं, लगता था उनका यह सिलसिला कभी ख़त्म ही न होगा। पेत्का यह सब आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा था – वह पहली बार स्टेशन पर आया था। उसके मन में एक विचित्र अधीरता और अकुलाहट भर रही थी। मां को और उसे भी डर लग रहा था कि कहीं गाड़ी छूट न जाए, हालांकि गाड़ी जाने में अभी आधे घंटे से भी ज़्यादा समय था। आख़िर जब वे डिब्बे में बैठ गए और गाड़ी चल दी, तो पेत्का खिड़की से चिपक गया। बस उसका मुंडा हुआ सिर ही पतली गर्दन पर इधर-उधर घूम रहा था, मानो वह लोहे के स्प्रिंग पर लगा हुआ हो।

पेत्का का जन्म शहर में हुआ था और वहीं पर वह बड़ा हुआ। ज़िंदगी में पहली बार वह खेत-मैदान देख रहा था और यहां सब कुछ उसके लिए नया, आश्चर्यजनक और अजीब था। यहां चारों ओर इतनी दूर-दूर तक दिखाई देता था, जंगल घास जैसा लगता था और आसमान भी इस नए संसार में इतना साफ़ और इतना बड़ा था, मानो वह छत पर चढ़कर उसे देख रहा हो। पेत्का

अपनी ओर से उसे देख रहा था और जब वह मां की ओर सिर मोड़ता, तो सामने की खिड़की से भी उसे नीला आकाश नज़र आता और उस पर तैरते सफ़ेद बादल दिखते। पेत्का कभी अपनी खिड़की के पास कुलबुलाता रहता, कभी भागकर डिब्बे के दूसरी ओर चला जाता, सहज भाव से अपना जैसे-तैसे धोया हाथ दूसरे मुसाफ़िरों के घुटनों और कंधों पर रखता जाता और वे जवाब में मुस्करा देते। एक साहब ने, जो अख़बार पढ़ रहा था और न जाने बेहद थके होने के कारण या ऊब के मारे बराबर जंभाइयां ले रहा था, दो-एक बार लड़के की ओर तिरछी नज़रों से देखा। नादेझ्दा फ़ौरन माफ़ी मांगने लगी:

"पहली बार गाड़ी पर जा रहा है न ... सब कुछ नया है इसके लिए ..."

"हुं," साहब ने बुदबुदा कर नज़रें अख़बार में गाड़ लीं।

नादेझ्दा का बड़ा मन था कि उसे यह बताए कि पेत्का तीन साल से नाई की दुकान पर काम कर रहा है और नाई ने उसे अपने पैरों पर खड़ा करने का वायदा किया है और यह बहुत ही अच्छा होगा, क्योंकि वह अबला बिल्कुल अकेली है और उसका बीमारी में या बुढ़ापे में यही एक सहारा है। पर साहब का चेहरा सख़्ती भरा था और नादेझ्दा ने यह सब मन ही मन कह डाला।

रास्ते के दाईं ओर छोटे-छोटे ढूहों वाला मैदान था, जो नमी की वजह से गाढ़े हरे रंग का था। उसके सिरे पर मटमैले से मकान बने हुए थे, दूर से वे खिलौनों जैसे लगते थे। आगे ऊंचे, हरे टीले पर, जिसके नीचे रजत जल धारा चमचमा रही थी, खिलौने सा ही सफ़ेद गिरजा बना हुआ था।

जब रेलगाड़ी अचानक तेज़ हो गई घड़घड़ाहट के साथ पुल पर चढ़ गई और मानो दर्पण सी नदी के ऊपर हवा में टंग गई, तो पेत्का सहसा डर के मारे कांप उठा और झटककर खिड़की से पीछे हट गया, लेकिन पल भर में ही फिर खिड़की के पास जा पहुंचा, कि कहीं रास्ते का कोई नज़ारा उसकी नज़रों से बचा न रह जाए। पेत्का की आंखों में अब उनींदापन न रहा था और झुर्रियां भी ग़ायब हो गई थीं, मानो किसी ने इस चेहरे पर गर्म इस्तरी फेरकर झुर्रियां दूर कर दी हों और उसे सफ़ेद व चमकीला बना दिया हो।

दाचा पर पहले दो दिन तो पेत्का को जंगल से डर लगता रहा, जो उसके सिर के ऊपर धीर-गम्भीर सा शोर करता था। अंधेरा जंगल विचारमग्न सा

और भयावह लगता था। जंगल के बीच में छोटे-छोटे हरे-भरे मैदान मानो अपने चटकीले फूलों में हंसते थे, गाते थे और पेत्का को बड़े अच्छे लगते थे, वह उन्हें सहलाना चाहता था। गाढ़ा नीला आकाश उसे अपनी ओर बुलाता, मुस्कराता लगता था। पेत्का उद्विग्न हो उठता, कांपता, पीला पड़ जाता और मुस्कराने लगता। बूढ़ों की तरह धीरे-धीरे चलता हुआ वह जंगल के बाहर-बाहर और तालाब के झाड़ीदार किनारे पर घूमता रहता। यहीं पर वह थककर घनी नम घास पर गिर पड़ता और उसमें समा जाता, बस उसकी छोटी सी चित्तीदार नाक हरी सतह के ऊपर निकली होती। पहले दिनों में वह अक्सर मां के पास लौट आता था, उसका दामन पकड़ता रहता था और जब साहब उससे पूछते कि क्या दाचा पर उसे अच्छा लग रहा है, तो वह सकपका जाता और मुस्कराता हुआ सिर हिला देता।

और फिर वह विकट वन तथा शांत जल की ओर चला जाता। वहां घूमता हुआ वह मानो उनसे कुछ पूछता रहता।

दो दिन और बीतते न बीतते पेत्का का प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य हो गया। ऐसा त्सरीत्सिनो के एक स्कूल छात्र मीत्या के सहयोग से हुआ। मीत्या का संवलाया चेहरा पीलापन लिए था, सिर के बाल खड़े रहते थे। धूप से उसके सुनहरी बालों का रंग इतना उड़ गया था कि वे सफ़ेद लगते थे। पेत्का ने जब पहली बार उसे देखा तो वह मछली पकड़ रहा था। पेत्का बेझिझक उससे बातें करने लगा और जल्दी ही वे घुलमिल गए। मीत्या ने पेत्का को एक बंसी पकड़ने को दी और उसे दूर कहीं नदी में नहलाने ले गया। पेत्का को पानी में घुसते हुए डर लग रहा था, पर जब वह घुस गया, तो फिर बाहर नहीं निकलना चाहता था। नाक-भौं ऊपर उठाकर, पानी पर हाथ मारते हुए वह ऐसे दिखा रहा था, मानो तैर रहा हो। इन क्षणों में वह बिल्कुल ऐसा पिल्ला लगता था, जो पहली बार पानी में घुसा हो। आखिर जब पेत्का ने कपड़े पहने तो उसका बदन ठंड से नीला पड़ गया था और दांत किटकिटा रहे थे। मीत्या को हमेशा कुछ न कुछ सूझता रहता था। उसी के सुझाव पर वे महल के खंडहर देखने गए। महल की छत पर चढ़ गए, जहां बहुत सारे पेड़ उग आए थे, विशाल महल की ढह गई दीवारों के बीच घूमते रहे। वहां उन्हें बहुत अच्छा लग रहा

था : जगह-जगह पर पत्थरों के ढेर लगे हुए थे, जिन पर मुश्किल से चढ़ा जा सकता था और उनके बीच पेड़-पौधे उग रहे थे, पूर्ण निस्तब्धता थी और लगता था कि बस अभी किसी कोने में से कोई निकल आएगा या खिड़की के टूटे-फूटे झरोखे में से कोई डरावना चेहरा दिखाई देगा। धीरे-धीरे पेत्का को दाचा पर ऐसा लगने लगा, मानो वह अपने ही घर रह रहा हो और वह यह भूल ही गया कि दुनिया में ओसिप अब्रामविच और नाई की दुकान का भी अस्तित्व है।

"देखो तो, कितना मोटा हो गया है!" नादेझ्दा खुश होती। वह खुद भी काफ़ी मोटी थी और रसोईघर की गर्मी से उसका चेहरा तांबे के समोवार की तरह लाल हो गया था।

नादेझ्दा सोचती थी कि पेत्का को खाना अच्छा मिलता है। परंतु वास्तव में पेत्का बहुत कम ही खाता था इसलिए नहीं कि उसे भूख नहीं लगती थी, बल्कि इसलिए कि कौन इतना झंझट करे : अगर चबाए बिना ही खाना निगाला जा सकता, तो बात और थी, पर यहां तो चबाना पड़ता था और बीच-बीच में ख़ाली बैठे टांगें हिलानी पड़ती थीं, क्योंकि नादेझ्दा बहुत ही धीरे-धीरे खाना खाती थी, हड्डियां चूसती थी, एप्रन से मुंह पोंछती थी और बेकार की बातें करती जाती थी। उधर पेत्का को न जाने कितने काम थे : पांच बार तो नहाने जाना चाहिए, फिर झाड़ियों से बंसी के लिए डंडियां काटनी होती हैं, केंचुए ढूंढ़ने होते हैं – इस सब के लिए भी तो वक़्त चाहिए। अब पेत्का नंगे पैर घूमता था, यह मोटे तलवे वाले, घुटनों तक ऊंचे बूट पहने फिरने से कहीं अच्छा था : खुरदरी ज़मीन से कहीं पैरों में मीठी जलन होती और कहीं ठंडक पहुंचती थी। पेत्का अब उसे मिली पुरानी जैकट भी नहीं पहनता था, जिसमें वह नाई की दुकान का बड़ा शागिर्द लगता था। शाम को जब वह साहब लोगों को नावों में सैर करते देखने के लिए बांध पर जाता था, तभी जैकट पहनता था। सजे-धजे साहब लोग हंसते हुए हिलती-डुलती नाव में बैठते और वह धीरे-धीरे निर्मल जल को चीरती हुई बढ़ जाती, जल में प्रतिबिम्बित वृक्ष डोलने लगते, मानो हवा का झोंका आया हो।

उसी सप्ताह के अंत में साहब "बाबरचीन नादेझ्दा" के नाम पत्र लाए और जब उन्होंने उसे पढ़कर सुनाया तो वह रोने लगी और एप्रन पर लगी

कालिख सारे चेहरे पर पोत ली। इस सबके साथ उसके मुंह से निकले कुछ शब्दों से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि चर्चा पेत्का की है। यह सब संध्या समय हुआ। पेत्का पीछे के आंगन में इक्कल-दुक्कल खेल रहा था और ग़ाल फुला रहा था, क्योंकि इस तरह कूदना काफ़ी आसान लगता था। स्कूल छात्र मीत्या ने उसे यह निकम्मा, पर दिलचस्प खेल सिखाया था, और अब पेत्का पक्के खिलाड़ी की तरह अकेले में अभ्यास कर रहा था। साहब ने बाहर आकर उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा:

"क्यों भई, जाना होगा।"

पेत्का सकपकाया सा मुस्करा रहा था, बोल कुछ नहीं रहा था।

"है न भोंदू!" साहब ने सोचा।

"तूझे जाना होगा।"

पेत्का मुस्कराए जा रहा था। नादेझ्दा आंसू बहाती आई और उसने मालिक की बात की पुष्टि की:

"बेटा, तुझे जाना पड़ेगा।"

"कहां?" पेत्का हैरान हो गया।

नगर को वह भूल ही चुका था और दूसरी जगह, जहां वह सदा जाना चाहता था, उसे मिल चुकी थी।

"मालिक, ओसिप अब्रामविच के पास।"

पेत्का अभी भी नहीं समझ रहा था, हालांकि बात बिल्कुल साफ़ थी। उसका मुंह सूख गया, जीभ मुश्किल से चल रही थी, जैसे-तैसे उसने पूछा:

"पर कल मछली कौन पकड़ेगा? यह देखो – बंसी ..."

"क्या किया जाए!.. ओसिप अब्रामविच का हुक्म है। कहते हैं प्रकोपी बीमार पड़ गया, अस्पताल में दाख़िल किया है उसे। काम करनेवाला कोई नहीं। तू रो मत, शायद फिर छुट्टी दे दे – आदमी तो भला है ओसिप अब्रामविच।"

पर पेत्का रोने की सोच ही नहीं रहा था, वह कुछ समझ नहीं पा रहा था। फिर धीरे-धीरे पेत्का के दिमाग़ में सारी बात साफ़ होने लगी। और तब उसने मां को आश्चर्यचकित कर दिया, मालिकों को परेशानी में डाल दिया: वह दुबले-पतले शहरी बच्चों की तरह नहीं रोया, वह तो दहाड़ें मारने लगा,

ज़मीन पर लोटने लगा। उसके पतले से हाथ की मुट्ठी भिंच गई और वह मां के हाथों पर, ज़मीन पर, जो कुछ भी सामने पड़ता, उसी पर मुट्ठियां मारने लगा, कंकड़ों-पत्थरों से उसके हाथों में दर्द हो रहा था, पर वह जैसे उसे और भी तेज़ करना चाहता था।

आख़िर पेत्का शांत हो गया। मालकिन दर्पण के सामने खड़ी बालों में सफ़ेद गुलाब लगा रही थीं और साहब कह रहे थे :

"देखा तुमने, चुप हो गया – बच्चों का दुख यही दो पल का होता है।"

"पर मुझे बड़ा तरस आता है इस बेचारे पर।"

"हां सच ही बड़े बुरे हालात में रहते हैं ये लोग, पर ऐसे भी लोग हैं, जिनकी ज़िंदगी इनसे भी बदतर है। तुम तैयार हो?"

वे दिप्मान बाग़ को चल दिए, जहां उस शाम को नाच होनेवाले थे और फ़ौजी बैंड बजने लगा था।

दूसरे दिन सुबह सात बजे की गाड़ी से पेत्का मास्को जा रहा था। फिर से उसकी आंखों के सामने हरे-भरे खेत गुज़र रहे थे, जो रात में पड़ी ओस से रुपहले लग रहे थे। पर अब ये खेत-मैदान पहले की दिशा में नहीं, बल्कि उससे विपरीत दिशा में बढ़ रहे थे। पेत्का का दुबला-पतला शरीर स्कूल छात्र की पुरानी जैकट में लिपटा हुआ था, उसके गरेबान में से सफ़ेद सूती कालर दिख रहा था। पेत्का हिल-डुल नहीं रहा था और खिड़की में भी प्रायः नहीं देख रहा था। वह चुपचाप बैठा हुआ था – पतले-पतले हाथ घुटनों पर रखे हुए थे। आंखें उनींदी और उदासीन थीं, आंखों के पास और नाक तले बारीक-बारीक झुर्रियां पड़ी हुई थीं। खिड़की के पास से खंभे और प्लेटफ़ार्म की कड़ियां गुज़रीं और फिर गाड़ी रुक गई।

उतावले मुसाफ़िरों के बीच धक्का-मुक्की करते वे गड़गड़ाती सड़क पर निकले और विराट भूखे शहर ने अनमने भाव से अपने नन्हे शिकार को हड़प लिया।

"मेरी बंसी छिपा देना!" मां जब उसे नाई की दुकान तक ले आई, तो पेत्का बोला।

"छिपा दूंगी, बेटा, छिपा दूंगी। देखो, फिर आ ही जाए तू।"

फिर से गंदी और उमस भरी नाई की दुकान में कर्कश चीख गूंजती : "छोकरे, पानी!" और ग्राहक देखता कि शीशे की ओर मैला सा हाथ बढ़ता और साथ ही उसे धमकी भरी बुदबुदाहट सुनाई देती : "ज़रा ठहर, बच्चू!" इसका मतलब यह होता कि उनींदे छोकरे ने पानी बिखेर दिया या हुक्म ठीक से नहीं समझा। रात को जहां निकोल्का और पेत्का पास-पास सोते थे, एक पतली सी, मंद-मंद, उद्विग्न आवाज़ दाचा के बारे में बताती, ऐसी-ऐसी बातें सुनाती, जो कभी नहीं होतीं, जैसा किसी ने कभी देखा ही नहीं और न सुना ही है। फिर चुप्पी छा जाती और सन्नाटे में बाल छातियों से निकलती उखड़ी-उखड़ी सांसें सुनाई देतीं और एक दूसरी आवाज़, जो बच्चे की होते हुए भी रूखी और तीखी थी, कहती :

"शैतान कहीं के! सत्यानास हो इनका!"

"कौन शैतान?"

"कोई नहीं ... सभी।"

माल से लदी घोड़ागाड़ी पास से गुज़रती और उसकी घड़घड़ाहट में लड़कों की आवाज़ें खो जातीं।

अलेक्सान्द्र कुप्रिन

मदारी
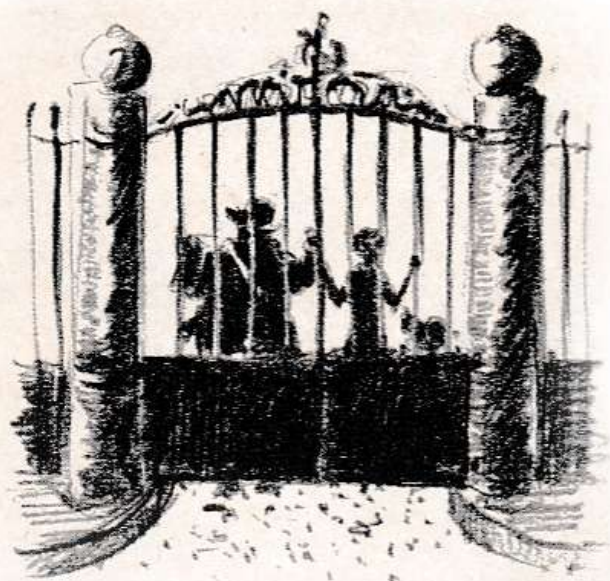
'मदारी' १९वीं सदी के अंत और २०वीं सदी के आरम्भ के एक सर्वाधिक प्रतिभावान लेखक अलेक्सान्द्र इवानोविच कुप्रिन की सबसे प्रसिद्ध बाल-कथा है।

कुप्रिन का जन्म १८७० में हुआ। उनके पिता एक छोटे नगर के दफ़्तर में काम करते थे। कुप्रिन ने अपनी जवानी में बहुत पापड़ बेले। वह फ़ौज में रहे, मुक्केबाज़ थे, एक जागीर का काम संभाला, थियेटर में अभिनय किया, एक कारखाने के कार्यालय में काम किया, उन्हें सरकस और हवाबाज़ी का शौक़ था, दंत-चिकित्सा की शिक्षा भी उन्होंने पाई। अपने समसामयिक रूसी जीवन का जो विविध, समृद्ध ज्ञान उन्होंने पाया, उसे अपनी कहानियों और उपन्यासों में उतारा।

प्रकृति और पशु-पक्षियों के बारे में तथा थियेटर और सरकस की घटनाओं पर कुप्रिन ने बच्चों के लिए कई कहानियां लिखीं। 'मैनाएं', 'ज़ेम्बो हाथी', 'चिड़ियाघर' और दूसरी कहानियां आज तक लोकप्रिय हैं। 'मदारी' कहानी उन्होंने १९०४ में लिखी। यह एक वास्तविक घटना पर आधारित है, जो कुप्रिन ने क्रीमिया में अपनी आंखों देखी थी।

महान अक्तूबर क्रांति के बाद कुप्रिन प्रवास में रहे। १९३७ में वह स्वदेश लौट आए। तब उन्होंने संवाददाताओं से कहा था: "मेरा बहुत मन है कि मैं सोवियत युवाजन के लिए, मनमोहक सोवियत बच्चों के लिए लिखूं"। किंतु, दुर्भाग्यवश, उनकी इन इच्छाओं को पूरा होना न बदा था: एक वर्ष बाद कुप्रिन का देहांत हो गया।

संकरी पहाड़ी पगडंडियों पर दाचों की एक बस्ती से दूसरी तक एक मदारी क्रीमिया के दक्षिणी तट के किनारे-किनारे बढ़ता जा रहा था। आगे-आगे सफ़ेद कुत्ता दौड़ रहा था – अपनी लंबी, गुलाबी जीभ एक ओर को लटकाए। कुत्ता पूडल नस्ल का था और उसके बाल शेर की तरह काटे हुए थे। चौराहों पर वह रुक जाता और दुम हिलाता हुआ प्रश्न भरी नज़र पीछे डालता। न जाने उसे कौन से लक्षण पता थे, पर वह सदा ठीक रास्ता जान लेता और मज़े में अपने झबरीले कान हिलाता तेज़ी से आगे दौड़ जाता। कुत्ते के पीछे बारह साल का लड़का सेर्गेइ चल रहा था। बाएं बगल में वह दरी दबाए हुए था, जिस पर वह कलाबाज़ी दिखाता था, और दाएं हाथ में छोटा सा, गंदा पिंजड़ा उठाए था। पिंजड़े में था गोल्डफ़िंच पक्षी, जो एक डिब्बे में से तमाशबीनों के भाग्य की रंग-बिरंगी पर्चियां निकालता था। सबसे पीछे मदारी मर्तीन लदीश्किन पैर घिसटता चल रहा था। अपनी झुकी हुई पीठ पर वह पिटारी वाला बाजा (स्ट्रीट आर्गन) उठाए था।

बाजा बड़ा पुराना था, उसकी आवाज़ फटी-फटी थी। दसियों बार उसकी मरम्मत हो चुकी थी। बाजा दो धुनें बजाता था: लाउनेर का जर्मन वाल्स और 'चीन की यात्रा' ओपेरा की एक धुन। दोनों धुनें तीस-चालीस साल पहले खूब चलती थीं, पर अब सब लोग उन्हें भूल-भाल चुके थे। इसके अलावा पिटारी में दो बहुत बड़ी खामियां थीं। एक तो उसमें उच्च स्वर का जो पाइप था, उसका गला बैठ गया था, वह बजता ही न था, इसलिए जब उसकी बारी आती, तो सारी धुन लड़खड़ाने लगती, हिचकियों के साथ बजती। एक नीचे स्वर वाला पाइप भी दग़ाबाज़ था: उसका कपाट फ़ौरन बंद नहीं होता था। एक बार वह बजने लगता, तो बस वही नीची तान खींचता रहता, और दूसरे सारे स्वर उसमें दब-दब जाते, जब तक कि कपाट अपनी मर्ज़ी से बंद न हो जाता। मदारी बाबा को ख़ुद भी अपनी पिटारी की इन खामियों का अहसास था और वह मज़ाक़ में कहा करता था:

"क्या करें, भैया?.. बड़ा पुराना बाजा है... बहुत कुछ सह चुका है... बजाओ तो साहब लोग बुरा मानते हैं, कहते हैं: 'थू, कैसा भोंडा है!' पर धुनें तो बड़ी अच्छी थीं, ख़ूब बजती थीं, हां, आजकल के साहबों को हमारे गाने पसंद नहीं। वो तो अब 'गेशा' सुनना चाहते हैं, या 'दो सिरा उकाब', 'चिड़ीमार' का वाल्स... ऊपर से पिटारी के ये पाइप भी दगा देते हैं... मिस्त्री के पास ले गया था, पर वह हाथ तक नहीं लगाना चाहता। कहता है नए पाइप लगाने चाहिए या कहता है, सबसे अच्छा तो यह है कि इसे किसी अजायबघर में दे दे, वहां इसे पुरानी चीज़ों की नुमाइश में रख देंगे। ओहो! ख़ैर, भैया, अभी तक यह पिटारी हमारा पेट भरती आई है, भगवान करेगा, आगे भी भरती रहेगी।"

मदारी के मज़ाक़ में उदासी का पुट मिला होता। उसे अपना बाजा इतना प्यारा था, जितना कोई जीव ही हो सकता है, ऐसा कोई प्राणी, जिससे बहुत ही निकट का रिश्ता हो। अपनी कठोर घुमक्कड़ ज़िंदगी के बरसों के साथ में वह पिटारी का इतना आदी हो गया था कि उसे जानदार ही समझने लगा था। कभी-कभार किसी गंदी सराय में रात को बाबा के सिरहाने फ़र्श पर रखे बाजे से सहसा हल्की सी, कंपकंपाती, दुखद आवाज़ निकलती, जैसे बूढ़े की आह।

तब मदारी हौले से उसकी नक्काशीदार बगल सहलाता और प्यार से बुदबादाता :

"क्यों भैया, दुखी हो रहा है? ... सहे जा, भैया ..."

बाजे जितना ही, या शायद उससे थोड़ा ज़्यादा ही प्यार मदारी को अपने छोटे साथियों से था: आर्तो कुत्ते और नन्हे सेर्गेइ से। लड़के को उसने पांच साल पहले एक पियक्कड़, रंडवे मोची से "किराये" पर लिया था, उसे दो रूबल महीने में देने का वायदा किया था। पर मोची थोड़े दिनों में मर गया और सेर्गेइ सदा के लिए मन से भी और दाने-पानी के हित से भी मदारी बाबा के साथ बंध गया।

(२)

पगडंडी तट की ऊंची चट्टान पर सौ साला ज़ैतूनों के बीच बल खाती बढ़ रही थी। कभी-कभी पेड़ों के बीच से समुद्र की झलक आती और तब लगता कि वह दूर जाने के साथ-साथ नीली सशक्त दीवार सा ऊपर भी उठ रहा है, रुपहली-हरी पत्तियों के बीच से उसका रंग और भी नीला, और भी गाढ़ा लगता। घास और झाड़ियों में, अंगूरों की बेलों और पेड़ों में, चारों ओर रइयों की झंकार गूंज रही थी, उनकी एकसुरी, निरंतर गूंज से मानो हवा कंपायमान हो रही थी। ख़ासी गर्मी पड़ रही थी, एक पत्ती तक न हिल रही थी और तपी ज़मीन से तलवे जल रहे थे।

सेर्गेइ सदा की भांति बाबा के आगे-आगे चल रहा था। वह रुक गया और बाबा के पास आने का इंतज़ार करने लगा।

"क्या बात है, सेर्गेइ?" मदारी ने पूछा।

"बड़ी गर्मी है, बाबा ... सही नहीं जाती! नहा न लें ..."

बूढ़े ने चलते-चलते आदतन कंधा हिलाकर पीठ पर पिटारी ठीक की और बाज़ू से मुंह का पसीना पोंछा। नीचे फैली समुद्र की शीतल नीलिमा को ललचाई नज़रों से देखता हुआ बोला :

"वो तो बड़ा अच्छा रहे! पर नहाने के बाद गर्मी और भी तंग करेगी।

मुझे एक डाकदर ने बताया था कि यह जो खारा पानी है न यह आदमी को गर्मी में कमज़ोर करता है ... चुस्ती तो क्या आएगी, बदन और भी ढीला पड़ जाएगा ... "

"शायद, उसने झूठमूठ कहा हो," सेर्गेइ का मन बाबा की बात पर विश्वास नहीं करना चाहता था।

"वाह, झूठ काहे को बोलेगा? भरोसेमंद आदमी है, पीता नहीं ... सेवा-स्तोपल में अपना घर है उसका। और फिर यहां तो समुद्र तक उतरने का रास्ता भी नहीं है। थोड़ा सब्र कर, अभी मिस्खोर तक पहुंच जाएं, बस वहीं अपना पापी शरीर धो लेंगे। खाने से पहले तो नहाने में मज़ा भी है ... फिर थोड़ा सो भी सकते हैं ... बड़ा अच्छा रहेगा ... "

आर्तो ने पीछे बातें सुनीं, तो मुड़कर लोगों के पास दौड़ आया। उसकी नीली-नीली, भली आंखें गर्मी से सिकुड़ी हुई थीं। वह गद्गद सा बूढ़े और लड़के को देख रहा था, बाहर निकली हुई लंबी जीभ तेज़ सांस से कांप रही थी।

"क्यों, भई आर्तो? गर्मी है?" बाबा ने पूछा।

कुत्ते ने जीभ पाइप की तरह मोड़कर ज़ोर से जम्हाई ली, सारा बदन झकझोरा और बारीक सी आवाज़ में किकियाया।

"हां, भाई मेरे, कुछ नहीं किया जा सकता। कहा है न: 'अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा' ... अब तेरे तो मान लिया वो माथा नहीं है, थूथनी ही है ... अच्छा, चल आगे, क्यों पैरों में आता है ... मुझे तो सेर्गेइ यह गर्मी अच्छी लगती है। बस यह पिटारी ही तंग करती है, नहीं तो भैया काम न होता तो बस कहीं घास पर, छाया में लेट रहता। तोंद ऊपर की ओर बस पड़े रहे। इन बूढ़ी हड्डियों के लिए तो इस धूप से बढ़कर और कुछ नहीं है।"

पगडंडी नीचे जाकर चौड़े रास्ते से मिल गई। रास्ता पत्थर सा सख्त था और इतना सफ़ेद कि आंखें चुंधियाती थीं। यहां से पुराना काउंट पार्क शुरू होता था। उसकी घनी हरियाली में सुंदर-सुंदर दाचे बने हुए थे, फूलों की क्यारियां लगी हुई थीं, फ़व्वारे थे। बूढ़ा मदारी इस सारे इलाक़े को अच्छी तरह जानता था। हर साल अंगूर की बहार में वह एक के बाद एक इन सब

जगहों का चक्कर लगाता था। इस मौसम में सारा क्रीमिया सजे-धजे अमीर लोगों से भर जाता था। दक्षिण की प्रकृति का वैभव बूढ़े के मन को नहीं छूता था, पर सेर्गेइ के लिए, जो पहली बार इधर आया था, यहां बहुत कुछ आश्चर्य-जनक था। मैग्नोलिया के पेड़, जिनकी सख़्त पत्तियां यों चमकती थीं, मानो उन पर पालिश की गई हो और सफ़ेद फूल रकाबियों जितने बड़े थे; अंगूर की बेलों से घिरे लता-मण्डप और अंगूरों के लटकते गुच्छे; उजली छाल और विशाल छत्रों वाले सदियों पुराने चनार वृक्ष; तम्बाकू-बागान, जल धाराएं और झरने तथा चारों ओर – क्यारियों, बाड़ों और दाचों की दीवारों पर चटकीले, ख़ुशबूदार गुलाब – यह सारी फलती-फूलती भव्य प्रकृति बालक को विमुग्ध कर रही थी। वह पल-पल में बाबा का बाज़ू खींचता और अपनी ख़ुशी व्यक्त करता। एक बाग के बीचोंबीच बड़ा कुंड था, बाग के जंगले से चिपटकर सेर्गेइ चिल्लाया:

"बाबा, बाबा, देखो तो, फ़व्वारे में सुनहरी मछलियां हैं! सच, भगवान कसम, सुनहरी मछलियां हैं! बाबा! वो देखो, आड़ू! कितने सारे आड़ू हैं! एक ही पेड़ पर!"

"चल-चल, बुधुए! क्या मुंह बाए खड़ा है!" बाबा ने मज़ाक़ से उसे आगे धकेला। "ज़रा सब्र कर। कुछ दिनों में हम नवारसीस्क तक पहुंच जाएंगे और वहां से फिर दक्खिन को हो लेंगे। वहां हैं देखने लायक़ जगहें। एक से एक बढ़कर शहर हैं, वह लो सोची, फिर आए आदलर, तुआप्से, और फिर भाई मेरे सुखूमी, बतूमी... तेरी तो बस आंखें फटी की फटी रह जाएंगी। वो ताड़ के पेड़ को ही लो। देखके दांतों तले उंगली दबा लेगा! तना उसका ऐसा रोयेंदार है जैसे नमदा और पत्ती इत्ती बड़ी कि हम दोनों उसके तले समा जाएं!"

"सच?" सेर्गेइ हैरान और ख़ुश हुआ।

"बस सब्र रख, अपनी आंखों देख लेगा। और भी कोई कम चीज़ें हैं क्या वहां? माल्टा या वो नींबू ही लो... देखा होगा तूने दुकान में?"

"हूं?"

"बस ऐसे ही हवा में लटकता रहता है। पेड़ पर मज़े से यों उगता है, जैसे हमारे यहां सेब या नाशपाती... और वहां पर लोग भी तरह-तरह के हैं:

तुर्क, पारसी, चेर्केस ... सब लंबे-लंबे चोग़े पहने और कमर पर खंजर बांधे घूमते हैं। बड़े जांबाज़ लोग हैं! और वहां हब्शी भी होते हैं। मैंने बतूमी में कई बार देखे हैं।"

"हब्शी? हां, मुझे पता है। उनके सिर पर सींग होते हैं," सेर्गेइ ने पूरे विश्वास के साथ कहा।

"सींग-वींग तो ख़ैर उनके नहीं होते, यह सब झूठ है। पर काले होते हैं, बूटों जैसे और चमकते भी हैं। मोटे-मोटे होंठ उनके लाल सुर्ख़ होते हैं, आंखें सफ़ेद-सफ़ेद और बाल ऐसे घुंघराले जैसे काली भेड़ के।"

"डर लगता होगा न इन हब्शियों से?"

"क्या बताऊं? पहले-पहल देखके तो आदमी सहम जाता है ... पर फिर जब देखो कि दूसरे लोग नहीं डरते, तो अपनी भी हिम्मत बढ़ जाती है ... हां भैया, क्या कुछ नहीं है वहां। वहां जाएंगे, ख़ुद देख लेगा। बस एक ही बुरी बात है – वहां ताप फैलता है। चारों ओर दलदल हैं न, इसीलिए। वहां के लोगों को तो कुछ नहीं होता, पर बाहर से आए को यह ताप तंग करता है। अच्छा, ख़ैर बहुत बातें बना लीं। चल, ज़रा घुस तो इस फाटक में। इस दाचा में बड़े अच्छे साहब रहते हैं ... तू मुझ से पूछ सेर्गेइ: मैं सब जानता हूं!"

पर आज वे न जाने किसका मुंह देखकर निकले थे। कई जगहों से उन्हें दूर से देखकर ही भगा दिया जाता, दूसरी जगहों पर बाजे की फटी-फटी आवाज़ सुनते ही साहब लोग छज्जे पर बेसब्री से हाथ झटकने लगते और कहीं नौकर कहते कि साहब लोग अभी आए नहीं। हां दो दाचों से उन्हें तमाशे के लिए कुछ पैसे मिले, पर बहुत थोड़े। वैसे तो बाबा थोड़े पैसे लेने में भी हिचकिचाता नहीं था। दाचा से बाहर निकलते हुए वह ख़ुशी से जेब में तांबे के सिक्के झनझना रहा था और कह रहा था:

"दो और पांच हो गए पूरे सात ... क्यों, भई सेर्गेइ, ये भी पैसे हैं। सात बार सात और हो गया आधा रूबल। बस हम तीनों का पेट भर जाएगा और रैनबसेरा भी हो जाएगा और बूढ़ा लदीश्किन भी दो बूंदों से गला तर कर लेगा, अपनी बूढ़ी हड्डियां सेंक लेगा ... ओह, नहीं समझते ये साहब लोग! बीस कोपेक देते हुए उन्हें अफ़सोस होता है और पांच देते शर्म लगती है। बस,

इसीलिए चलता करते हैं। अरे भई, तुम तीन कोपेक ही दे दो। मैं कोई बुरा थोड़े ही मानता हूं ... बुरा काहे का मानना ?"

बूढ़ा मदारी सीधे-सादे स्वभाव का था और जब उसे लोग भगाते, तब भी वह कुछ नहीं कहता था। पर आज एक मेम साहब की वजह से वह आपे में न रहा था। गदराए बदन की, खूबसूरत सी और देखने में भली लगनेवाली औरत थी वह। बड़ा शानदार दाचा था उसका, फूलों के बाग से घिरा। बड़े ध्यान से उसने बाजा सुना, और भी ध्यान से सेर्गेइ की कलाबाज़ी और आर्तो के तमाशे देखे। फिर बड़ी देर तक कुरेद-कुरेदकर लड़के से पूछती रही कि वह कितने साल का है, उसका नाम क्या है, कलाबाज़ी उसने कहां सीखी, बूढ़ा उसका क्या लगता है, उसके मां-बाप क्या करते थे वगैरह-वगैरह; फिर उसने रुकने को कहा और अंदर चली गई।

कोई दस या शायद पंद्रह मिनट तक ही वह बाहर नहीं आई। जितना अधिक समय बीत रहा था, उतनी ही अधिक मदारी और लड़के के मन में अस्पष्ट सी आशाएं बढ़ती जा रही थीं। बाबा ने मुंह पर हाथ रखकर लड़के के कान में कहा :

"ले, सेर्गेइ, आज तो क़िस्मत खुल गई, तू बस मेरी बात सुना कर : मुझे सब पता है। शायद कोई कपड़ा-लत्ता दे दे या पुराना जूता। पक्की बात है !"

आखिर मेम साहब छज्जे पर आई, ऊपर से सेर्गेइ की आगे बढ़ी टोपी में छोटी सा सफ़ेद सिक्का फेंका और तुरंत ही अंदर चली गई। सिक्का पुराना था, दोनों ओर से घिसा हुआ। यही नहीं, दस कोपेक के इस सिक्के में छेद भी था। बाबा बड़ी देर तक हैरान-परेशान सा सिक्के को देखता रहा। वह बाहर रास्ते पर निकल आया था, दाचा काफ़ी पीछे छूट गया था, पर सिक्के को अभी तक हथेली पर रखे हुए था, मानो तोल रहा हो। सहसा वह रुक गया और बोला :

"हां-आं ! .. क्या कहने हैं ! पूछो मत ! हम तीन बेवक़ूफ़ खूब ज़ोर लगा रहे थे। तमाशा दिखा रहे थे। इससे तो अच्छा बटन ही दे देती, ज़रूरत पड़ने पर कहीं सी तो लेते। इस कूड़े का मैं क्या करूंगा ? मेम सा'ब सोचती होंगी कि बूढ़ा अंधेरे में कहीं चला देगा इसे। नहीं, मेम सा'ब, ग़लत सोचती हैं आप !

बूढ़ा लदीश्किन ऐसी नीचता नहीं करता! जी हां! यह लो, संभालो अपना क़ीमती सिक्का! लो!"

और उसने क्रोध और गर्व के साथ सिक्का फेंक दिया। सिक्का हौले से खनका और रास्ते की सफ़ेद धूल में समा गया।

इस तरह बूढ़ा मदारी लड़के और कुत्ते के साथ दाचों की इस पूरी बस्ती का चक्कर लगा चुके थे और अब वे नीचे समुद्र की ओर जाने की सोच ही रहे थे। बाईं ओर एक आखिरी दाचा बच गया था। ऊंची सफ़ेद दीवार से घिरा वह दिखाई न देता था। दीवार के पीछे घनी कतार में सरू के पतले तने वाले, ऊंचे, धूल भरे पेड़ उग रहे थे, जो दूर से सुरमई तकलों से लगते थे। लोहे के चौड़े फाटक पर बड़ा शानदार काम किया हुआ था और वह लेस से सजा लगता था। इस फाटक में से ही चटकीले हरे, रेशमी लॉन का एक कोना और फूलों की क्यारी दिखती थी और दूर पीछे अंगूर की बेलों से ढंकी वीथिका। लॉन के बीचोंबीच खड़ा माली लंबे पाइप से गुलाबों को पानी दे रहा था। उसने पाइप के छेद पर उंगली रखी हुई थी और इससे अनगिनत छींटों में धूप इंद्र-धनुषी रंगों में चमक रही थी।

बूढ़ा मदारी फाटक से आगे निकलने ही वाला था, पर उसने अंदर झांककर देखा और ठिठक गया।

"ज़रा रुकियो तो सेर्गेइ," उसने लड़के को आवाज़ दी। "लगता है अंदर लोग हैं। क्या तमाशा है? कितने बरस से यहां आ रहा हूं, कभी कोई नहीं दिखा। चल तो सेर्गेइ!"

"'दोस्ती दाचा'। अंदर आना मना है'," सेर्गेइ ने फाटक के एक खंभे पर खुदे शब्द पढ़े।

"दोस्ती?" अनपढ़ बाबा ने पूछा। "आहा! दोस्ती! यही तो असली बात है! सारा दिन हमारा बेकार गया है, पर यहां से हम खाली हाथ नहीं जाएंगे। मुझे इसकी गंध आ रही है, यही समझ ले, जैसे शिकारी कुत्ते को दूर से पता चल जाता है। चल रे आर्तो, कुत्ते की औलाद! सेर्गेइ, बढ़ जा हिम्मत से। तू मुझसे पूछा कर: मैं सब जानता हूं।"

बाग की पगडंडियों पर मोटी-मोटी रोड़ी बिछी हुई थी और दोनों ओर बड़ी-बड़ी गुलाबी सीपियां लगी हुई थीं। क्यारियों में रंग-बिरंगी घासों का मानो कालीन बिछा हुआ था और उनके ऊपर अजीबोग़रीब से चटकीले फूल उठे हुए थे, जिनसे हवा में भीनी-भीनी सुगंध फैल रही थी। जलाशयों में पारदर्शी जल की कलकल हो रही थी। पेड़ों के बीच-बीच ऊंचाई पर लगे गमलों से लताएं लटक रही थीं, और घर के सामने संगमरमर के दो ऊंचे खंभों पर शीशे के गोले लगे हुए थे, जिनमें मदारी और उसके साथियों ने अपनी उल्टी, टेढ़ी-मेढ़ी छवि देखी।

बरामदे के सामने बड़ा सा पक्का चौक था। सेर्गेइ ने वहां अपनी दरी बिछा दी, बाबा ने पिटारी को एक डंडे पर टिकाया और हैंडल घुमाने को तैयार हो गया, पर तभी एक विचित्र, अप्रत्याशित दृश्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ।

अंदर के कमरों से आठ-दस साल का एक लड़का गला फाड़कर चीखता हुआ बम की तरह बरामदे पर आ धमका। वह मल्लाहों की हल्की वर्दी जैसे कपड़े पहने था – बांहें नंगी थीं और घुटने भी। लंबे-लंबे, घुंघराले बाल कंधों पर बिखरे पड़े थे। लड़के के पीछे-पीछे और छह लोग दौड़े आए: एप्रन बांधे दो औरतें; लंबा कोट पहने बूढ़ा मोटा चोबदार, जिसकी दाढ़ी-मूंछें साफ़ थीं पर कनपटियों पर ख़ूब लंबे सफ़ेद गलमुच्छे थे; चौखानेदार नीला फ़्राक पहने, लाल बालों और लाल नाक वाली दुबली-पतली लड़की; जवान, देखने में रुग्ण लगनेवाली, पर बहुत सुंदर महिला, जो लेसदार आसमानी गाउन पहने थी और सबसे आख़िर में एक मोटा, गंजा साहब – सुनहरा चश्मा चढ़ाए। वे सब बहुत व्यथित थे, हाथ झटक रहे थे, ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे और एक दूसरे को धकेल रहे थे। यह अनुमान लगाना कठिन न था कि उनकी सारी परेशानी का कारण वह लड़का है, जो यों अचानक बरामदे पर आ धमका था।

उधर वह लड़का लगातार चीखता हुआ दौड़ते-दौड़ते पेट के बल जा गिरा, तुरंत पीठ के बल उलट गया और बड़े ज़ोर-ज़ोर से चारों ओर हाथ-पैर फेंकने

लगा। बड़े उसके इर्द-गिर्द दौड़-धूप करने लगे। बूढ़ा चोबदार मिन्नतें करता हुआ अपनी कलफ़ लगी कमीज़ पर दोनों हाथ जोड़ रहा था, गलमुच्छे हिला रहा था और रुआंसी आवाज़ में कह रहा था :

"छोटे मालिक!... ऐसा न कीजिए... मां को दुखी न कीजिए... मेहरबानी करके पी लीजिए। मिक्सचर तो मीठा है, एकदम शर्बत सा। उठ जाइए न..."

एप्रन बांधी औरतें हाथ झटक रही थीं, सहमी-सहमी और साथ ही जी हुज़ूरी करती हुई अपनी पतली आवाज़ों में जल्दी-जल्दी बोल रही थीं। लाल नाकवाली मिस बड़े दुखद अंदाज़ में ज़ोर-ज़ोर से कुछ चिल्ला रही थी, पर कुछ समझ में न आता था, शायद वह किसी विदेशी भाषा में बोल रही थी। सुनहरा चश्मा चढ़ाए साहब नीची, भारी आवाज़ में लड़के को मना रहा था, साथ ही वह अपना सिर कभी एक ओर तो कभी दूसरी ओर झुकाता और हाथ फैला देता। सुंदर महिला आहें भर रही थी, लेस का महीन रूमाल आंखों से लगा रही थी :

"ओह, त्रिल्ली, ओह! हे भगवान! मेरे राजा, मैं विनती करती हूं। सुन लो मेरी बात, मैं हाथ जोड़ती हूं। पी लो न दवाई : देख लेना, तुरंत आराम मिलेगा : पेट भी ठीक हो जाएगा, सिर भी। पी लो न, मेरी खातिर पी लो, मेरे लाल! त्रिल्ली, बोलो, मां तुम्हारे सामने घुटनों के बल खड़ी हो जाए? यह देखो, मैं घुटनों पर खड़ी हूं। चलो, सोने का सिक्का लोगे? दो सिक्के? पांच सिक्के? त्रिल्ली! गधा लोगे? जीता-जागता गधा! घोड़ा?.. ओह, डाक्टर, कुछ कहिए न इसे!"

"सुनिए, त्रिल्ली, मर्द बनिए," चश्मा चढ़ाए मोटा साहब भारी आवाज़ में बोला।

"हाय-हाय-हाय!" लड़का चीखता जा रहा था, बरामदे में छटपटा रहा था और बेतहाशा टांगें फेंक रहा था।

अत्यधिक उत्तेजित होने के बावजूद वह अपने इर्द-गिर्द जमा लोगों के पेट में ही जूतों की एड़ियां दे मारने की कोशिश करता था और वे भी बड़ी सफ़ाई से बच निकलते थे।

सेर्गेइ आश्चर्यचकित सा बड़ी देर तक कौतूहल के साथ यह सारा दृश्य देखता रहा। फिर उसने बाबा के बगल में हौले से कोहनी मारी और फुसफुसाकर पूछा :

"बाबा, क्या हुआ इसे? इसकी पिटाई करेंगे क्या?"

"हुं, पिटाई!.. अरे, यह तो खुद चाहे जिसकी पिटाई कर दे। बिगड़ा छोकरा है। बीमार हो गया होगा।"

"पागल है?" सेर्गेइ ने अनुमान लगाया।

"मुझे क्या पता? चुप रह!"

"हाय-हाय-हाय! गधे! बेवक़ूफ़!" लड़का और भी ज़ोर-ज़ोर से गला फाड़ रहा था।

"सेर्गेइ, शुरू कर! मुझे पता है!" अचानक बूढ़े मदारी ने कहा और दृढ़ निश्चय के साथ बाजे का हैंडल घुमाने लगा।

बड़ी पुरानी धुन की फटी-फटी, बेसुरी आवाज़ बाग़ में गूंज उठी। बरामदे में सब ठिठक गए, यहां तक कि लड़का भी कुछ क्षण को चुप हो गया।

"ओहो! हे भगवान! ये लोग बेचारे त्रिल्ली को और भी परेशान कर देंगे।" आसमानी गाउन पहने महिला बोली। "भगाओ इन्हें जल्दी से! यह गंदा कुत्ता भी है इनके साथ। कुत्तों को हमेशा ऐसी भयानक बीमारियां होती हैं। इवान, क्या आप बुत बने खड़े हैं?"

उसने घिन के साथ मदारी की ओर रूमाल हिलाया, चेहरे से वह एकदम थकी-मांदी लगती थी। लाल नाक वाली मरियल मिस ने डरावनी आंखें बनाईं, कोई फुफकारने लगा... लंबा कोट पहने आदमी जल्दी से बरामदे से नीचे उतर आया। उसके चेहरे पर डर का भाव था, दोनों ओर हाथ फैलाए वह दौड़ा-दौड़ा मदारी के पास आया।

"यह क्या बदतमीज़ी है?" वह दबी-दबी, सहमी हुई, पर साथ ही रोबदार और गुस्से भरी आवाज़ में बोला। "किसने तुम्हें आने दिया? भागो यहां से!"

पिटारी से चीं सी आवाज़ निकली और वह चुप हो गई।

"जी हजूर, वो बात यह है..." बाबा ने आराम से उसे समझाना चाहा।

"कोई बात-वात नहीं। दफ़ा हो जाओ!" लंबे कोट वाला सीटी की तरह चीखा।

उसका मोटा चेहरा पलक झपकते ही लाल सुर्ख़ हो गया और आंखें तो मानो बाहर ही निकल आईं और घूमने लगीं। वह इतना डरावना लगता था कि बाबा अनचाहे ही दो क़दम पीछे हट गया।

"चल सेर्गेइ, चलें," पिटारी को जल्दी-जल्दी पीठ पर रखते हुए वह बोला।

पर वे दस क़दम दूर भी न गए थे कि बरामदे से फिर कर्णभेदी चीखें आने लगीं।

"हाय-हाय-हाय! देखूंगा! हाय! बुलाओ! मैं देखूंगा!"

"ओह, त्रिल्ली!.. हे भगवान! त्रिल्ली! अरे, बुलाओ न उन्हें," महिला आहें भरने लगी। "उफ़्फ़, कैसे मूर्ख हो तुम सब! इवान, सुना आपने क्या कहा मैंने? बुलाओ इन भिखारियों को तुरंत!"

"सुनो बे! ऐ! मदारी! वापस आओ!" बरामदे से एक साथ कई आवाज़ें आईं।

मोटा चोबदार रबड़ की गेंद की तरह उछलता हुआ मदारी के पीछे दौड़ा। उसके गलमुच्छे दोनों ओर फैल रहे थे।

"ऐ-ऐ! मदारी! सुनो! चलो वापस!" वह दोनों हाथ हिलाता चिल्ला रहा था, उसकी सांस फूल रही थी। "ऐ, बड़े मियां," आखिर उसने बाबा की बांह पकड़ ली। "चलो वापस! साहब लोग तमाशा देखेंगे! चलो जल्दी से!"

"हुं, क्या बला है!" बाबा ने सिर हिलाते हुए उसांस छोड़ी, और बरामदे के पास चला गया। पिटारी उतारकर उसे अपने सामने डंडे पर टिकाया जिस जगह अभी-अभी धुन रुकी थी, वहीं से आगे बजाने लगा।

बरामदे में भगदड़ रुक गई। लड़के के साथ महिला और सुनहरे चश्मे वाला साहब रेलिंग के पास आ गए, बाक़ी सब पीछे खड़े रहे। बाग़ में से माली आकर बाबा से थोड़ी दूर खड़ा हो गया। न जाने कहां से प्रकट हो गया जमादार माली के पीछे जम गया। वह भीमकाय दढ़ियल आदमी था – तंग

माथा और चेचकरू चेहरा। वह नई गुलाबी कमीज़ पहने था, जिस पर काले-काले गोलों की तिरछी कतारें थीं।

फटी-फटी हिचकियां भरती धुन की लय में सेर्गेइ ने दरी बिछाई, जल्दी से अपनी किरमिच की पतलून उतारी (वह पुराने बोरे की बनाई गई थी और उसके पीछे के सबसे चौड़े हिस्से पर कम्पनी का चौखाना ठप्पा लगा हुआ था), उसने अपनी पुरानी जैकट उतारी और बस अंतरीय कपड़े पहने रहा। उन पर कई पैबंद लगे हुए थे, पर तो भी वे उसके दुबले-पतले, किंतु सशक्त और लचकीले शरीर पर चुस्त लगते थे। बड़ों की नकल करते हुए उसने पुराने कलाबाज़ के तौर-तरीक़े सीख लिए थे। दौड़ते हुए दरी पर पहुंचा और होंठों पर दोनों हाथ रखे, फिर नाटकीय ढंग से उन्हें दोनों ओर फैलाया, मानो दर्शकों को दो हवाई चुम्बन भेजे।

बाबा एक हाथ से पिटारी का हैंडल घुमाता जा रहा था, उसमें से थर-थराती, लड़खड़ाती धुन निकाल रही थी और दूसरे से लड़के को तरह-तरह की चीजें फेंक रहा था, जिन्हें वह हवा में ही पकड़ लेता। सेर्गेइ थोड़े से ही करतब जानता था, पर बड़ी सफ़ाई से और तत्परता से उन्हें पेश करता था। वह बीयर की खाली बोतल हवा में यों उछालता कि वह कई बार घूम जाती और फिर अचानक उसे गरदन की ओर से तश्तरी के सिरे पर पकड़ लेता और कुछ क्षण तक यों ही संभाले रहता; चार गेंदों को एकसाथ उछालता और दो मोमबत्तियों को, जिन्हें वह एक साथ शमादान में पकड़ लेता; फिर वह एकसाथ ही तीन अलग-अलग चीज़ों – पंखे, लकड़ी के सिगार और छाते से खेलता। तीनों चीज़ें हवा में उड़तीं और फिर सहसा छाता उसके सिर पर आ जाता, सिगार मुंह में और पंखा बड़े नाज़ से चेहरे पर हवा करता। अंत में सेर्गेइ ने दरी पर कलाबाज़ियां लगाईं, "मेंढक" बना, "अमरीकी गांठ" दिखाई और हाथों के बल चला। अपने सारे करतब दिखाकर उसने फिर दर्शकों की ओर चुम्बन भेजे और हांफता हुआ बाबा के पास आ गया – पिटारी पर उसकी जगह लेने।

अब आर्तो की बारी थी। कुत्ते को यह अच्छी तरह मालूम था और वह काफ़ी देर से उत्तेजित सा चारों पंजों से बाबा पर कूद रहा था, जो पीठ से

पट्टा उतार रहा था। आर्तो रुक-रुककर भौंक रहा था; कौन जाने, इस तरह वह समझदार कुत्ता यह कहना चाहता हो कि उसके विचार में इतनी गर्मी में यह सब कलाबाज़ी दिखाना नासमझी ही है। पर बूढ़े मदारी ने चालाकी दिखाते हुए पीठ पीछे से संटी निकाल ली। "मुझे पता था यही होगा!" आर्तो झल्लाकर आखिरी बार भौंका और अलसाया और अनमना से पिछली टांगों पर खड़ा हो गया। पलकें झपकाते हुए वह एकटक मालिक को देखता जा रहा था।

"आर्तो, काम करो! ऐसे, ऐसे, ऐसे!.." आर्तो के सिर के ऊपर संटी पकड़े हुए मदारी बोला। "कलाबाज़ी खाओ! ऐसे! एक बार और... और, और... नाच, आर्तो, नाच!.. बैठ जा! क्या-आ? नहीं बैठना चाहता? कहा न, बैठ जा। आहा... ऐसे! देखा! अब हज़ूर को सलाम करो! आर्तो!" मदारी ने धमकी भरी आवाज़ में कहा।

"भौं!" कुत्ता घिन के साथ भौंका। फिर दयनीय आंखों से मालिक की ओर देखकर और दो बार भौंका: "भौं! भौं!"

"नहीं, मेरा मालिक मेरे मन की बात नहीं समझता," उसका रूठा स्वर कहता लगता था।

"यह हुई न बात! विनम्रता सबसे बढ़कर है। चलो अब थोड़ा कूदें," ज़मीन से थोड़ी ऊपर संटी बढ़ाते हुए बूढ़ा कहता जा रहा था। "चलो! अरे, जीभ क्यों निकालता है, भई! शाबाश! ऐसे! फिर से! शाबाश, आर्तो! घर जाके तुझे गाजर दूंगा। क्या? तू गाजर नहीं खाता? अरे, मैं भूल ही गया। तो ले मेरा विलायती टोप्पा, साहब लोगों से कुछ मांग ले। शायद वे तुझे कोई बढ़िया चीज़ दे दें।"

बूढ़े ने कुत्ते को पिछली टांगों पर खड़ा किया और उसके मुंह में अपनी गोल, चपटी, चीकट टोपी थमा दी, जिसे वह मीठे व्यंग्य के साथ "विलायती टोप्पा" कहता था। टोपी मुंह में पकड़े और अपनी मुड़-मुड़ जाती टांगें नखरे के साथ आगे बढ़ाते हुए आर्तो बरामदे के पास पहुंच गया। रुग्ण सी दिखनेवाली महिला के हाथ में सीपी का पर्स प्रकट हुआ। उसके आस-पास खड़े लोग सहानुभूति के साथ मुस्करा रहे थे।

"देखा? कहा था न मैंने?" बाबा ने सेर्गेइ की ओर झुककर उसे चिकुटी

भरी। "तू मुझ से पूछ: मैं सब जानता हूं। रूबल से कम नहीं देगी।"

उसी क्षण बरामदे से ऐसी तीखी चीख आई कि लगता था आदमी तो ऐसे चीख ही नहीं सकता। आर्तो ने सकपकाकर टोपी मुंह से गिरा दी और दुम दबाकर, सहमी-सहमी नज़रों से मुड़कर देखता हुआ उछलकर मालिक के पैरों में आ दुबका।

"कुत्ता, हाय, कुत्ता," घुंघराले बालों वाला लड़का पैर पटकता हुआ बेतहाशा चिल्ला रहा था। "मुझे दे दो, हाय, दे दो! त्रिल्ली को कुत्ता दे दो! हाय-हाय-हाय!"

"हे भगवान! ओह त्रिल्ली! छोटे मालिक!.. त्रिल्ली, चुप हो जाओ, मैं हाथ जोड़ती हूं!" फिर से बरामदे में भगदड़ मच गई।

"कुत्ता! हाय, कुत्ता दो! मुए, गधे, उल्लू!" लड़का आपे से बाहर हो रहा था।

"ओह, मेरे राजा, परेशान मत हो!" आसमानी गाउन वाली महिला उसे पुचकारने लगी। "तुम कुत्ते को सहलाना चाहते हो? अच्छा, अच्छा, मेरे लाड़ले, अभी लो। डाक्टर, क्या ख्याल है आपका, त्रिल्ली कुत्ते को सहला सकते हैं?"

"वैसे तो न करना ही अच्छा हो, पर हां, अगर कुत्ते को बोरिक एसिड या कार्बोलिक के घोल से धो दिया जाए, तो..."

"हाय, कुत्ता-आ-आ!"

"अभी, मेरे लाल, अभी। सो, डाक्टर, हम उसे बोरिक एसिड से धोने को कह देते हैं और तब... ओह, त्रिल्ली, ऐसे घबराओ नहीं! ऐ, मदारी, इधर लाओ तो अपने कुत्ते को। डरो नहीं, हम तुम्हें पैसे देंगे। सुनो, कुत्ते को कोई बीमारी तो नहीं? बावला तो नहीं? या खुजली तो नहीं है इसे?"

"नहीं, सहलाना नहीं, मैं तो बिल्कुल लूंगा!" मुंह और नाक से बुलबुले छोड़ता हुआ त्रिल्ली चिल्लाए जा रहा था। "मुझे दे दो! गधे, उल्लू! बिल्कुल मुझे! मैं अपने आप खेलूंगा!.."

"सुनो, मदारी, इधर आओ," महिला उसकी चीख से भी ज़ोर से चीखने की कोशिश कर रही थी। "ओह, त्रिल्ली, तुम अपनी चीखों से मां की जान

ले लोगे ! क्यों आने दिया इन मदारियों को ! इधर आओ भी न, पास आओ, कहा न, और पास ! ऐसे ... ओह, त्रिल्ली, यों दुखी मत हो, मां तुम्हारे लिए सब कुछ कर देगी। मान जाओ। मिस, आखिर चुप भी कराओ न बच्चे को ... डाक्टर, प्लीज़। मदारी, बोलो कितने पैसे लोगे ?"

बाबा ने टोपी उतार ली। उसके चेहरे पर आदर-सम्मान और साथ ही दीनता का भाव आ गया।

"जो हज़ूर, माई-बाप की इच्छा हो, मालकिन ... हम तो छोटे लोग हैं, जो दे देंगे, वही अच्छा है ... आप तो खुद ही बूढ़े का दिल रखेंगे, माई-बाप ..."

"ओफ़्फ़ो, कैसे मूर्ख हो तुम भी ! त्रिल्ली, तुम्हारा गला दुखने लगेगा। समझते क्यों नहीं कुत्ता तुम्हारा है, मेरा नहीं। बोल कितने लेगा ? दस ? पंद्रह ? बीस ?"

"हाय-हाय-हाय ! दे दो कुत्ता, मुझे कुत्ता दे दो !" गोल-मटोल चोबदार के पेट में पैर मारते हुए लड़का चिल्लाए जा रहा था।

"जी ... हज़ूर, वो ... माफ़ करना," बूढ़ा सकपका गया। "मैं बूढ़ा बेअकल हूं ... एकदम तो समझ में नहीं आता ... और कुछ ठीक से सुनाई भी नहीं देता ... जी हज़ूर ने क्या कहा ?.. कुत्ते के ?"

"हे भगवान !.. लगता है तुम जानबूझकर बेवक़ूफ़ बन रहे हो ?" महिला ताव में आ गई। "धाय, जल्दी से पानी दो त्रिल्ली को ! मैं तुमसे सीधे-सीधे पूछ रही हूं, कितने में बेचोगे अपना कुत्ता ? समझे कि नहीं, कुत्ता !"

"कुत्ता-आ, हाय, कुत्ता-आ !" लड़का पहले से भी ज़ोर से चिल्लाए जा रहा था।

बूढ़ा मदारी बुरा मान गया और उसने टोपी पहन ली।

"हज़ूर, हम कुत्ते नहीं बेचते," उसने सीधे-सीधे, मान के साथ कहा। "और यह कुत्ता तो हम दोनों की," उसने अंगूठे से कंधे के पीछे सेर्गेइ की ओर इशारा किया, "रोज़ी-रोटी कमाता है। सो यह तो बिल्कुल नामुमकिन है कि इसे बेच दें।"

उधर त्रिल्ली इंजन की सीटी जैसी तीखी आवाज़ में चीखे जा रहा था। उसे गिलास में पानी दिया गया, पर उसने गुस्से से पानी मिस के मुंह पर दे फेंका।

"अरे सुनो तो, पागल कहीं का!.. ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जो बिकती न हो," महिला अपनी कनपटियों को हथेलियों से दबाते हुए कहती जा रही थी। "मिस, जल्दी से मुंह पोंछो और मुझे मेरी सिर दर्द की गोली दो। तुम्हारा कुत्ता क्या सौ रूबल का है? दो सौ का? तीन सौ का? बोलो भी न काठ के उल्लू! डाक्टर, भगवान के वास्ते कुछ कहिए न इसे!"

"सेर्गेइ, उठा अपना सामान," बूढ़े मदारी ने बड़बड़ाकर कहा। "काठ का उल्लू... आर्तो, चल इधर!"

"ऐ, मदारी, रुक," सुनहरे चश्मे वाले साहब ने रोब से कहा। "तू ज़्यादा बन मत, समझा? तेरा कुत्ता दस रूबल से ज़्यादा का नहीं है, और वह भी घाल में तेरे साथ... गधे, सोच तो, तुझे कितने मिल रहे हैं!"

"बहुत-बहुत शुक्रिया, हजूर माई-बाप का, पर..." बूढ़े ने कांखते हुए पिटारी पीठ पर चढ़ा ली। "पर यह कोई बात नहीं कि बेच दें। आप कहीं और कोई कुत्ता ढूंढ लीजिए... मौज से रहिए... सेर्गेइ, चल आगे!"

"पासपोर्ट है तेरे पास?" सहसा डाक्टर ने चिल्लाकर धमकी दी। "जानता हूं मैं तुम हरामज़ादों को!"

"जमादार! सेम्योन! भगाओ इन्हें!" गुस्से से लाल-पीली होती महिला चीखी।

गुलाबी कमीज़ पहने मनहूस जमादार डरावनी शक्ल बनाता मदारी के पास आया। बरामदे में हंगामा मच गया: त्रिल्ली गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा था, उसकी मां कराह रही थी, धाय और छोटी धाय जल्दी-जल्दी बोल-चीख रही थीं, क्रोधित ततैये की तरह नीची आवाज़ में डाक्टर भिनभिना रहा था। पर बाबा और सेर्गेइ को यह देखने की फ़ुरसत न थी कि इस सब का अंत क्या होगा। आगे-आगे खासा डर गया आर्तो और उसके पीछे प्रायः दौड़ते हुए बाबा और सेर्गेइ फाटक की ओर बढ़ रहे थे। उनके पीछे-पीछे जमादार जा रहा था, बाबा की पिटारी पर धक्के दे रहा था और धमकियां दे रहा था:

"घूमते-फिरते हैं, आवारा कहीं के! शुक्र मना बुढ़ऊ कि झापड़ रसीद नहीं किया। फिर आएगा, तो कोई लिहाज़ नहीं करूंगा, सिकाई कर दूंगा और हवलदार के पास घसीट ले जाऊंगा। हरामखोर!"

बड़ी देर तक बूढ़ा और लड़का चुपचाप चलते रहे, फिर सहसा, मानो एक ही फ़ैसले से, दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और हंस पड़े : पहले सेर्गेइ खिलखिलाकर हंसा और फिर उसे देखते हुए कुछ सकपकाकर मदारी भी मुस्कराया।

"क्यों बाबा? तुम्हें सब पता है?" सेर्गेइ ने चुटकी ली।

"हां, भैया। आज तो हम धोखा खा गए," बूढ़े मदारी ने सिर हिलाया। "कैसा कमबख़त छोकरा है!.. कैसे इसे ऐसा पाला है? ज़रा देखो तो : पच्चीस लोग इसके इर्द-गिर्द नाच रहे हैं। अगर मेरा बस चले, तो मैं इसे सीधा कर दूं। कहता है कुत्ता दे दो! क्या कहने हैं! कल को कहेगा आसमान से चांद ला दो, तो क्या चांद ला दोगे? इधर आ आर्तो, मेरे कुत्ते! कैसा दिन चढ़ा है आज! पूछो मत!"

"हां, कितना बढ़िया दिन है!" सेर्गेइ बाबा की हंसी उड़ाता जा रहा था। "एक मेम साहब ने कपड़े दिए, दूसरी ने पूरा रूबल दे दिया। हां, बाबा, तुम तो सब कुछ जानते हो!"

"तू चुप रह, छुटकू," बूढ़े ने भी मज़ाक़ में जवाब दिया। "जमादार से डरके कैसे भागा था, याद है? मैं तो सोच रहा था कि तेरे साथ चल ही नहीं पाऊंगा। बड़ा गुस्सैल है यह जमादार।"

पार्क से बाहर आकर मदारी और उसके साथी तेज़ ढलान वाली रोड़ीदार पगडंडी पर नीचे समुद्र की ओर उतर गए। यहां पहाड़ियों ने थोड़े पीछे हटकर एक छोटे से मैदान के लिए जगह बना दी थी। मैदान ज्वार से घिसे पत्थरों से भरा हुआ था। अब यहां समुद्र की लहरों की हल्की छपछप हो रही थी। किनारे से कोई दो फ़र्लांग दूर सूंसें पानी में कलाबाज़ियां खा रही थीं, पल भर को उनकी गोल, मोटी पीठें नज़र आ जातीं। दूर-क्षितिज के पास जहां समुद्र की आसमानी रेशमी चादर पर गहरी नीली मखमली किनारी लगी दिखती थी, धूप में मछेरों की नावों के हल्के गुलाबी से पाल निश्चल खड़े थे।

"बाबा, यहीं नहाएंगे," सेर्गेइ ने कहा। उसने चलते-चलते ही, कभी एक पैर और कभी दूसरे पैर पर उछलते हुए पतलून उतार ली थी। "लाओ, बाजा उतरवा दूं।"

उसने जल्दी से कपड़े उतारे, अपने नंगे, धूप से संवलाए बदन पर चपत मारे और पानी में जा कूदा। उसके चारों ओर झाग उठने लगी।

बाबा आराम से कपड़े उतार रहा था। माथे पर हाथ रखकर आंखों को धूप से बचाते हुए और आंखें सिकोड़ते हुए वह स्नेह भरी मुस्कान के साथ सेर्गेइ को देख रहा था।

"लड़का अच्छा बन रहा है," बूढ़ा मदारी सोच रहा था। "है तो हड़ियल – सारी पसलियां दिख रही हैं, पर काठी मज़बूत होगी।"

"ऐ, सेर्गेइ! ज़्यादा दूर मत जा, नहीं तो समुद्री सूअर खींच ले जाएगा।"

"मैं उसकी दुम दबा दूंगा!" सेर्गेइ दूर से चिल्लाया।

बाबा काफ़ी देर तक धूप में खड़ा रहा, अपनी बगलें टटोलता रहा। बड़ी सावधानी से वह पानी में घुसा और डुबकी लगाने से पहले बड़े जतन से अपनी गंजी, लाल टांट और अंदर को धंसी बगलें गीली कीं। उसका शरीर पीला, थलथला और अशक्त था, टांगें बेहद पतली थीं, पीठ पर पखौरे उभरे हुए थे और बरसों तक पिटारी ढोने से वह कुबड़ा गई थी।

"बाबा, बाबा, देखो!" सेर्गेइ चिल्लाया।

उसने सिर के ऊपर से टांगें निकालकर पानी में कलाबाज़ी लगाई। बाबा कमर तक पानी में घुस गया था और मजे से कांखता हुआ उठ-बैठ रहा था। वह चिंतित स्वर में चिल्लाया:

"अरे, अरे, शैतानी मत कर। देख, तेरी खबर लूंगा!"

आर्तो किनारे पर दौड़ता हुआ ज़ोर-ज़ोर से भौंक रहा था। वह इस बात से परेशान था कि लड़का इतनी दूर निकल गया है। "काहे को बहादुरी दिखाता है?" कुत्ता घबरा रहा था। "ज़मीन तो है, चलो यहीं पर। कोई परेशानी न हो।"

वह खुद भी पेट तक पानी में घुसा था और दो-तीन बार उसे जीभ से चाटा था। पर खारा पानी उसे अच्छा न लगा। किनारे की रोड़ी पर सरसराती लहरों से उसे डर लगता था। वह तट पर निकल आया और फिर से सेर्गेइ पर भौंकने लगा। "क्यों ये बेहूदा हरकतें कर रहा है? यहीं किनारे पर बूढ़े के साथ बैठा रहता। ओफ़्फ़, कितना परेशान करता है यह छोकरा!"

"ऐ, सेर्गेइ, चल अब बाहर निकल, बहुत हो गया," बूढ़े ने आवाज़ दी।

"अभी आया, बाबा। देखो इंजन आ रहा है। छुक-छुक-छुक!"

आखिर वह तट पर आ गया, पर कपड़े पहनने से पहले उसने आर्तो को उठाया और उसके साथ समुद्र में लौटकर उसे दूर फेंक दिया। कुत्ता तुरंत ही वापस तैरने लगा। उसकी थूथनी और ऊपर उठ आए कान ही बस पानी के बाहर थे। वह ज़ोर-ज़ोर से और नाराज़ सा फुफकार रहा था। बाहर आकर उसने सारा बदन झकझोरा, बूढ़े और सेर्गेइ पर ढेर सारी छींटें पड़ीं।

"अरे सेर्गेइ, देख तो, यह फिर हमारी ओर चला आ रहा है?" बूढ़े ने ग़ौर से ऊपर पहाड़ी की ओर देखते हुए कहा।

काले गोलों वाली गुलाबी कमीज़ पहने वही मनहूस जमादार, जिसने पंद्रह मिनट पहले उन्हें दाचा से भगाया था, ज़ोर-ज़ोर से कुछ चिल्लाता हुआ और हाथ हिलाता पगडंडी पर नीचे उतर रहा था।

"क्या चाहिए इसे?" हैरान-परेशान बाबा ने पूछा।

(४)

भारी-भरकम जमादार बेढब सा नीचे दौड़ता आ रहा था और चिल्लाए जा रहा था। उसकी कमीज़ की बांहें हवा में लहरा रही थीं और दामन पाल की तरह फूल गया था।

"अरे, ओ!.. ठहरो तो!"

"तेरा सवा सत्यानास हो," मदारी गुस्से में बड़बड़ाया। "फिर आर्तो के पीछे आया है।"

"चलो, बाबा, इसकी खबर लेते हैं!" सेर्गेइ ने बड़ी बहादुरी से कहा।

"जा, पीछा छोड़... उफ़्फ़, क्या लोग हैं। हे भगवान!"

"ऐ, सुनो तुम..." हांफता हुआ जमादार दूर से ही बोलने लगा। "बेच दो न कुत्ते को। छोटा मालिक बस में ही नहीं आता। रोए जा रहा है। 'कुत्ता ला दो, कुत्ता ला दो...' मालकिन ने कहा है, जितने में भी दें, ले आ।"

"बड़ी बेवकूफ़ है तेरी मालकिन भी," बूढ़ा सहसा ग़ुस्से में आ गया। यहां समुद्र तट पर उसे ऐसा कोई डर न था, वह पराये दाचा में तो था नहीं। "और फिर वह मेरी मालकिन कैसी? मालकिन होगी तेरी, मेरे ठेंगे से ... मैं तुझे हाथ जोड़ता हूं, जा तू यहां से, भगवान के वास्ते ... हमारा पिंड छोड़।"

पर जमादार मान नहीं रहा था। वह बूढ़े के पास ही पत्थरों पर बैठ गया और अपने आगे बेढब सी उंगलियां नचाते हुए कहने लगा:

"समझता क्यों नहीं, बेवक़ूफ़ ..."

"बेवक़ूफ़ होगा तू," बूढ़े ने चटाक से जवाब दिया।

"ओहो, ठहर ना ... यह बात नहीं ... कैसा अड़ियल टट्टू है तू ... ज़रा सोच तो: क्या है यह कुत्ता? कहीं और पिल्ला ढूंढ़ लिया, दो टांगों पर खड़ा होना सिखा दिया, बस फिर से कुत्ता तैयार। ठीक है कि नहीं? हैं?"

बाबा बड़े ध्यान से पतलून पर पेटी बांध रहा था। जमादार के आग्रहपूर्ण प्रश्नों का उसने बड़ी बेफ़िक्री से जवाब दिया:

"बके जा, बके जा ... मैं एक बार में ही तेरी बातों का जवाब दे दूंगा।"

"यहां, भाई मेरे, तुझे एकदम मोटी रकम मिल रही है," जमादार जोश में आ रहा था। "दो सौ, नहीं तो पूरे तीन सौ ही! हां, कुछ हिस्सा मेरा भी – इतनी मगज़पच्ची कर रहा हूं तेरे साथ ... ज़रा सोच तो: तीन सौ रूबल! अरे ऐसी रकम से तो तू दुकान खोल लेगा।"

यों बोलते हुए जमादार ने जेब से सलामी का एक टुकड़ा निकाला और कुत्ते की ओर फेंका। आर्तो हवा में ही उसे पकड़कर एकबारगी ही निगल गया और दुम हिलाने लगा।

"कह लिया जो कहना था?" बाबा ने पूछा।

"कहने को है ही क्या। कुत्ता दे दे और सौदा तय!"

"अच्छा-आ, जी," बाबा ने व्यंग्य के साथ कहा। "तो कुत्ते को बेच दें?"

"साफ़ बात है, बेच दो। और क्या चाहिए तुझे? सबसे बड़ी बात तो हमारा छोटा मालिक ऐसा ढीठ है। कुछ मन में आ जाए – बस सारा घर सिर पर उठा लेगा। दे दो, दे दो – और कोई बात ही नहीं। बाप के बिना यह हाल है ... बाप घर पर हो तो ... हे भगवान! .. मालिक हमारा इंजीनियर है,

सुना होगा, अबाल्यानिनव सा'ब? सारे रूस में रेलें बिछाता है। लखपति है! लौंडा एक ही है। बस इसीलिए, सिरचढ़ा है। जीता-जागता टट्टू चाहिए – लो जी टट्टू आ गया। नाव चाहिए – लो सचमुच की नाव आ गई। किसी बात में कहीं इन्कार ही नहीं ..."

"और चांद?"

"क्या मतलब?"

"मैंने कहा, चांद कभी नहीं मांगा उसने?"

"वाह, तू भी क्या बात करता है – चांद!" जमादार सकपका गया। "अच्छा तो भले आदमी सौदा पक्का?"

बाबा ने इस बीच में अपना मटमैला कोट पहन लिया था। अपनी झुकी कमर के साथ जहां तक हो सकता था, वह तनकर खड़ा हो गया।

"मैं तुझे एक बात कहता हूं," बाबा ख़ासे गम्भीर भाव से बोलने लगा। "मान लो, तेरे कोई भाई हो या दोस्त, जो कि एकदम बचपन से ही ... ऐ, भई, तू बेकार में कुत्ते को सलामी मत खिलाए जा ... ख़ुद खा ले ... इससे वह परचनेवाला नहीं। हां तो, अगर तेरा कोई एकदम पक्का, मतबल सच्चा दोस्त हो ... बचपन से ... तो तू उसे कितने में बेच देगा?"

"तूने भी ख़ूब मुक़ाबला किया!"

"बस मुक़ाबला ही है। तू यही कह दे, अपने मालिक से, जो रेलें बनाता है," बाबा की आवाज़ तीखी हो गई। "यही कह देना कि जो कुछ ख़रीदा जा सकता है, वह सब कुछ बिकता नहीं है। समझा? तू ख़ामख़ाह कुत्ते को सहला मत, इससे कुछ नहीं होने का। इधर आ बे आर्तो, कुत्ते की औलाद! तेरी ऐसी की ... सेर्गेइ, चल सामान उठा।"

"गधा कहीं का," आख़िर जमादार से न रहा गया।

"गधा हूं, तो अपना बोझा ढोने को। तू नीच है, हरामख़ोर, नमकहराम, कमीना!" बूढ़े मदारी ने गाली दी। "अपनी मालकिन को देखेगा, कह दियो, लो जी, प्यार से हमारा लंबा सलाम। उठा दरी, सेर्गेइ! ओह, मेरी पीठ! चलो।"

"अच्छा-आ, तो यह बात है!" जमादार ने बड़े अर्थपूर्ण ढंग से कहा।

"बस, यही संभाल लो!" बूढ़े ने भी पलटकर जवाब दिया।

मदारी और उसके साथी फिर से समुद्र के किनारे-किनारे, उसी रास्ते से ऊपर चल दिए। सेर्गेइ ने यों ही सिर पीछे घुमाया और देखा कि जमादार उन पर नज़रें गड़ाए हुए है। वह विचारमग्न सा और खिन्न लग रहा था। आंखों पर उतर आई टोपी के पीछे टांड पर उलझे लाल बालों को वह पूरे पंजे से खुजला रहा था।

(५)

बूढ़े मदारी ने बरसों पहले से मिस्खोर और अलूप्का के बीच एक जगह ढूंढ़ रखी थी – निचली सड़क से नीचे की ओर, जहां बड़े मज़े से खाना खाया जा सकता था। वह अपने साथियों को वहीं ले गया। कलकल करते गंदले पहाड़ी झरने पर बने पुल से थोड़ी दूर टेढ़े-मेढ़े बलूतों और हेज़ल की घनी झाड़ियों की छाया में ज़मीन से एक सोता फूटता था। उससे ज़मीन में थोड़ा सा गहरा गोल गड्ढा बन गया था, उसमें से पानी की पतली सी धार घास के बीच चांदी सी चमकती हुई झरने में जा गिरती थी। इस सोते के पास सुबह-शाम तुर्कों को देखा जा सकता था, जो यहां पानी पीते थे और नमाज़ पढ़ते थे।

"ओह, हमारे पाप बड़े भारी, और झोला खाली," हेज़ल की झाड़ी की शीतल छाया में बैठते हुए बूढ़े मदारी ने कहा। "आ जा, सेर्गेइ। हे भगवान, तेरा आसरा है!"

उसने किरमिच के झोले में से डबल रोटी, दसेक लाल-लाल टमाटर, मल्दावियाई पनीर "ब्रीन्ज़ा" का टुकड़ा और ज़ैतून के तेल की शीशी निकाली। एक कपड़े में, जिसे साफ़ तो नहीं कहा जा सकता था, उसने नमक की पोटली बांध रखी थी। खाना खाने से पहले बूढ़ा काफ़ी देर तक सलीब के निशान बनाता रहा और कुछ बुदबुदाता रहा। फिर उसने रोटी के तीन असमान टुकड़े किए: सबसे बड़ा टुकड़ा उसने सेर्गेइ को दिया (बच्चा बढ़ रहा है, उसे खाना चाहिए), दूसरा, उससे कुछ छोटा टुकड़ा कुत्ते के लिए रखा और सबसे छोटा खुद लिया।

"हे परमपिता परमेश्वर। सबके नेत्र तुझ पर लगे, प्रभु," वह बुदबुदाता जा रहा था और हिस्से बांटता हुआ उन पर शीशी से तेल डाल रहा था। "ले, खा ले, सेर्गेइ!"

बिना किसी जल्दबाज़ी के, धीरे-धीरे, जैसे कि सच्चे मेहनतकश खाते हैं, तीनों अपना सीधा-सादा भोजन करने लगे। बस तीन जोड़े जबड़ों के चलने की आवाज़ आ रही थी। आर्तो अपना हिस्सा एक ओर को बैठा खा रहा था। पेट के बल लेटकर उसने रोटी अगले पंजों से दबा ली थी। बाबा और सेर्गेइ बारी-बारी से पके टमाटरों को नमक में छुआते थे। टमाटरों से उनके होंठों और हाथों पर ख़ून सा लाल रस बह रहा था। टमाटर खाकर ऊपर से वे पनीर और रोटी मुंह में डालते। भरपेट खाना खाकर उन्होंने जी भरकर पानी पिया। सोते की धार तले मग रखके उसमें वे पानी भर रहे थे। जल निर्मल, अत्यंत स्वादिष्ट और इतना ठंडा था कि उससे मग भी बाहर से गीला हो गया। दिन की तपस और लंबे रास्ते से मदारी और लड़का थक गए थे। पौ फटते ही वे निकल पड़े थे। बाबा की आंखें मुंदी जा रही थीं। सेर्गेइ जम्हाइयां ले रहा था, अंगड़ाइयां भर रहा था।

"क्यों, भैया, पल भर को लेट लें, झपकी ले लें?" बाबा ने पूछा। "लाओ, थोड़ा और पानी पी लूं। वाह, कितना अच्छा है," होंठो से मग हटाते हुए और भारी सांस लेते हुए बाबा ने कहा। उसकी मूंछों और दाढ़ी पर उजली बूंदें ढरक रही थीं। "अगर मैं राजा होता, तो बस यह पानी ही पीता रहता ... सुबह से गई रात तक! आर्तो, इधर आ! लो, भगवान ने पेट भरा, किसी ने नहीं देखा, जिसने देखा, उसकी नज़र नहीं लगी ... ओह-ओह-ओह!"

बूढ़ा और लड़का सिर तले अपना-अपना पुराना कोट रखकर पास-पास ही घास पर लेट गए। उनके सिरों के ऊपर घने, छतनार बलूतों की पत्तियां सरसरा रही थीं। उनके बीच-बीच में स्वच्छ आकाश की नीलिमा चमक रही थी। एक पत्थर से दूसरे पर बहता झरना ऐसी मीठी कलकल कर रहा था, मानो लोरी सुना रहा हो। बाबा कुछ देर तक कुलबुलाता, कांखता रहा, कुछ कहता रहा, पर सेर्गेइ को लग रहा था कि उसकी आवाज़ कहीं दूर, रहस्यमय लोक से आ रही है और शब्द परी कथाओं जैसे अनबूझ हैं।

"सबसे पहले तेरे लिए जोड़ा खरीदूंगा: गुलाबी, सुनहरी सलमे-सितारों वाला ... जूतियां भी गुलाबी, रेशमी ... कीयेव, खार्कोव में या फिर ओदेस्सा में – पता है वहां कैसे-कैसे सरकस हैं! बत्तियां अनगिनत ... बिजली की! लोग पांच हज़ार तो होते ही होंगे ... या शायद और भी ज़्यादा ... मुझे क्या पता? तेरा कोई नया नाम रखेंगे – इतालवी नाम। येस्तिफ़ेयेव या फिर लदीश्किन भी कोई नाम है? बकवास है निरी – कोई रंग ही नहीं। हम इश्तहारों में तेरा नाम लिखेंगे अन्टोनियो या फिर ऐनरिको, यह भी अच्छा है, या अल्फ़ोंज़ो ..."

इसके आगे लड़के को कुछ सुनाई नहीं दिया। मीठी नींद में उसका सारा शरीर जकड़ सा गया, निश्शक्त हो गया। बाबा भी सो गया, सेर्गेइ के लिए सरकस में उज्ज्वल भविष्य की उसकी कल्पनाओं का तांता सहसा टूट गया। एक बार नींद में उसे लगा कि आर्तो किसी पर गुर्रा रहा है। पल भर को उसके नींद से भारी सिर में गुलाबी कमीज़ वाले जमादार का अर्धचेतन और चिंताजनक विचार कौंधा, पर नींद, थकावट और गर्मी से वह ऐसा निढाल था कि उठ नहीं सकता था, आंखें मूंदे-मूंदे ही, अलसाई आवाज़ में उसने कुत्ते को पुकारा:

"आर्तो ... किधर जा रहा है? तेरी ऐसी ... आवारा कहीं का!"

किंतु उसी क्षण उसके विचार गडमड हो गए, भारी निराकार स्वप्नों में बदल गए।

सेर्गेइ की आवाज़ से बाबा की आंख खुली। लड़का झरने के दूसरी ओर आगे-पीछे दौड़ रहा था, तेज़-तेज़ सीटी बजा रहा था, बेचैन और डरा-डरा सा ज़ोर से चिल्ला रहा था:

"आर्तो! इधर आ! पुच-पुच-पुच! आर्तो, चल इधर!"

"अरे, चिल्ला क्यों रहा है?" सुन्न हो गई बांह को मुश्किल से सीधा करते हुए बाबा ने पूछा।

"क्यों? क्यों? इधर हम सोते रहे, उधर कुत्ता ग़ायब हो गया," सेर्गेइ ने झुंझलाकर जवाब दिया।

उसने ज़ोर से सीटी बजाई और फिर से पुकारा:

"आर्तो-ओ!"

"बेकार की बातें करता है तू! .. लौट आएगा," बाबा ने कहा। पर

तुरंत ही खड़ा हो गया और उनींदी, गुस्से भरी आवाज़ में कुत्ते को पुकारा:

"आर्तो, इधर आ, कुत्ते की औलाद!"

जल्दी-जल्दी, छोटे-छोटे, डगमगाते क़दम भरते हुए उसने पुल पार किया, सड़क पर बढ़ गया। वह कुत्ते को पुकारता जा रहा था। सामने दो फ़र्लांग तक सपाट, चमकीला सफ़ेद रास्ता दिख रहा था, पर उस पर न कोई आकृति थी, न कोई परछाईं।

"आर्तो! आर्तो रे!" बूढ़ा रुआंसी आवाज़ में चिल्लाया।

सहसा वह रुक गया, ज़मीन पर झुक गया और पैरों के बल बैठ गया।

"अच्छा-आ! यह बात है!" बुझी-बुझी आवाज़ में बूढ़ा बोला। "सेर्गेइ! इधर आ तो, बच्चे!"

"क्या है?" बूढ़े के पास आते हुए लड़के ने रुखाई से कहा। "बीता दिन मिल गया क्या?"

"सेर्गेइ... देख तो यह क्या है? ...यह, यह क्या है? ...समझा?" बूढ़े के मुंह से शब्द मुश्किल से निकल रहे थे।

वह खोई-खोई, दयनीय नज़रों से लड़के की ओर देख रहा था और ज़मीन की ओर इशारा कर रहा उसका हाथ इधर-उधर झूल रहा था।

सड़क पर सफ़ेद धूल में सलामी का काफ़ी बड़ा अधखाया टुकड़ा पड़ा हुआ था और उसके चारों ओर कुत्ते के पंजों के निशान थे।

"परचा ले गया, कमीना!" भयभीत स्वर में बाबा फुसफुसाया। वह पहले की ही भांति पंजों के बल बैठा हुआ था। "वही होगा, और कोई नहीं, साफ़ बात है... याद है, वहां समुद्र किनारे वह सलामी खिला रहा था।"

"साफ़ बात है," कटु स्वर में सेर्गेइ ने दोहराया।

बूढ़े की फटी-फटी आंखों में आंसू भर आए और वे जल्दी-जल्दी झपकने लगीं। उसने हाथों में मुंह ढांप लिया।

"अब हम क्या करें, सेर्गेइ? हैं? क्या करें अब?" बूढ़ा पूछ रहा था। असहाय सा सिसकता हुआ वह आगे-पीछे डोल रहा था।

"क्या करें, क्या करें!" सेर्गेइ ने गुस्से से उसकी नकल उतारी। "उठो बाबा, चलो चलें!"

"चल, चलें," बूढ़े ने ज़मीन से उठते हुए उदास स्वर में उसकी बात मानी। "हां, सेर्गेइ, चल चलें!"

सेर्गेइ धीरज खो बैठा, वह बूढ़े मदारी पर यों चिल्लाया मानो वह कोई बच्चा हो:

"अच्छा, यह बेवकूफ़ी बंद करो! यह कहां का क़ानून है कि पराये कुत्तों को परचा ले गए? क्या आंखें फाड़-फाड़कर देख रहे हो? ग़लत कहा क्या मैंने? सीधे जाकर कह देंगे: 'कुत्ता वापिस करो!' नहीं देंगे, तो हवलदार के पास चले जाएंगे। सीधी बात है।"

"हां ... हवलदार के पास ... हां, वो तो ठीक है," निरर्थक, कटु मुस्कान के साथ बाबा कहता जा रहा था। पर उसकी आंखों में संकोच था। "हवलदार के पास ... हां ... पर वो ... वह बात नहीं बनती, सेर्गेइ ... कि हवलदार के पास जाएं ..."

"बात क्यों नहीं बनती? क़ानून सबके लिए एक है। क्यों हम उनके आगे दुम हिलाएं?" लड़का अधीर हो रहा था।

"सेर्गेइ, तू ... भैया, तू नाराज़ मत हो। कुत्ता तो वे लौटाने से रहे।" बाबा ने रहस्यमय ढंग से आवाज़ नीची कर ली। "मुझे वह पासपरट का डर है। याद है वो सा'ब क्या कह रहा था? पूछता था: 'पासपरट है तेरे पास?' हां, भैया, यह बात है। और मेरा पासपरट," भयभीत चेहरे के साथ हौले से फुसफुसाते हुए बाबा ने कहा: "वो बेगाना है।"

"बेगाना कैसे?"

"यही तो बात है कि बेगाना है। मेरा अपना तो तगनरोग शहर में खो गया था, कौन जाने किसी ने चुरा ही लिया हो। दो साल तक मैं भटकता रहा था: छिप-छिपकर रहता था, घूस देता था, कई बार अर्ज़ियां लिखीं ... आखिर देखा कि जीना ही हराम हो गया, खरगोश की तरह हर किसी से डर लगता है। दिन-रात चैन नहीं। तभी ओदेस्सा में रैनबसेरे में एक यूनानी मिला। वह बोला यह तो कोई काम ही नहीं, चुटकी बजाते हो जाएगा। बोला, ला पच्चीस रूबल इधर धर, मैं तुझे पासपरट ला दूंगा। मैं सोच में पड़ गया, फिर मन में आया जो होगा, सो होगा। बोला, ला दे दे। बस, भैया, तभी से मैं बेगाने पासपरट के साथ रह रहा हूं।"

"ओह, बाबा, बाबा!" रुलाई रोकते हुए सेर्गेइ ने गहरी सांस ली। "कुत्ते का अफ़सोस है... बड़ा ही प्यारा कुत्ता था।"

"सेर्गेइ, मेरे बच्चे!" बूढ़े ने कांपते हाथ उसकी ओर बढ़ाए। "अगर मेरे पास सचमुच का पासपरट होता, तो मैं क्या किसी की परवाह करता, जाकर टेंटुआ पकड़ लेता!.. 'यह क्या बात है? क्या हक़ है तुम्हें दूसरों के कुत्ते चुराने का? ऐसा कौन सा क़ानून है?' पर अब भैया हम कुछ नहीं कर सकते। मैं पुलिस में जाऊं, जो सबसे पहले कहेंगे: 'ला पासपरट निकाल! अच्छा तो तू समारा का मर्तीन लदीश्किन है?' 'जी, हज़ूर'। पर मैं तो भैया लदीश्किन हूं ही नहीं, मैं तो हूं इवान दूद्किन। और यह लदीश्किन कौन है, भगवान जाने। मुझे क्या पता कि वह कोई चोर-उचक्का है या साइबेरिया से क़ैद से भागा भगोड़ा है? या शायद हत्यारा ही हो? नहीं, सेर्गेइ, हम कुछ नहीं कर सकते... कुछ भी नहीं..."

बाबा का गला रुंध आया। आंसू फिर से धूप से काली पड़ी गहरी झुर्रियों में बहने लगे। सेर्गेइ असहाय, दुर्बल बूढ़े की बातें चुपचाप सुन रहा था, उसकी भौंहें सिकुड़ी हुई थीं, उत्तेजना से वह पीला पड़ गया था। अब वह बूढ़े की बगलों में हाथ डालकर उसे उठाने लगा।

"चलो, बाबा," उसके स्वर में आदेश भी था और स्नेह भी। "भाड़ में जाए पासपरट, चलो चलें! यहां सड़क पर थोड़े ही रात काटेंगे।"

"मेरे बच्चे, मेरे प्यारे," बूढ़ा कह रहा था। उसका सारा शरीर कांप रहा था। "बड़ा ही मज़ेदार था कुत्ता... हमारा आर्तो... दूसरा ऐसा कुत्ता नहीं मिलेगा हमें..."

"अच्छा, अच्छा... उठो," सेर्गेइ कह रहा था। "लाओ मैं धूल झाड़ दूं। तुम तो बाबा बिल्कुल ही हिम्मत हार बैठे।"

उस दिन फिर उन्होंने काम नहीं किया। अपनी छोटी उम्र के बावजूद सेर्गेइ अच्छी तरह समझता था कि यह भयानक शब्द "पासपरट" ग़रीबों की ज़िंदगी में क्या मानी रखता है। इसलिए उसने न तो आर्तो को ढूंढने, न हवलदार के पास जाने, न ही कोई और क़दम उठाने पर ज़ोर दिया। हां, बाबा के साथ रैनबसेरे तक जाते हुए उसके चेहरे पर एक नया, एकाग्रता और

हठधर्मी का भाव बना रहा, मानो उसने मन ही मन कोई गम्भीर और बड़ी योजना बना ली हो।

एक दूसरे को कुछ कहे बिना, परंतु प्रत्यक्षत: एक ही इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने काफ़ी लंबा चक्कर लगाया, ताकि एक बार फिर 'दोस्ती' दाचा के सामने से गुज़र सकें। वे फाटक के सामने पल भर को रुके, इस धुंधली सी आशा के साथ कि शायद आर्तो को देख पाएं या दूर से उसकी आवाज़ ही सुनाई दे जाए।

लेकिन भव्य दाचा का लोहे का फाटक बंद था और छायादार बाग़ में उदास, सुघड़ सरू वृक्षों तले दम्भमय, अविचलित, सुगंध भरा सन्नाटा छाया हुआ था।

"सा – ह – ब – ज़ादे!" फुफकारती आवाज़ में बूढ़े ने कहा। इस एक शब्द में उसने अपने हृदय की सारी कटुता उंडेल दी।

"छोड़ो बाबा, चलो अब," लड़के ने सख्ती से कहा और मदारी की बांह खींची।

"सेर्गेइ, शायद आर्तो भाग जाए?" बाबा ने फिर सिसकी भरी। "हैं? क्या ख्याल है तेरा, मुन्ना?"

पर लड़के ने बाबा को कुछ जवाब नहीं दिया। वह दृढ़तापूर्वक, लंबे-लंबे क़दम भरता चला जा रहा था। उसकी आंखें ज़मीन में गड़ी हुई और पतली भौंहें सिकुड़ी हुई थीं।

(६)

चुप्पी साधे हुए ही वे अलूप्का पहुंच गए। बाबा सारे रास्ते कांखता और आहें भरता रहा था। सेर्गेइ के चेहरे पर कटुता और दृढ़ संकल्प का भाव बना हुआ था। एक तुर्क के गंदे कहवेखाने में, जिसका नाम बड़ा शानदार था 'इल्दीज़' यानी 'सितारा', वे रात काटने को ठहरे। उनके साथ कुछ यूनानी राजगीर, तुर्क बेलदार, दिहाड़ी करनेवाले रूसी मज़दूर और कुछ संदेहास्पद आवारा लोग भी, जो बड़ी संख्या में रूस के दक्षिण में घूमते-फिरते हैं, वहां रात काट

रहे थे। जैसे ही निश्चित समय पर कहवाख़ाना बंद हुआ, वे सब दीवारों के साथ लगी बेंचों पर और फ़र्श पर लेट गए। जो लोग कुछ अनुभवी थे उन्होंने सावधानी बरतते हुए अपनी जो कुछ भी कीमती चीज़ या कपड़ा-लत्ता था उसे सिर तले रख लिया।

रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी थी। बाबा के बगल में फ़र्श पर लेटा सेर्गेइ हौले से उठा और ज़रा भी शोर न करने की कोशिश करते हुए कपड़े पहनने लगा। बड़ी-बड़ी खिड़कियों में से मंद-मंद चांदनी आ रही थी। तिरछी थरथराती किरणें फ़र्श पर फैल रही थीं, गठरी से सोए लोगों पर पड़ रही थीं। चांदनी में उनके चहरे दुखद और मृतकों से लगते थे।

"ऐ, चोकरे, किदर जाता है रात को?" दरवाज़े के पास कहवेख़ाने के मालिक जवान तुर्क इब्राहीम ने उनींदी आवाज़ में सेर्गेइ को टोका।

"जाने दे, काम है!" सेर्गेइ ने सख़्ती से जवाब दिया। "उठ भी न, तुरक-मुरक!"

जम्हाइयां लेते, खुजलाते और जीभ से च-च करते इब्राहीम ने दरवाज़ा खोल दिया। तातार बाज़ार की संकरी गलियों में घनी, गहरी नीली परछाईं फैली हुई थी, सड़क दांतेदार बेल-बूटे से बनी लगती थी, परछाईं सामने के मकानों की दहलीज़ तक पहुंची हुई थी। सामने के घरों की नीची दीवारें चांदनी में चमक रही थीं। मुहल्ले के परे कहीं कुत्ते भौंक रहे थे। दूर, ऊपर की सड़क पर दौड़ते घोड़े की टापें सुनाई दे रही थीं।

हरे गुम्बद वाली सफ़ेद मस्जिद अंधेरे घने सरू वृक्षों के झुरमुट से घिरी हुई थी। उसे पार करके लड़का तेज़ ढलान वाली तंग गली से बड़ी सड़क पर उतर आया। ज़्यादा बोझा न हो, इसलिए सेर्गेइ नीचे के कपड़े पहने ही चला आया था। चांदनी उसकी पीठ पर पड़ रही थी और उसके आगे-आगे अजीब सी, छोटी परछाईं दौड़ रही थी। सड़क के दोनों ओर अंधेरी झाड़ियां थीं। कोई चिड़िया उनमें समान अंतराल से कोमल स्वर में चहक रही थी: "सोऊं!.. सोऊं!.." लगता था कि वह रात की नीरवता में किसी दुखद रहस्य को छिपाए हुए है और निश्शक्त सी नींद और थकावट के साथ संघर्ष कर रही है तथा धीमी-धीमी आवाज़ में, बिना किसी आशा के किसी से शिकायत कर रही

है : "सोऊं, सोऊं! ..." अंधेरी झाड़ियों और दूर के जंगल के नीले-नीले शिखरों के ऊपर आयपेत्री पर्वत के दो नुकीले सिरे आसमान को छूते लगते थे। वह सारा इतना हल्का-फुल्का लगता था, मानो चांदी लगे गत्ते का बना हो।

इस भव्य नीरवता में चलते हुए सेर्गेइ के मन में धुक-धुक हो रही थी, पर साथ ही सारे शरीर में एक मादक सी निडरता का संचार हो रहा था। एक मोड़ पर सहसा उसे समुद्र दिखा। असीम शांत सागर में तरंगें उठ रही थीं। क्षितिज से तट की ओर पतली सी, थरथराती रुपहली पट्टी बढ़ती, समुद्र के बीचोंबीच वह ओझल हो जाती, बस कहीं-कहीं ही झिलमिल होती, और फिर सहसा तट पर पिघली चांदी फैल जाती।

सेर्गेइ ज़रा भी आवाज़ किए बिना पार्क के छोटे से लकड़ी के गेट में से अंदर घुस गया। वहां घने पेड़ों तले बिल्कुल अंधेरा था। दूर से अथक झरने का कलकल सुनाई दे रहा था और उससे ठंडी, नम सांसें आ रही थीं। पुल की लकड़ियों पर पैरों की ठक-ठक हुई। पुल तले पानी काला और भयावह था। आख़िर वह लोहे का, लेस जैसे बेल-बूटों वाला फाटक भी आ गया। फाटक के दोनों ओर बेल लगी हुई थी। पेड़ों के झुरमुट से छनकर आती चांदनी फाटक के बेल-बूटों पर कहीं-कहीं चमक रही थी। फाटक के दूसरी ओर अंधेरा था और सन्नाटा, जो लगता था ज़रा सी आहट से ही भंग हो जाएगा।

कुछ क्षणों के लिए सेर्गेइ के मन में शंका घिर आई, उसे डर ही लगने लगा। लेकिन उसने अपनी इस कमज़ोरी पर क़ाबू कर लिया और बुदबुदाया :

"नहीं, जो भी हो, मैं चढ़ जाऊंगा।"

चढ़ना उसके लिए मुश्किल न था। फाटक के बेल-बूटे उसके चीमड़ हाथों और मज़बूत पांवों के लिए अच्छा सहारा थे। फाटक के ऊपर एक खंभे से दूसरे पर पत्थर की चौड़ी मेहराब बनी हुई थी। सेर्गेइ टटोलता-टटोलता उस पर चढ़ गया, फिर पेट के बल लेटे-लेटे उसने टांगें अंदर की ओर नीचे कर दीं और धीरे-धीरे सारा धड़ नीचे करने लगा, साथ ही वह पैरों से टेक टटोलता जा रहा था। इस तरह वह मेहराब के दूसरी ओर लटक गया, बस उंगलियों के सिरों से वह मेहराब को पकड़े हुए था, लेकिन उसके पैरों को कोई टेक नहीं

मिल रही थी। तब वह यह नहीं समझ सकता था कि मेहराब बाहर के मुक़ाबले अंदर की ओर ज़्यादा बड़ी है। उसकी बांहें सुन्न होती जा रही थीं और निश्शक्त हो गया शरीर भारी ; मन में भय समाता जा रहा था।

आख़िर वह और न सह सका। नुकीले किनारे पर जमी उसकी उंगलियां फिसल गईं और वह तेज़ी से नीचे गिरा।

उसने रोड़ी की सरसराहट सुनी और घुटनों में तेज़ दर्द महसूस किया। कुछ क्षण तक वह हाथों-पैरों के बल पड़ा रहा, गिरने से वह सुन्न हो गया था। उसे लग रहा था कि दाचा में अभी सब जाग जाएंगे, गुलाबी कमीज़ पहने जमादार दौड़ा आएगा, हंगामा मच जाएगा ... लेकिन पहले की ही भांति बाग़ में गहरा, दम्भमय सन्नाटा छाया हुआ था। बस, सारे बाग़ में अजीब सी सायं-सायं हो रही थी।

"ओह, यह तो मेरे कानों में शोर हो रहा है!" सेर्गेइ आख़िर समझ गया। वह खड़ा हो गया। सब कुछ भयावह, रहस्यमय और अति सुंदर था, सुगंधित स्वप्न लोक सा। अंधेरे में मुश्किल से दिख रहे फूल हौले-हौले डोल रहे थे, मानो एक दूसरे के कान में कुछ कह रहे थे, चुपके-चुपके देख रहे थे और अस्पष्ट सी चिंता से सिर हिला रहे थे। अंधेरे, सुघड़, सुगंधित सरू धीरे-धीरे अपने नुकीले शिखर हिला रहे थे, मानो विचारमग्न से किसी बात का उलाहना दे रहे थे। झरने के पार झाड़ियों के झुरमुट में नन्ही सी थकी-मांदी चिड़िया नींद से जूझ रही थी और निराश, शिकायत करती सी दोहरा रही थी :

"सोऊं!.. सोऊं!.. सोऊं!.."

रात को पगडंडियों पर उलझी परछाइयों में सेर्गेइ इस जगह को पहचान ही न पाया। वह बड़ी देर तक सरसर करती रोड़ी पर भटकता रहा और आख़िर मकान के पास पहुंच गया।

जीवन में पहले कभी भी लड़के को ऐसे न लगा था कि वह इतना असहाय है, एकाकी है। उसे लग रहा था कि इस विशाल घर में निर्मम शत्रु छिपे बैठे हैं, जो दुष्टता भरी मुस्कान के साथ अंधेरी खिड़कियों में से छोटे से, दुर्बल बालक की हर गतिविधि पर नज़र लगाए हुए हैं। ये शत्रु चुपचाप अधीरतापूर्वक

किसी संकेत की, किसी के क्रोधपूर्ण, ज़ोरदार आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"नहीं, घर में नहीं... घर में वह नहीं हो सकता!" सेर्गेइ मानो सपने में बुदबुदाया। "घर में वह किकियाएगा, तंग करेगा..."

उसने दाचा का चक्कर लगाया। पिछली ओर खुले अहाते में कुछ मामूली सी इमारतें थीं, शायद नौकरों के लिए। बड़े घर की ही भांति यहां भी किसी भी खिड़की में रोशनी नहीं थी; बस अंधेरे शीशों में चांदनी ही धूमिल सी चमक रही थी। "अब कभी भी यहां से नहीं निकल पाऊंगा। कभी भी नहीं!" गहरी उदासी के साथ सेर्गेइ ने सोचा। पल भर को बाबा, पुरानी पिटारी, कहवेखानों में रैनबसेरे, शीतल चश्मों के पास खाना – यह सब उसे याद हो आया। "अब यह सब कभी भी नहीं होगा," सेर्गेइ ने मन ही मन दुख से कहा। परंतु उसके विचारों में जितनी अधिक निराशा आती जा रही थी, उतना ही उसके मन में मर मिटने का शांत, कटु संकल्प बढ़ता जा रहा था।

सहसा उसके कानों से आह जैसी चिचियाहट टकराई। लड़का ठिठक गया, सांस थामे वह पंजों के बल तनकर खड़ा हो गया। फिर वही आवाज़ आई। लगता था वह उस तहख़ाने से आ रही थी, जिसके पास सेर्गेइ खड़ा था और जिसमें हवा आने-जाने के लिए छोटे-छोटे, चौकोर झरोखे बने हुए थे। किन्हीं फूलों पर पैर रखता हुआ सेर्गेइ दीवार के पास गया, एक झरोखे के पास मुंह ले जाकर सीटी बजाई। नीचे कहीं हौले से आहट हुई, पर उसी क्षण शांत हो गई।

"आर्तो! आर्तो!" सेर्गेइ ने कांपती आवाज़ में फुसफुसाकर पुकारा।

सारे बाग़ में ज़ोर-ज़ोर से भौंकने की आवाज गूंज उठी। इस आवाज़ में हर्ष भी था और शिकायत भी, कटुता भी और शारीरिक वेदना की भावना भी। सेर्गेइ को सुनाई दे रहा था कि अंधेरे तहख़ाने में कुत्ता पूरा ज़ोर लगाकर किसी चीज़ से छूटने की कोशिश कर रहा है।

"आर्तो, मेरे कुत्ते, आर्तो," रुआंसे स्वर में लड़का भी कहता जा रहा था।

"धत्, कमबख़्त कहीं का!" नीचे भोंडी आवाज़ में कोई चीखा।

तहख़ाने में कुछ टकराया। कुत्ता रुक-रुककर ज़ोर से हूंकने लगा।

"मार मत, मुए, मत मार कुत्ते को," पत्थर की दीवार को नाखूनों से खरोंचते हुए सेर्गेइ चीख उठा।

फिर जो कुछ हुआ, उसकी सेर्गेइ को धुंधली सी ही याद थी, मानो बुख़ार की बदहवासी में सब कुछ हुआ। तहख़ाने का दरवाज़ा खड़खड़ाकर खुल गया और जमादार दौड़ा-दौड़ा बाहर आया। वह केवल अंतरीय पहने था। नंगे पैर, दढ़ियल, चेहरे पर पड़ती चांदनी से पीला जमादार सेर्गेइ को राक्षस सा लगा।

"कौन है? कौन है?" बिजली की तरह उसकी आवाज़ कड़की। "पकड़ो-पकड़ो। चोर! चोर!"

उसी क्षण खुले दरवाज़े के अंधेरे में से उछलते सफ़ेद गोले की तरह आर्तो भौंकता हुआ बाहर आया। उसकी गरदन में रस्सी का टुकड़ा लटक रहा था।

लड़के को तो अब कुत्ते की होश न थी। जमादार की डरावनी आकृति से वह आतंकित हो उठा था, पैर जैसे काठ के हो गए, सारे शरीर को लकवा मार गया। पर ख़ुशक़िस्मती से यह जड़ता ज़्यादा देर न रही। सेर्गेइ ने अनजाने ही तीखी, लंबी चीख मारी और सिर पर पैर रखकर तहख़ाने से दूर भागा, रास्ता तो उसे दिख न रहा था, अनुमान से ही वह दौड़ चला।

वह हिरन की तरह जल्दी-जल्दी और ज़ोर से ज़मीन पर पांव मारता दौड़ता जा रहा था। टांगें उसकी सहसा इतनी मज़बूत हो गई थीं, मानो दो फ़ौलादी स्प्रिंग हों। उसके बगल में ही ख़ुशी से भौंकता आर्तो दौड़ रहा था। पीछे-पीछे रेत पर ज़ोर-ज़ोर से धमधमाता जमादार आ रहा था, ग़ुस्से में गालियां बक रहा था।

दौड़ते-दौड़ते ही सेर्गेइ फाटक तक जा पहुंचा, और क्षण भर में ही सोचकर नहीं, बल्कि अंतःप्रेरणा से ही यह समझ गया कि यहां रास्ता नहीं है। पत्थरों की दीवार और उसके साथ-साथ लगे सरू वृक्षों के बीच संकरा सा अंधेरा छेद था। कुछ सोचे-समझे बिना केवल डर की भावना से प्रेरित सेर्गेइ नीचे झुका और उसमें घुस गया, दीवार के साथ-साथ दौड़ने लगा। सरू की कांटेनुमा पत्तियां उसके चेहरे पर ज़ोर-ज़ोर से लग रही थीं। वह पेड़ों की जड़ों से टकरा जाता, गिरता, हाथ ख़ूनोंख़ून हो जाते, पर वह तुरंत ही उठ खड़ा होता,

पीड़ा तक न अनुभव करता और आगे दौड़ने लगता। वह मुड़कर दोहरा ही हो गया था, अपनी चीख तक उसे सुनाई न दे रही थी। आर्तो उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

इस तरह वह एक ओर ऊंची दीवार और दूसरी ओर सरू वृक्षों की घनी कतार से बने गलियारे में दौड़ रहा था – असीम फंदे में फंसे, बौखलाए हुए छोटे से जानवर की तरह। उसका गला सूख गया और हर सांस के साथ छाती में हज़ारों सुइयां चुभती थीं। जमादार की धमधम कभी दाईं ओर से आती और कभी बाईं ओर से। बदहवास हो गया लड़का कभी आगे दौड़ता, कभी पीछे, कई बार वह गेट के सामने से गुज़रा, अंधेरे, तंग छेद में घुसा।

आख़िर सेर्गेइ निढाल हो गया। भयभीत मन में निराशा समाने लगी, वह हर तरह के ख़तरे की ओर से उदासीन सा होता जा रहा था। वह पेड़ तले बैठ गया, अपना थकावट से चूर-चूर शरीर तने से टिकाया और आंखें मूंद लीं। शत्रु के भारी क़दमों तले रेत की सरसर पास ही आती जा रही थी। आर्तो सेर्गेइ के घुटनों में थूथनी दुबकाकर हौले से किकिया रहा था।

लड़के से दो क़दम दूर टहनियों को हाथ से हटाने की आवाज़ आई। सेर्गेइ ने सहज ही आंखें ऊपर उठाईं और सहसा असीम हर्ष से भरपूर हो एक ही झटके में उछलकर खड़ा हो गया। अब कहीं उसने देखा था कि जिस जगह वह बैठा था, उसके सामने दीवार नीची ही थी, चार फ़ुट से ज़्यादा नहीं। हां, उसके ऊपर कांच लगा हुआ था, पर सेर्गेइ ने इसके बारे में नहीं सोचा। पलक झपकते ही उसने आर्तो को धड़ से उठाया और उसकी अगली टांगें दीवार पर रख दीं। चतुर कुत्ता तुरंत ही सब कुछ समझ गया। वह जल्दी से दीवार पर चढ़ गया, दुम हिलाने लगा और जीत के स्वर में भौंकने लगा।

उसके पीछे-पीछे ही सेर्गेइ भी दीवार पर चढ़ गया, ठीक उसी वक़्त जब सरू की टहनियों को हटाकर विशाल, काली आकृति प्रकट हुई। दो लचीले, फुर्तीले शरीर तेज़ी से सड़क पर कूद गए। उनके पीछे बादलों की गड़गड़ाहट की तरह गंदी-गंदी गालियां सुनाई दीं।

न जाने जमादार इन दो दोस्तों जैसा फुर्तीला नहीं था या वह बाग़ में दौड़ता-दौड़ता थक गया था, या उसे उम्मीद नहीं थी कि इन भगोड़ों को पकड़

पाएगा, जो भी हो उसने इनका पीछा नहीं किया। किंतु फिर भी वे दोनों काफ़ी देर तक दौड़ते चले गए, मुक्ति की खुशी से मानो उन्हें पर लग गए थे। कुत्ता शीघ्र ही निश्चिंत हो गया, पर सेर्गेइ अभी भी सहमा-सहमा पीछे मुड़कर देख रहा था। आर्तो उसके ऊपर कूद रहा था, खुशी से कान और रस्सी का टुकड़ा हिलाता हुआ वह एकदम उछलकर लड़के के ऐन होंठों पर ही अपनी जीभ फेर लेता।

सोते के पास ही, उसी जगह जहां दिन को उन्होंने बाबा के साथ रोटी खाई थी, लड़के की जान में जान आई। एकसाथ ही ठंडे सोते पर मुंह लगाकर कुत्ता और इन्सान बड़ी देर तक ताज़ा, स्वादिष्ट जल पीते रहे। वे एक दूसरे को धकेलते, पल भर को सिर ऊपर उठाकर सांस लेते, उनके होंठों से टप-टप बूंदें गिरतीं और फिर से वे सोते पर मुंह लगा लेते, हौके से पानी पीने लगते। आखिर जब और न पिया गया और वे आगे चल दिए, तो उनके पेटों में पानी की गुड़गुड़ हो रही थी। खतरा टल गया था, इस रात के सभी डरों का अब नामोनिशान न रहा था और वे दोनों खुशी-खुशी, मज़े से चांदनी में चमकती सड़क पर चले जा रहे थे। दोनों ओर की अंधेरी झाड़ियों से सुबह की ताज़गी और ओस से भीगी पत्तियों की मीठी गंध आ रही थी।

'इल्दीज़' कहवेखाने में इब्राहीम लड़के को उलाहना देते हुए बड़बड़ाया: "ऐ, चोकरे, कहां गूमता रहता है तू? बरी बुरी बात है..."

सेर्गेइ बाबा को जगाना नहीं चाहता था, पर उसकी जगह आर्तो ने ऐसा किया। फ़र्श पर गठरियों से पड़े शरीरों में उसने पल भर में ही बाबा को ढूंढ़ लिया और वह होश में आता, इससे पहले ही खुशी से किकियाते हुए उसके गाल, आंखें, नाक, मुंह चाट लिए। बाबा जाग गया, कुत्ते की गरदन से लटकती रस्सी देखी, अपने पास ही लेटे, धूल से सने लड़के को देखा और सब कुछ समझ गया। वह सेर्गेइ से कुछ पूछना-वूछना चाहता था, पर कोई बात न बनी। लड़का हाथ फैलाए, मुंह खोले सो रहा था।

फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की

पराये घोंसले में

संसार में कौन ऐसा पढ़ा-लिखा व्यक्ति होगा, जो 'अपराध और दण्ड', 'करामाज़व बन्धु' और 'बौड़म' उपन्यासों से परिचित न हो। ये महान लेखक फ़्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की की लेखनी की देन हैं। संसार में शायद ही दूसरा कोई ऐसा लेखक हो, जिसने लोगों की वेदनाओं, उनके विचारों के मंथन और उनकी अंतरात्मा की व्यथा का इतना मार्मिक चित्रण किया हो। दोस्तोयेव्स्की की प्राय: सभी पुस्तकें गम्भीर हैं, उन्हें समझना सरल नहीं।

परंतु उनकी प्राय: हर रचना में ऐसे अंश हैं, जिन्हें वह अपनी नन्ही बेटी और उसकी सहेलियों को पढ़कर सुनाया करते थे और जिन्हें सुनकर बच्चों के मनों में भावनाओं का उद्वेग उठता था। दोस्तोयेव्स्की चाहते थे कि कभी खाली समय मिले, तो इन अंशों को जमा करके अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित करें। परंतु वह स्वयं ऐसा न कर पाए। १८८१ में साठ वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया। उसके दो वर्ष बाद ही एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था: 'रूसी बच्चों को। फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की की रचनाओं से'। इसमें 'क्रिसमस और बालक' और 'किसान मरेइ' कहानियां तथा 'किशोर', 'नेतच्का नेज़्वानवा', 'अपराध और दण्ड' तथा 'करामाज़व बन्धु' उपन्यासों के अंश संकलित थे। तब से यह पुस्तक कई बार छपी।

दोस्तोयेव्स्की को बाल-आत्मा का बड़ा अच्छा ज्ञान था। बचपन की अपनी यादों को ही वह पर्याप्त नहीं मानते थे। अपने एक मित्र को उन्होंने लिखा: "बच्चों के बारे में जो कुछ भी आप जानते हों, मुझे लिखें... उनकी आदतें, रोचक घटनाएं, उत्तर, शब्द, उनके लक्षण, विश्वास, उनकी बुरी हरकतें और भोलापन..." बच्चों के प्रति अपने रुख के बारे में उनका कहना था: "मैं उनका अध्ययन करता हूं, सारी उम्र करता आया हूं और अंतरतम से उन्हें प्यार करता हूं।"

परंतु यह रुख दोस्तोयेव्स्की के एक वयस्क नायक के शब्दों में ही सबसे अच्छी तरह व्यक्त हुआ है: "निर्दोष पीड़ित बच्चे के एक आंसू के लिए मैं स्वर्ग का टिकट विनम्रतापूर्वक लौटाता हूं"।

"असहाय जीव को पहुंचाए गए ज़रा से दुख, उसके एक आंसू से ही बुरी तरह व्यथित होनेवाले व्यक्ति के हृदय में बच्चों के प्रति जो गहरा प्रेम है, उस प्रेम ने ही लेखक से ये शब्द लिखवाए होंगे," हमारे समसामयिक सोवियत कवि सेर्गेई मिखल्कोव कहते हैं। १९७१ में दोस्तोयेव्स्की की १५०वीं वर्षगांठ पर उनकी 'बच्चों के लिए' पुस्तक प्रकाशित हुई। उसकी भूमिका में ही मिखल्कोव ने यह लिखा है। इसी पुस्तक से यहां प्रस्तुत कहानी ली गई है। यह एक ज़मींदार और साधारण किसान औरत की अवैध संतान की कहानी है। लड़के को दयावश ऊंचे घराने के बच्चों के बोर्डिंग स्कूल में दाखिल करा दिया जाता है और वहां उसे दूसरे लड़कों से और मास्टरों से क्या-क्या अपमान सहने पड़ते हैं, यही है इस कहानी का विषय।
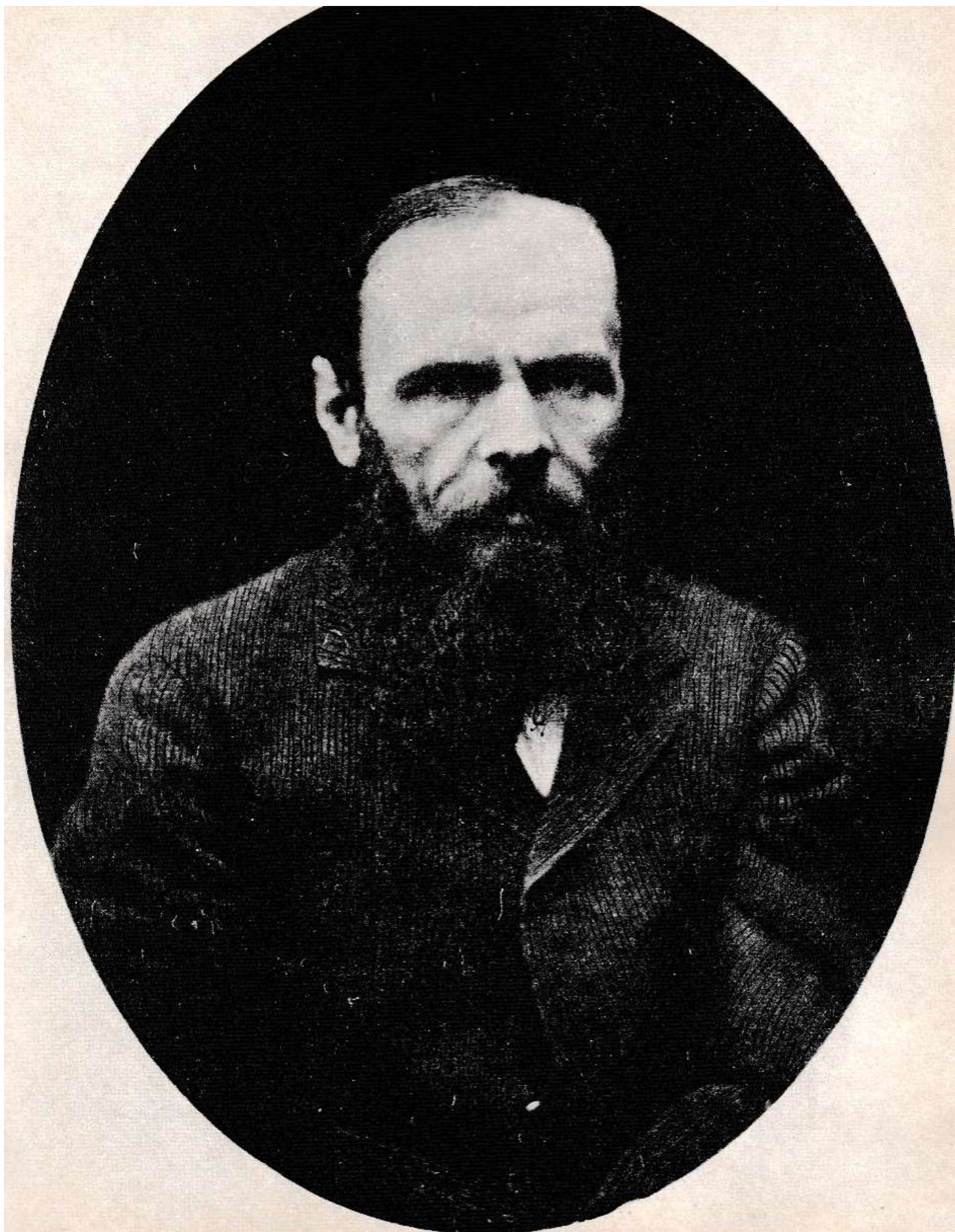
घंटा दो या बल्कि तीन सेकंड में ही एक बार ज़ोर से और बिल्कुल स्पष्टतः बज रहा था, लेकिन यह मुनादी का घंटा नहीं था, यह तो एक प्रिय नाद था, जो मंद लय में गुंजायमान हो रहा था। सहसा मुझे लगा कि यह तो जाना-पहचाना नाद है, कि संत निकोलस के गिरजे में घंटा बज रहा है। मास्को का यह पुराना लाल गिरजा हमारे बोर्डिंग स्कूल के सामने ही था, ज़ार अलेक्सेइ मिखाइलविच* ने इसे बनवाया था – बेलबूटेदार, बहुत सारे गुम्बदों और स्तम्भों वाला गिरजा। मुझे यह भी ख़्याल आया कि अभी-अभी ईस्टर सप्ताह बीता है और अब स्कूल के बगीचे में पतले-पतले भोज वृक्षों पर नई-नई निकली हरी-हरी पत्तियां कंपायमान हो रही होंगी। ऐसा ही दिन था तब। हमारी कक्षा में ढलती दुपहरी की तिरछी धूप पड़ रही थी। कक्षा के बाईं ओर वाले छोटे से

---

* सन् १६४५ से १६७६ तक रूस का ज़ार। – सं०
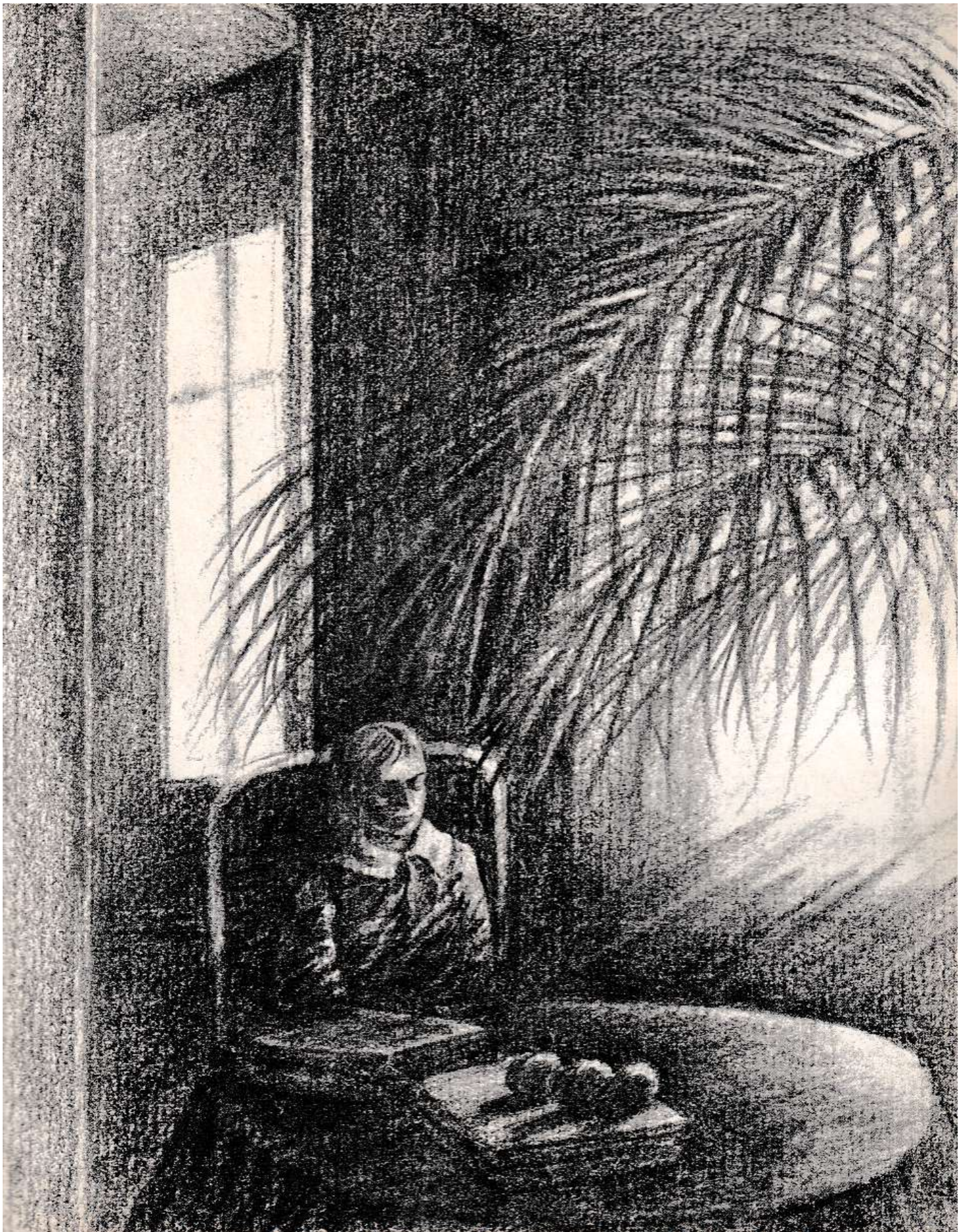
कमरे में, जहां साल भर पहले तुशार ने मुझे काउंटों और सीनेटरों के बच्चों से अलग ले जाकर रखा था, एक मेहमान बैठी थीं। हां, हां, मैं किसी ऊंचे घराने का नहीं था, तो भी मेरे पास एक महिला आई थीं। जब से मैं तुशार के यहां रह रहा था, पहली बार मुझसे मिलने कोई आया था। जैसे ही वह अंदर आई थीं मैं उन्हें पहचान गया था: यह मेरी मां थीं, हालांकि उस दिन से जब गांव के गिरजे में उन्होंने मुझे युखारिस्त दिलाया था और गुम्बद के नीचे एक कबूतर उड़ा था, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। हम दोनों अकेले बैठे थे और मैं उन्हें आंखें चुराकर अजीब तरह से घूर रहा था। बाद में, कई वर्ष पश्चात मुझे पता चला था कि तब वह अपनी मर्ज़ी से, जिन लोगों के संरक्षण में उन्हें रखा गया था उनसे चोरी-चोरी ही मास्को आई थीं, हालांकि उनके पास पैसे भी बहुत थोड़े थे, तो भी वह मात्र मुझे देख पाने को ही आई थीं। यह भी एक अजीब बात थी कि अंदर आकर और तुशार से बात करने के बाद उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा कि वह मेरी मां हैं। वह मेरे पास बैठी थीं, और मुझे आश्चर्य हो रहा था कि वह इतना कम बोलती हैं। वह अपने साथ एक गठरी लाई थीं। उन्होंने गठरी खोली, उसमें छह माल्टे थे, कुछ प्रियानिक* और दो मामूली फ़्रेंच बंद। मुझे उनका फ़्रेंच बंद लाना अच्छा न लगा, और मैंने बुरा सा मुंह बनाकर कहा कि हमें यहां भोजन बहुत अच्छा मिलता है और हमें रोज़ाना चाय के साथ फ़्रेंच बंद मिलते हैं।

"कोई बात नहीं, बेटा, मैं तो अपने भोलेपन में सोच रही थी कि शायद उन्हें वहां स्कूल में खाना अच्छा न मिलता हो। बुरा न मानना, बच्चे।"

"जी, वह अन्तनीना वसील्येव्ना (तुशार की पत्नी) को भी बुरा लगेगा। और साथी भी मेरा मज़ाक़ उड़ाएंगे..."

"तो, नहीं लोगे क्या? ले लो, खा लेना।"

"अच्छा, रहने दीजिए..."

उनकी सौगात को मैंने हाथ तक न लगाया; माल्टे और प्रियानिक मेरे सामने मेज़ पर रखे थे और मैं आंखें झुकाए, पर बड़े आत्मगौरव की भावना के

---

* शहद, मुरब्बे आदि के साथ बनाये जानेवाले रूसी बिस्कुट। – सं०

साथ बैठा हुआ था। कौन जाने, हो सकता है, मेरा तब यह छिपाने का बिल्कुल भी मन न रहा हो कि उनके यों मिलने आने से मैं दूसरे लड़कों के सामने शर्मिंदा हूं; या कम से कम उन्हें यह जताना चाहता था ताकि समझ जाएं कि: "देखिए, आपके कारण मेरा अपमान हो रहा है और आप स्वयं भी यह नहीं समझती हैं"। ओह, मैं उन दिनों तुशार के पीछे ब्रुश उठाए चलता था, उसके कोट की धूल झाड़ता था! मैं यह भी कल्पना कर रहा था कि मां के जाते ही मुझे लड़कों से कैसी-कैसी बातें सुननी होंगी और हो सकता है, स्वयं तुशार भी मेरी खिल्ली उड़ाए। सो मेरे मन में मां के लिए रत्ती भर भी सद्भावना न थी। कनखियों से मैं उनका पुराना सा, गाढ़े रंग का लिबास देख रहा था, उनके हाथ कैसे खुरदुरे थे – मज़दूरों जैसे, और जूतियां तो बिल्कुल ही घटिया थीं; चेहरा दुबला पड़ गया था, माथे पर झुर्रियां पड़ने लगी थीं। हां, यह सच है कि बाद में, मां के चले जाने पर शाम को अन्तनीना वसील्येव्ना ने कहा था: "आपकी maman अवश्य ही कभी देखने में खासी अच्छी रही होंगी"।

ऐसे ही हम बैठे हुए थे और सहसा नौकरानी अगाफ़्या ट्रे लिए अंदर आई। ट्रे पर कॉफ़ी का कप रखा हुआ था। दोपहर के खाने के बाद का समय था और इस समय तुशार दम्पति सदा अपनी बैठक में कॉफ़ी पिया करते थे। परंतु मां ने धन्यवाद कहा और कॉफ़ी नहीं ली। बाद में मुझे पता चला कि उन दिनों वह कॉफ़ी बिल्कुल ही नहीं पीती थीं, क्योंकि उससे उनका जी घबराने लगता था। बात यह थी कि तुशार और उसकी पत्नी मन ही मन, प्रत्यक्षतः यह सोच रहे थे कि मां को मुझ से मिलने की अनुमति देकर उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया है, अतः मां के लिए कॉफ़ी का कप भेजना तो उनकी मानवीयता का पराक्रम ही था, जो उनकी सभ्यता और यूरोपीय चाल-चलन के लिए अत्यंत मान की बात थी। और मां ने मानो जान-बूझकर कॉफ़ी से इन्कार कर दिया था।

मुझे तुशार के पास बुलाया गया, और उसने यह आज्ञा दी कि मैं अपनी सभी कापियां और पुस्तकें ले जाकर मां को दिखाऊं, ताकि "वह देख लें कि आपने मेरे स्कूल में कितना ज्ञान पाया है"। तभी अन्तनीना वसील्येव्ना ने होंठ सिकोड़कर और मुंह बनाते हुए उपहास के स्वर में कहा:

"लगता है आपकी maman को हमारी कॉफ़ी पसंद नहीं आई।"

मैंने कापियां उठाईं और मां को दिखाने ले चला। कक्षा में काउंटों और सीनेटरों के बच्चे झुंड बनाए खड़े थे और चोरी-चोरी मेरे कमरे में झांक रहे थे। मुझे तुशार की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना अच्छा ही लगा। मैं एक-एक करके कापियां खोलने और बताने लगा: "यह देखिए – यह फ़्रांसीसी व्याकरण का पाठ है, यह इमला हमने लिखी है, यह रहे क्रियाओं के रूप, यह भूगोल की कापी है, यूरोप के प्रमुख नगरों और संसार के सभी भागों का वर्णन," इत्यादि। आधे घंटे तक मैं एकसुरी, धीमी आवाज़ में बताता गया और सारा समय बड़े शिष्ट बालक की भांति आंखें झुकाए रहा। मैं जानता था कि मां की समझ में यह सब नहीं आता, हो सकता है उन्हें पढ़ना-लिखना भी न आता हो, परंतु मुझे अपनी यही भूमिका बहुत अच्छी लग रही थी। किंतु मैं उन्हें थका न पाया – वह सुनती जा रही थीं, एक बार भी मुझे टोका नहीं, बड़े ध्यान से और आदर भाव से सुनती रहीं। अंततः मैं स्वयं ही ऊब उठा और मैंने बोलना बंद कर दिया। हां, मां की आंखों में तब उदासी थी और चेहरे पर दयनीय भाव।

आख़िर वह जाने को उठ खड़ी हुईं। सहसा स्वयं तुशार अंदर चला आया और भोंडे दम्भ से पूछने लगा: "क्या आप अपने पुत्र की सफलता पर संतुष्ट हैं?" मां कुछ बुदबुदाने लगीं और कृतज्ञता प्रकट करने लगीं; अन्तनीना वसील्येव्ना भी आ गईं। मां उन दोनों से विनती करने लगीं: "अनाथ को न छोड़ना – अब तो इसे अनाथ ही समझिए, इसे आप अपने आश्रय में रखे रहें..." उनकी आंखें भर आईं और वह उन दोनों के सामने कमर तक झुक गईं, ठीक वैसे ही जैसे मामूली लोग जब बड़े लोगों से कुछ मांगने आते हैं, तो झुक-झुककर सलाम करते हैं। तुशार और उसकी पत्नी को इसकी आशा तक न थी, प्रत्यक्षतः अन्तनीना वसील्येव्ना का दिल पिघल गया और उसने, निस्संदेह, तभी कॉफ़ी के कप के बारे में अपना मत बदल लिया। तुशार और भी अधिक अहंमन्यता के साथ, मानवीयता दर्शाते हुए बोला कि वह "बच्चों में भेदभाव नहीं करता, कि यहां सभी उसके अपने बच्चे हैं, और वह उनका पिता, कि वह मेरे साथ काउंटों और सीनेटरों के बच्चों के समान ही बर्ताव करता है और इसकी कद्र करनी चाहिए", इत्यादि, इत्यादि। मां झुक-झुककर

सलाम करती जा रही थीं, पर फिर वह सकपका गईं और आखिर मेरी ओर मुड़ीं। उनकी आंखों में आंसू चमके, बोलीं:

"अलविदा, मेरे लाल!"

और उन्होंने मुझे चूमा, नहीं, मैंने उन्हें अपना गाल चूमने दिया। वह तो शायद बारम्बार मुझे चूमना, बांहों में भरना, गले लगाना चाहती थीं, पर न जाने लोगों के सामने उन्हें स्वयं ही संकोच हो उठा, या किसी और बात से मन कड़वा हो गया, या समझ गईं कि मैं शर्मिंदा हो रहा हूं, बस वह जल्दी-जल्दी तुशार और उसकी पत्नी के सामने झुकीं और बाहर चल दीं। मैं खड़ा रहा।

"Mais suiver donc votre mêre." अन्तनीना वसील्येव्ना बोलीं। "il n'a pas de cœur cet enfant!"*

तुशार ने जवाब में कंधे बिचका दिए, निस्संदेह इसका अर्थ था: "आखिर मैं इसे नौकर यों ही तो नहीं समझता।"

आज्ञापालन करते हुए मैं मां के पीछे-पीछे सीढ़ियां उतरने लगा। हम बाहर निकल आए। मैं जानता था कि वे सब अब खिड़की से झांक रहे हैं। मां गिरजे की ओर मुड़ीं और तीन बार ज़मीन तक झुककर सलीब का चिह्न बनाया। उनके होंठ कांप रहे थे। घण्टे का नाद गूंज रहा था। वह मेरी ओर मुड़ीं, उनसे रहा न गया, दोनों हाथ मेरे सिर पर रख दिए और रो पड़ीं।

"मां, बस करिए न... शर्म आती है... वे सब खिड़की से देख रहे हैं..."

उन्होंने झटके से सिर उठाया और जल्दी-जल्दी बोलने लगीं:

"हे भगवान... भगवान तेरी रक्षा करे... हे देवदूत, हे माता मरियम, ईसा के प्यारे संत निकोलस रक्षा करो... हे भगवान, हे भगवान!" वह जल्दी-जल्दी बोलती जा रही थीं, और मेरे ऊपर ज़्यादा से ज़्यादा सलीब के निशान बनाने की कोशिश कर रही थीं। "मेरे लाल, मेरे लाड़ले! ठहर तो, मेरी आंख के तारे..."

---

* मां को छोड़ने जाओ न... कैसा निर्मम लड़का है! (फ़्रांसीसी)।

उन्होंने जल्दी से जेब में हाथ डाला और रूमाल निकाला, नीला सा चौखानेदार रूमाल था और उसके सिरे पर कसकर गांठ बंधी हुई थी। वह गांठ खोलने लगीं, पर गांठ खुलती ही न थी।

"अच्छा, लो रूमाल समेत ही रख लो, साफ़ है, काम आ जाएगा। क्षमा करना, बेटा, ज़्यादा तो मेरे पास हैं ही नहीं, ... लाल।"

मैंने रूमाल ले लिया, कहना चाहता था कि "हमें श्रीमान तुशार और अन्तनीना वसील्येव्ना से सब कुछ मिलता है और हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं", पर अपने को रोक लिया और रूमाल रख लिया।

आखिर वह चली गईं। मेरे लौटने से पहले ही काउंटों और सीनेटरों के बच्चे सारे माल्टे और प्रियानिक खा गए थे। बीस-बीस कोपेक के चार सिक्के लम्बेर्त ने तुरंत मुझ से छीन लिए; इन पैसों से लड़कों ने पेस्टरियां और चाकलेट खरीदे, मुझे दिए तक नहीं।

पूरे छह महीने बीत गए। अक्तूबर का महीना आया, तेज़ ठंडी हवाएं चलने लगीं, दिन-दिन भर पानी बरसता रहता। मैं मां को बिल्कुल भूल ही चुका था। ओह, तब मेरे हृदय में घृणा घर कर चुकी थी, मुझे सबसे घृणा थी, घोर घृणा; मैं अभी भी तुशार के कपड़ों पर ब्रुश करता था, पर रोम-रोम से उससे घृणा करता था और मेरी यह घृणा दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही थी। तभी एक दिन उदासी भरी संध्या के झुटपुटे में मैं अपने बक्से में कुछ ढूंढ़ रहा था और सहसा मुझे एक कोने में वह सादा सा नीला रूमाल दिखा। मैंने जैसे उसे बक्से में डाल दिया था, वैसे ही वह पड़ा हुआ था। मैंने उसे निकाला और कुछ कौतूहल के साथ देखने लगा; रूमाल के सिरे पर अभी तक गांठ का निशान बना हुआ था, सिक्कों की गोल छाप तक साफ़ नज़र आ रही थी। मैंने रूमाल वापस रख दिया और बक्सा नीचे खिसका दिया। यह त्योहार से पहले के दिन की बात थी, तभी गिरजे में जगराते की पूजा का घंटा बजा। सभी लड़के दोपहर के खाने के बाद ही अपने-अपने घर जा चुके थे। इस बार अकेला लम्बेर्त ही स्कूल में रह गया था, न जाने क्यों उसे लिवाने कोई नहीं आया था। वह अभी भी मुझे पहले की तरह पीटा करता था, पर अब बहुत कुछ मुझे बताने लगा था और उसे मेरी ज़रूरत थी। हम सारी शाम

लेपाभ * की पिस्तौलों की बातें करते रहे, जो हम दोनों में से किसी ने भी देखी नहीं थीं, और चेर्केसों ** की तलवारों की बातें, कि क्या धार होती है उनकी, कि अगर अपना एक दस्यु गिरोह बना लिया जाए तो कितना अच्छा रहे... दस बजे हम सोने को लेटे; मैंने सिर तक कम्बल ओढ़ा और सिरहाने तले से नीला रूमाल निकाल लिया: घंटे भर पहले मैं न जाने क्यों उसे बक्से में से निकाल लाया था और जब हमने बिस्तर लगाए, तो उसे सिरहाने तले रख दिया था। मैंने रूमाल अपने मुंह से लगा लिया और सहसा उसे चूमने लगा। "मां, मां," मैं बुदबुदा रहा था, मां को याद करके मेरा कलेजा मला जा रहा था। आंखें मूंदता, तो मुझे उसका चेहरा नज़र आता और कांपते होंठ, जब वह गिरजे के सामने सलीब के निशान बना रही थीं और फिर मुझ पर, और मैं कह रहा था: "शर्म आती है, देख रहे हैं"। "मां, प्यारी मां, जीवन में एक बार तो तुम मेरे पास आई थीं... कहां हो तुम अब, मां? तुम्हें अपने बेटे की याद आती है, जिससे मिलने तुम आई थीं? अब एक बार मुझे दिख जाओ, सपने में ही आ जाओ, बस एक बार, और मैं तुम्हें कह दूं कि तुम्हें कितना प्यार करता हूं, तुम्हारे गले लग जाऊं, तुम्हारी नीली आंखें चूम लूं, तुम्हें कह लूं कि अब मुझे तुमसे बिल्कुल शर्म नहीं लगती, कि मैं तब भी तुम्हें प्यार करता था, मेरे दिल में तब कैसा दर्द हो रहा था, बस मैं चाकर सा बना बैठा ही हुआ था। मां, तुम कभी न जान पाओगी कि मुझे तुमसे तब कितना प्यार था! मां, मेरी मां, कहां हो तुम, सुन रही हो मेरी आवाज़? मां, याद है वह कबूतर, गांव में?.."

* १६ वीं सदी में सारे यूरोप में मशहूर पिस्तौलों का निर्माता। – सं०
** काकेशिया में बसनेवाली एक जाति। – सं०

द्मीत्री ग्रिगोरोविच

रबड़ का पुतला

रूसी बाल-साहित्य में 'रबड़ का पुतला' सम्भवत: सबसे दुखद कहानी है। १८८३ में द्मीत्री वसील्येविच ग्रिगोरोविच ने यह कहानी लिखी। इस प्रतिभाशाली लेखक ने भूदासता के युग में रूसी जीवन का बड़ा सटीक और मार्मिक वर्णन किया है। अपने बचपन के कटु अनुभव उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुए हैं।

ग्रिगोरोविच का जन्म १८२२ में हुआ। उनके पिता ज़मींदार थे। द्मीत्री छोटे ही थे, जब पिता का देहांत हो गया। मां फ़्रांसीसी थीं, उन्हें रूसी नहीं आती थी और वह अपने चारों ओर के जीवन को नहीं समझती थीं। मां-बेटा भी कभी एक दूसरे को न समझ पाए। पिता के बूढ़े भूदास—निकोलाई बाबा ने द्मीत्री को पाला। कालांतर में लेखक ने लिखा: "अपने स्नेह और ममता से वंचित एकाकी बचपन में मुझे निकोलाई बाबा के साथ बिताए क्षणों में ही थोड़ा बहुत लाड़-प्यार मिला।"

क़िस्मत का मारा बच्चा निष्ठुर कलाबाज़ बेक्कर के हाथों पड़ जाता है, जो उसे आत्मसंतुष्ट और निठल्ले लोगों के तमाशे के लिए साधता है। यह कहानी पढ़कर अनाथ, असहाय बच्चे के एकाकी, स्नेहरिक्त जीवन की दुखदायी अनुभूति से पाठक का कलेजा मला जाता है।

(१)

कलाबाज़ बेक्कर का शागिर्द केवल इश्तहारों में ही "रबड़ का पुतला" कहलाता था; उसका असली नाम था पेत्या; वैसे तो उसे अभागा बालक कहना ही सबसे उचित होगा।

उसकी कहानी बिल्कुल छोटी सी है, लंबी व जटिल हो भी कैसे जबकि वह केवल आठ बरस का ही हुआ है!

वह पांच बरस का भी नहीं हुआ था, जब मां मर गई, पर फिर भी उसे मां याद थी। अभी तक उसे वह आंखों के सामने जीती-जागती नज़र आती: दुबली-पतली सी औरत, जिसके हल्के पयाल के रंग के झीने बाल सदा उलझे-पुलझे रहते और जो कभी उसे दुलारती, हाथ में जो आ जाता: हरा प्याज़, पाइ, मछली, रोटी उसके मुंह में ठूंसती जाती और कभी बेबात ही उस पर बरस पड़ती, चीखने-चिल्लाने लगती, जो भी हाथ में पड़ जाता, उससे जहां भी हाथ पड़ जाता मारने लगती। तो भी पेत्या उसे अक्सर याद करता था।

पेत्या को वह दिन भी अच्छी तरह याद था, जब मां को दफ़नाया गया ...

जनवरी की मनहूस सुबह थी; आसमान पर छाए नीचे बादलों से बारीक हिम गिर रहा था; हवा के झोंकों से चेहरे पर वह सुइयों की तरह चुभता और ठंड से जकड़ी सख्त ज़मीन पर लहरों सा बढ़ता जाता। पेत्या ताबूत के पीछे-पीछे नानी और वर्वारा धोबिन के बीच चल रहा था। उसके हाथों-पांवों में ठंड से असह्य जलन हो रही थी। वैसे भी उसके लिए इन औरतों के साथ चलना मुश्किल था। वह इधर-उधर से लिए गए कपड़ों में लिपटा हुआ था: कहीं से बूट ढूंढ़ लिए गए थे, जो उसके पैरों से बहुत बड़े थे; कफ़्तान भी इतना बड़ा था कि अगर उसे पीछे से उठाकर कमर पर बांध न दिया गया होता, तो वह चल ही न सकता; कनटोप भी जमादार से मांगा हुआ था, जो पल-पल बाद आंखों पर गिर जाता था और पेत्या रास्ता न देख पाता था।

कब्रगाह से लौटते हुए नानी और वर्वारा बड़ी देर तक ये बातें करती रहीं कि अब लड़के का क्या किया जाए। कहां उसे कुछ सीखने-वीखने को दिया जाए? और कौन इस सबका इंतजाम करे?

लड़का इधर-उधर कभी एक कोने में, कभी दूसरे कोने में, कभी एक बुढ़िया, कभी दूसरी के पास रहता रहा। अगर वर्वारा धोबिन उसकी परवाह न करती, तो न जाने उसका क्या हुआ होता।

धोबिन मख़वाया सड़क पर एक बड़े मकान के पिछले अहाते में तहखाने वाली मंज़िल में रहती थी। उसी अहाते में ऊपर की मंज़िल में कुछ सरकस वाले रहते थे। उनके पास कुछ कमरे थे, जो बगल के अंधेरे गलियारे से एक दूसरे से जुड़े हुए थे। वर्वारा सबको अच्छी तरह जानती थी, क्योंकि वह हमेशा उनके कपड़े धोती थी। उनके यहां जाते हुए वह अक्सर पेत्या को अपने साथ ले जाती थी। सब को उसकी कहानी मालूम थी: सब जानते थे कि वह अनाथ है, उसका कोई आगा-पीछा नहीं। बातों-बातों में वर्वारा कई बार यह जता चुकी थी कि अगर कोई अनाथ पर तरस खाकर उसे अपना काम सिखाने को अपने पास रख ले, तो बड़ा अच्छा हो। पर कोई हां न करता था; लगता था, किसी को अपने झंझटों से ही फ़ुरसत न थी। बस एक ही ऐसा साहब था, जो न

हां कहता था, न ना। कभी-कभी यह साहब बड़े ध्यान से लड़के को देखता। यह था जर्मन कलाबाज़ बेक्कर।

यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उसके और वर्वारा के बीच गुप-चुप कुछ बात चल रही थी, क्योंकि एक दिन ऐसा मौक़ा देखकर, जब बाक़ी सरकस वाले रिहर्सल पर चले गए और घर में अकेला बेक्कर रह गया, वर्वारा जल्दी-जल्दी पेत्या को ऊपर ले गई और सीधे बेक्कर के कमरे में घुस गई।

बेक्कर बैठा किसी का इंतज़ार करता ही लगता था। वह कुर्सी पर बैठा चीनी मिट्टी का पाइप पी रहा था, जिसकी डंडी मुड़ी हुई थी और उस पर झालर लटक रही थी। उसके सिर पर छोटे-छोटे रंग-बिरंगे मोतियों से काढ़ी चपटी टोपी एक ओर को खिसकी हुई थी। उसके सामने मेज़ पर बीयर की तीन बोतलें रखी हुई थीं – दो ख़ाली और एक अभी-अभी शुरू की गई।

कलाबाज़ का फूला हुआ चेहरा और सांड सी मोटी गर्दन लाल थी; अहं से भरपूर वह तनकर बैठा था। उसे देखकर इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं रह जाता था कि यहां, घर पर भी वह अपने डीलडौल की ख़ूबसूरती पर गुमान कर रहा है।

"लो, कार्ल बग्दानविच ... यह लड़का है ..." पेत्या को आगे बढ़ाते हुए वर्वारा ने कहा।

"अच्छा बात है," कलाबाज़ बोला। "मगर हम ऐसा नहीं देखता; लड़का का कपड़ा उतारो ..."

पेत्या अभी तक बुत बना खड़ा था और सहमी-सहमी नज़रों से बेक्कर को देख रहा था; उसकी यह बात सुनकर वह पीछे को लपका और वर्वारा का लहंगा कसकर पकड़ लिया। बेक्कर ने दुबारा से उसके कपड़े उतारने को कहा और वर्वारा पेत्या का मुंह अपनी ओर मोड़कर उसके कपड़े उतारने लगी, तो पेत्या ने थरथराते हुए उसे पकड़ लिया, चीखने और छटपटाने लगा, जैसे बावर्ची की छुरी तले चूज़ा।

"अरे, क्या बात है? बुद्धू कहीं का! डरता काहे को है? उतारने दे कपड़े, भैया ... कोई बात नहीं ... देखो तो, कैसा बुद्धू है!" धोबिन लड़के की

उंगलियां छुड़ाने की कोशिश करते हुए और साथ ही जल्दी-जल्दी उसकी पतलून के बटन खोलते हुए कहती जा रही थी।

पर लड़का कुछ करने न देता था ; वह न जाने क्यों बुरी तरह से डर गया था और कभी बेल की तरह बल खाता या एकदम सिमट जाता या फ़र्श पर लेट-लेट जाता। चीख-चीखकर उसने सारा घर सिर पर उठा लिया। आखिर कार्ल बग्दानविच का धीरज टूट गया। उसने पाइप मेज़ पर रखा और लड़के के पास आया, इस बात की ओर ज़रा भी ध्यान दिए बिना कि लड़का और भी ज़ोर से लोटने लगा बेक्कर ने उसे जल्दी से अपनी बाहों में भर लिया। पेत्या को पता भी न चला कब वह कलाबाज़ के मोटे घुटनों के बीच दब गया। कलाबाज़ ने पलक झपकते ही उसकी कमीज़ और पतलून उतार दी ; फिर उसने तिनके की तरह उसे उठाया और अपने घुटनों पर लिटाकर उसकी छाती और बगलों को टटोलकर देखने लगा। जहां उसे तुरंत संतोष न होता, वहां वह अंगूठे से दबाता और हर बार जब लड़का छटपटाता, उसे अपना काम न करने देता, तो वह उसे चपत लगा देता।

धोबिन को पेत्या पर तरस आ रहा था : कार्ल बग्दानविच बहुत ही ज़ोर से उसे दबा रहा था ; पर दूसरी ओर वह कुछ कहते हुए भी डरती थी, क्योंकि खुद ही लड़के को यहां लाई थी और कलाबाज़ ने वायदा किया था कि अगर लड़का ठीक निकला, तो वह उसे अपने पास रख लेगा, काम सिखाएगा। लड़के के सामने खड़ी होकर वह जल्दी-जल्दी उसके आंसू पोंछ रही थी, उसे मना रही थी कि रोए नहीं, कि कार्ल बग्दानविच उसका कुछ नहीं बिगाड़ेंगे, वह तो बस उसे देखेंगे ही ...

लेकिन जब कलाबाज़ ने अचानक लड़के को घुटनों के बल बिठाकर उसकी पीठ अपनी ओर कर ली, कंधे पीछे को मोड़ने लगा और पखौरों के बीच उंगलियों से चापने लगा, जब बच्चे की नंगी, सूखी सी छाती पर पसली आगे को उभर आई, उसका सिर पीछे को झटक गया, पीड़ा एवं आतंक से उसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई, तब वर्वारा से न रहा गया ; वह उसे छुड़ाने को लपकी। इससे पहले कि वह ऐसा कर पाती बेक्कर ने लड़के को उसके हाथों में दे दिया। पेत्या तुरंत ही होश में आ गया – बस थरथराता और हिचकियां लेता जाए।

"बस, बेटा, बस! देखा, कुछ भी तो नहीं किया तुझे!.. कार्ल बग्दानविच तो बस तुझे देखना चाहते थे..." बच्चे को दुलारते-पुचकारते हुए धोबिन कहती जा रही थी।

उसने चुपके से बेक्कर की ओर देखा; बेक्कर ने सिर हिला दिया और गिलास में बीयर भर ली।

दो दिन बाद जब लड़के को बेक्कर के हवाले करने का समय आया तो धोबिन को अपनी सारी चालाकी दिखानी पड़ी। धोबिन ने अपने पैसों से पेत्या के लिए छींट की दो कमीज़ें और पीपरमेंट के प्रियानिक ख़रीदे, उसे बहुत समझाया-बुझाया, लाड़-प्यार किया, पर वह मानता ही न था। बेक्कर के कमरे में बात हो रही थी, सो वह रोने से डरता था। वह अपना आंसुओं से फूला मुंह उसके दामन में छिपा लेता और जैसे ही वह दरवाज़े की ओर क़दम बढ़ाती कसकर उसके हाथ पकड़ लेता।

आख़िर कलाबाज़ इस सबसे आजिज़ आ गया। उसने लड़के का कालर पकड़कर उसे वर्वारा के लहंगे से अलग किया और जैसे ही धोबिन के पीछे दरवाज़ा बंद हुआ, उसे अपने सामने खड़ा किया और कहा कि उसकी ओर देखे।

पेत्या यों थरथरा रहा था, मानो उसे तेज़ बुख़ार हो; उसका मरियल सा चेहरा सिकुड़ गया, उसमें दयनीय, बूढ़ों का सा भाव आ गया।

बेक्कर ने उसकी ठोड़ी पकड़ी, मुंह अपनी ओर घुमाया और फिर से अपनी ओर देखने को कहा।

"ऐ, लड़का, सुन," वह बोला और पेत्या की नाक के सामने तर्जनी चमकाई, "अगर तू उधर चाहता," उसने दरवाज़े की ओर इशारा किया, "तो इधर पाता!.." उसने पीठ से थोड़ी नीचे दिखाया। "और ज़ोर-ज़ोर से पाता।" लड़के को छोड़कर वह बोला और बाक़ी बीयर पी ली।

उसी दिन वह पेत्या को सरकस में ले गया। वहां भाग-दौड़ मची हुई थी, सामान बांधा जा रहा था।

अगले दिन सरकस अपने सारे माल-असबाब, लोगों और घोड़ों के साथ गर्मियों भर के लिए रीगा जा रहा था।

पहले क्षणों में तो इस ख़बर और नई-नई छापों से पेत्या सहमा ही, उसके

मन में कोई कौतूहल नहीं जागा। वह एक कोने में दुबक गया और जंगली जानवर की तरह इधर-उधर जाते लोगों को देखने लगा, जो अजीबोग़रीब चीज़ें कहीं ले जा रहे थे। किसी-किसी की नज़र अनजान लड़के पर पड़ी, लेकिन उसकी ओर ध्यान देने की किसी को फ़ुरसत न थी और सब पास से गुज़रते जा रहे थे।

रीगा तक के दस दिनों के सफ़र में पेत्या अपने हाल पर छूटा रहा। डिब्बे में अब उसके आस-पास जो लोग थे – वे बिल्कुल अनजान न रहे थे। कइयों का वह आदी हो गया था ; कई लोग हंसमुख थे, हंसी-ठट्ठा करते, गाने गाते थे और उसे उनसे डर नहीं लगता था। जोकर एड्वर्ड्स जैसे कुछ ऐसे भी थे, जो आते-जाते उसका गाल थपथपा देते। एक बार एक औरत ने उसे माल्टे की एक फांक भी दी। संक्षेप में, यह कहिए कि वह धीरे-धीरे यहां का आदी हो रहा था और उसे यहां अच्छा भी लगता, बशर्ते कार्ल बग्दानविच की जगह कोई और उसे अपने पास रख लेता। उसका वह आदी न हो पा रहा था ; उसे देखते ही पेत्या गुमसुम हो जाता, सिमट सा जाता और बस इसी फ़िक्र में रहता कि कहीं रुलाई न फूट पड़े।

जब कलाबाज़ ने उसे काम सिखाना शुरू किया, तब और भी मुश्किल दिन आए। पहले प्रयोगों के बाद बेक्कर को यह विश्वास हो गया कि लड़का उसने ठीक ही चुना है। पेत्या रोयें सा हल्का-फुल्का था और उसके जोड़ों में लचक थी ; हां इन प्राकृतिक गुणों का लाभ उठाने के लिए पट्ठों में पर्याप्त शक्ति नहीं थी, लेकिन यह कोई बड़ी बात न थी। बेक्कर को इस बात में कतई संदेह न था कि अभ्यास से शक्ति आ जाएगी। इसका सबूत तो कुछ हद तक वह अभी ही देख रहा था। महीने भर तक वह सुबह-शाम लड़के को फ़र्श पर बिठाकर पैरों तक सिर झुकाने का अभ्यास कराता रहा था और अब पेत्या उसकी मदद के बिना ख़ुद ही ऐसा कर लेता था। उसके लिए पीछे मुड़ना और एड़ियों से सिर को छूना कहीं अधिक मुश्किल था ; पर धीरे-धीरे वह यह भी सीख रहा था। वह दौड़ते हुए कुर्सी के ऊपर से भी बड़ी सफ़ाई से कूद जाता था ; लेकिन जब उस्ताद यह मांग करता कि वह छलांग लगाकर पैरों पर नहीं, बल्कि हाथों के बल गिरे और टांगें हवा में रहें, तो ऐसा वह बहुत कम

ही कर पाता था। इस असफलता या ऐसे करते हुए लगी चोट का ही दुख होता तो कोई बड़ी बात न थी ; मुसीबत तो यह थी कि हर बार उसे बेक्कर के घूसे खाने पड़ते। लड़के के पट्ठे पहले की ही भांति कमज़ोर और सूखे थे। प्रत्यक्षतः उन्हें ज़ोर लगाकर मज़बूत करने की आवश्यकता थी।

बेक्कर के कमरे में ऊपर से जुड़ी और नीचे से खुलनेवाली दोहरी सीढ़ी लाई गई। उसकी पटरियों पर फ़र्श के समानांतर कुछ ऊंचाई पर एक डंडा रखा गया। बेक्कर के आदेश पर पेत्या को दौड़ते हुए डंडा पकड़ लेना होता और फिर हवा में लटके रहना होता – पहले पांच मिनट , फिर दस मिनट। दिन में कई बार उसे यह करना पड़ता। इस अभ्यास में विविधता बस यही थी कि कभी तो वह यों ही हवा में लटकता रहता और कभी उसे डंडा पकड़े हुए सारा धड़ पीछे को करना होता और टांगों को डंडे और सिर के बीच से निकालना होता। इस अभ्यास का अंतिम लक्ष्य यह था कि लड़का पैरों के पंजों से डंडा पकड़ ले और अचानक हाथ छोड़कर पंजों के बल लटका रहे। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जब पांव ऊपर होते और सिर नीचे, तो पेत्या के चेहरे पर मुस्कान फैली होनी चाहिए थी ; ऐसा इसलिए करना आवश्यक था कि दर्शक प्रभावित हों, उन्हें किसी भी हालत में यह आभास नहीं होना चाहिए था कि मांस-पेशियों के तन जाने पर कितनी कठिनाई होती है, लड़के के कंधों के जोड़ों में कितना दर्द होता है और छाती कैसे दबी जाती है।

यह परिणाम बालक की ऐसी हृदयविदारक चीखों के साथ पाया जाता कि बेक्कर के साथी उसके कमरे में दौड़े आते और बालक को उसके हाथों से छुड़ाते। गाली-गलौज और झगड़ा होने लगता और इसके बाद पेत्या की और भी बुरी शामत आती। हां, कभी-कभी ऐसा हस्तक्षेप शांतिपूर्वक समाप्त होता। एड्वर्ड्स जोकर के आने पर ऐसा होता। वह बीयर और कुछ चबैने के साथ मामला रफ़ा-दफ़ा करता। इसके बाद की बातचीत में एड्वर्ड्स हर बार यह समझाने का जतन करता कि बेक्कर का सिखाने का तरीक़ा बिल्कुल ग़लत है, कि मार-पीट और डरा-धमकाकर बच्चों को तो क्या, कुत्तों, बंदरों को भी कुछ नहीं सिखाया जा सकता, कि भय से मन में संकोच पैदा होता है और संकोच कलाबाज़ का सबसे बड़ा दुश्मन है, क्योंकि तब वह अपनी शक्ति में

विश्वास और निडरता खो बैठता है, और इनके बिना तो बस उसकी नस चढ़ जाएगी या वह गर्दन नहीं, तो रीढ़ की हड्डियां ही तुड़वा बैठेगा।

आश्चर्य की बात थी: हर बार जब बहस और बीयर से जोश में आकर एड्वर्ड्स यह दिखाने लगता कि कोई करतब कैसे करना चाहिए तो पेत्या बड़ी तत्परता और फुर्ती से वह अभ्यास कर दिखाता।

सभी सरकस वाले अब बेक्कर के शागिर्द को जानते थे। बेक्कर ने उसके लिए जोकर के कपड़े ले लिए थे, उसके मुंह पर पाउडर पोतकर और गालों पर सुर्खी लगाकर वह उसे तमाशे में ले जाता। कभी-कभी उसे परखने के लिए बेक्कर अचानक उसकी टांगें ऊपर उठा लेता और हाथों के बल रेत पर दौड़ाता। पेत्या तब अपना पूरा ज़ोर लगाता, लेकिन अक्सर कुछ दूर दौड़ने के बाद उसकी बांहें जवाब दे जातीं और सिर रेत में जा लगता, जिससे दर्शक ठट्ठा लगा उठते।

इसमें कोई संदेह न था कि एड्वर्ड्स से पेत्या बहुत ज़्यादा सीख सकता था; बेक्कर के हाथों में उसके लिए अपने हुनर में आगे बढ़ना मुश्किल हो रहा था। पेत्या पहले दिन की ही भांति अपने उस्ताद से डरता था। अब इसके साथ ही मन में एक और भावना भी उठने लगी थी, जिसे वह समझ तो नहीं पाता था, लेकिन जो उसमें ज़ोर पकड़ती जा रही थी, उसके विचारों और भावों पर हावी हो रही थी, जिसके कारण रात को तोशक पर लेटे हुए वह बेक्कर के खर्राटे सुन-सुनकर आंसू बहाता रहता।

और बेक्कर था कि लड़के को अपने साथ परचाने के लिए कुछ भी नहीं करता था, बिल्कुल कुछ नहीं। यहां तक कि जब पेत्या कोई करतब अच्छी तरह कर लेता, तो भी बेक्कर उसे प्यार का एक शब्द न कहता; बस अपने पहाड़ जैसे धड़ के ऊपर से उस पर एक नज़र डाल देता कि हां ठीक है। बेक्कर को इस बात की कोई परवाह न थी कि वर्वारा धोबिन ने लड़के को जो दो कमीज़ें दी थीं वे अब चीथड़े-चीथड़े हो गई थीं, कि लड़के के नीचे पहनने के कपड़े दो-दो हफ़्ते तक बदले न जाते, कि उसके कानों और गर्दन पर मैल की तहें जम गई थीं, कि उसके बूटों ने दांत बा दिए थे, उनमें पानी और कीचड़ भर जाता था।बेक्कर के साथी और सबसे ज़्यादा एड्वर्ड्स उसे इसका उलाहना

देते थे ; जवाब में बेक्कर अधीरता से सीटी बजाता रहता और अपनी पतलून पर कोड़ा सटकारता रहता।

वह पेत्या को काम सिखाता जा रहा था और हर बार ज़रा सी भी ग़लती होने पर उसे सज़ा देता।

सरकस के पीटर्सबर्ग लौट आने के बाद की बात है। एड्वर्ड्स ने पेत्या को एक पिल्ला ले दिया। लड़के की ख़ुशी का ठिकाना न था, वह घुड़साल में, गलियारों में उसे लिए दौड़ रहा था, सबको पिल्ला दिखा रहा था, और बार-बार उसकी गीली सी, गुलाबी थूथनी चूम रहा था।

बेक्कर का तमाशा देखकर लोगों ने उसे तालियां बजाकर दुबारा नहीं बुलाया था और इस बात पर जला-भूना वह अंदर के गलियारे में लौट रहा था। पेत्या के हाथ में पिल्ला देखकर उसने छीन लिया और जूते की नोक से उसे ज़ोर से ठोकर मारी। पिल्ले का सिर दीवार से टकराया और वह वहीं ढेर हो गया।

पेत्या फूट-फूटकर रो पड़ा और उसी क्षण ड्रेसिंग रूम से निकले एड्वर्ड्स की ओर लपका। आस-पास लोगों को बुरा-भला कहते सुनकर बेक्कर और भी ज़्यादा खिसिया उठा, उसने झटके से पेत्या को एड्वर्ड्स के हाथों से छीना और कसकर थप्पड़ दे मारा।

पेत्या हल्का-फुल्का और लचकीला ज़रूर था, पर फिर भी वह रबड़ का पुतला नहीं, अभागा बालक ही था।

(२)

काउंट लिस्तमीरव के घर में बच्चों के कमरे दक्षिण को बाग़ की ओर थे। क्या शानदार जगह थी! जब आसमान पर सूरज चमकता होता तो सुबह से शाम तक कमरों में धूप रहती ; केवल निचले भाग में खिड़कियों पर नीले पर्दे लगाए गए थे – बच्चों की आंखों को तेज़ प्रकाश से बचाने के लिए। इसी उद्देश्य से सभी कमरों में कालीन बिछाए गए थे – वे भी नीले रंग के और दीवारों पर लगाए गए कागज़ अधिक उजले रंगों के नहीं थे।

एक कमरे में दीवार का सारा निचला भाग खिलौनों से भरा हुआ था। रंग-बिरंगी अंग्रेज़ी किताबें और कापियां, गुड़ियां और उनके पालने, तसवीरें, अल्मारियां, छोटी-छोटी रसोइयां, चीनी मिट्टी के सेट, पहियेदार भेड़ें और कुत्ते – यह सब लड़कियों के हिस्से में था और लड़कों के हिस्से में थे जस्ते के सिपाही, बड़ी-बड़ी आंखोंवाले सब्ज़े घोड़ों की त्रोइका गाड़ी, जिस पर घुंघरू लगे हुए थे, बड़ा सा सफ़ेद बकरा, घुड़सवार, ढोल और पीतल का बाजा, जिसकी आवाज़ से अंग्रेज़ मिस ब्लिक्स हमेशा झुंझलाती थी। यह कमरा खिलौनों का कमरा ही कहलाता था।

मास्लेनित्सा * के दिनों में बुधवार को कमरे में बड़े उत्साह का वातावरण था। बच्चों की ख़ुशी भरी चीखें गूंज रही थीं। इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी ; इस दिन बच्चों से कहा गया था :

"बच्चो, मास्लेनित्सा के शुरू से ही तुम बड़े अच्छे बच्चे रहे हो, कहना मानते रहे हो। आज बुधवार है ; अगर आगे भी तुम ऐसे ही रहे, तो शुक्रवार को तुम्हें सरकस ले जाएंगे!"

यह बात सोन्या मौसी ने कही थी।

मौसी का यह वायदा करने की देर थी कि बच्चे हुर्रा-हुर्रा करने लगे, उछलने-कूदने लगे और भी कई तरह से अपनी ख़ुशी दिखाने लगे। इस उमंग में पांचवर्षीय बालक पाफ़ ने सब को आश्चर्यचकित कर दिया। वह सदा से बड़ा भारी-भरकम था, पर अब कहानियां सुनकर और यह जानकर कि सरकस में वह क्या देखेगा, वह अचानक हाथों-पैरों पर खड़ा हो गया और बाईं टांग ऊपर उठाकर अपनी जीभ निकालकर गाल पर घुमाने लगा और कमरे में उपस्थित लोगों को अपनी किर्गिज़ आंखों से देखता हुआ जोकर बनने लगा।

"उठाओ इसे, उठाओ जल्दी से, नहीं तो इसके सिर पर ख़ून चढ़ जाएगा।"

---

* फ़रवरी के अंत और मार्च के आरम्भ में इसाइयों के चालीसे (महा उपवास) के पहले एक हफ़्ते तक मनाया जानेवाला त्योहार। इसके दौरान पूए पकाए जाते हैं और खेल-तमाशे होते हैं। – सं०

फिर से होहल्ला होने लगा, पाफ़ के चारों ओर उछल-कूद होने लगी, जो उठना ही न चाहता था और कभी एक टांग, तो कभी दूसरी टांग उठा रहा था।

"बच्चो!.. बस, अब बस!.. लगता है, तुम अब समझदार नहीं बनना चाहते ... कहना नहीं मानना चाहते," सोन्या मौसी कह रही थीं, जिन्हें सबसे ज़्यादा उलझन इसी बात की थी कि उन्हें ग़ुस्सा करना नहीं आता था।

वह इन्हें "अपने बच्चे" ही कहती थीं और उन पर लट्टू थीं। बच्चे सचमुच ही बड़े प्यारे थे।

बड़ी बच्ची वेरा आठ साल की हो गई थी, उसके बाद थी छह साल की ज़ीना और लड़का, जैसा कि कहा जा चुका है पांच साल का था। उसका नाम था, पावेल, पर उसे घर पर कई तरह से पुकारा जाता रहा: बेबी, लट्टू, लड्डू और अंतत: पाफ़। अब सब उसे इस नाम से ही पुकारते थे। लड़का नाटा सा, गोल-मटोल था, गोरा, गदबद बदन, गेंद सा सिर और गोल चेहरा, जिस पर एकमात्र विशिष्टता थी उसकी छोटी-छोटी किर्गिज़ आंखें, जो खाना परोसे जाने पर या खाने की चर्चा होने पर ही पूरी तरह खुलती थीं।

जिस क्षण सरकस जाने का वायदा किया गया, उसी क्षण से बड़ी बेटी सतर्क हो गई और भाई-बहन पर पूरी तरह नज़र रखने लगी। उनके बीच कोई झगड़ा होने ही लगता, तो वह तुरंत उनके पास पहुंच जाती और रोबीली मिस ब्लिक्स की ओर देखती हुई जल्दी-जल्दी ज़िज़ी और पाफ़ के कानों में कुछ कहने लगती, बारी-बारी उन्हें चूमती और फिर से सुलह-शांति करा देती।

लो, इतनी अधीरता से प्रतीक्षित शुक्रवार भी आ गया। भोजन कक्ष की बड़ी घड़ी ने बारह बजाए। उसी क्षण एक चोबदार ने दरवाज़े खोल लिए और मिस ब्लिक्स तथा नौकरानी के साथ बच्चों ने भोजन कक्ष में प्रवेश किया। नाश्ता सदा की तरह बड़े सलीक़े से किया गया।

वेरा ने ज़िज़ी और पाफ़ को सचेत कर दिया था, सो नाश्ता करते हुए वे बिल्कुल चुप रहे; वेरा भाई-बहन पर नज़र लगाए हुए थी और उनकी हर हरकत का ख़्याल रख रही थी।

नाश्ता समाप्त हो जाने पर मिस ब्लिक्स ने काउंटेस को यह बताना अपना कर्त्तव्य समझा कि इन पिछले दिनों में बच्चों का आचरण जितना अच्छा रहा

है, उतना पहले कभी नहीं था। काउंटेस बोलीं कि वह दीदी से यह बात सुन चुकी हैं और इसलिए उन्होंने कह दिया है कि आज शाम को सरकस में एक बॉक्स ले लिया जाए।

वेरा इतनी देर से अपनी खुशियों के बांध को रोके हुए थी, यह समाचार सुनकर अब उससे न रहा गया। वह झट से कुर्सी से उतरी और इतने ज़ोर से काउंटेस के गले लगने लगी कि क्षण भर को उसके घने बालों के पीछे उनका चेहरा छिप गया।

वेरा ग्रैंड पियानो के पास गई, जिस पर इश्तहार रखे हुए थे। उनमें से एक पर हाथ रखकर उसने अपनी नीली-नीली आंखें मां की ओर उठाईं और उतावली भरे कोमल स्वर में पूछा :

"मां ... ले लें ?.. यह पर्चा ले लें ?"

"ले लो।"

"ज़िज़ी ! पाफ़ !" वेरा खुशी से चिल्लाई और इश्तहार को हिलाने लगी। "जल्दी चलो ! मैं तुम्हें बताऊंगी आज हम सरकस में क्या-क्या देखेंगे : सब कुछ बताऊंगी !.. चलो अपने कमरों में चलें !.."

"वेरा ! वेरा ..." काउंटेस ने मीठी उलाहना के साथ कहा।

पर वेरा अब नहीं सुन रही थी : वह उड़ती जा रही थी और उसके पीछे भाई-बहन। मिस ब्लिक्स हांफती हुई मुश्किल से उनके पीछे चल पा रही थी।

खिलौनों के कमरे में धूप खिली हुई थी, अब वहां की रौनक और भी बढ़ गई।

नीची सी मेज़ को खिलौनों से खाली करके इश्तहार रखा गया।

वेरा का आग्रह था कि सभी उपस्थित लोग : सोन्या मौसी और मिस ब्लिक्स, संगीत की अध्यापिका और धाय, जो अभी-अभी मुन्ने को उठाए अंदर आई थी – सभी मेज़ के पास बैठ जाएं। ज़िज़ी और पाफ़ को बिठाना सबसे मुश्किल था। वे एक दूसरे को धकेलते हुए कभी एक ओर, तो कभी दूसरी ओर से वेरा के पीछे पड़ रहे थे, स्टूल पर चढ़ जाते, मेज़ पर झुक जाते और अपनी कोहनियों से आधा इश्तहार ढंक लेते। आखिर मौसी की मदद से उन्हें भी बिठा दिया गया।

वेरा ने बाल पीछे झटके, इश्तहार पर झुकी और बड़े जोश से पढ़ा :

" 'रबड़ का पुतला। पंद्रह फ़ुट ऊंचे पोल पर हवाई कलाबाज़ी!' ओह, मौसी! यह तो आप हमें बताइये! आपको बताना ही होगा! यह कैसा पुतला है? पुतला कैसे कलाबाज़ी दिखाएगा?"

"यह शायद कोई लड़का है, जो बहुत लचकीला है, इसलिए उसे रबड़ का पुतला कहते हैं... तुम खुद ही देख लेना।"

"नहीं, नहीं, आप हमें बताइए न, वह पोल पर हवा में कलाबाज़ी कैसे करेगा?"

"कैसे करेगा?" ज़िज़ी भी बोली।

"कैसे?" पाफ़ के मुंह से बस इतना ही निकला।

"बच्चो, तुम तो पता नहीं क्या-क्या पूछने लगते हो... मुझे सचमुच कुछ नहीं पता। आज शाम को तुम अपनी आंखों से यह सब देख लोगे। वेरा, तुम आगे पढ़ो न। आगे क्या है?"

आगे क्या था, यह वेरा ने बिना किसी विशेष उत्साह के ही पढ़ा; इसमें किसी की रुचि न रही थी। सारी रुचि रबड़ के पुतले पर ही केंद्रित थी; अब उसी की बातें होने लगीं, अटकलें लगाई जाने लगीं और बहस भी होने लगी।

ज़िज़ी और पाफ़ आगे क्या है, यह सुनना भी नहीं चाहते थे, वे अपने-अपने स्टूल से उतर गए और शोर मचाते हुए खेलने लगे। वे यह कल्पना कर रहे थे कि रबड़ का पुतला क्या तमाशा दिखाएगा। पाफ़ फिर से हाथों-पैरों पर खड़ा हो गया, जोकर की तरह बाईं टांग ऊपर उठाकर और जीभ को गाल तक ले जाते हुए वह सबको अपनी किर्गिज़ आंखों से देखता। हर बार जब वह ऐसा करता तो सोन्या मौसी आह भरतीं, उन्हें डर था कि कहीं उसके सिर पर ख़ून न चढ़ जाए।

जल्दी-जल्दी इश्तहार पढ़कर वेरा भी भाई-बहन के साथ खेलने लगी।

खिलौनों के कमरे में पहले कभी भी ऐसा आनंद का वातावरण न बना था। बाग़ के पीछे मकानों की छतों पर झुकते सूरज की किरणें भी हर्षोल्लास से भरपूर, लाल-लाल गालों वाले बच्चों के साथ खेल रही थीं, कमरे में बिखरे रंग-बिरंगे खिलौनों को चमका रही थीं, कालीन पर फैल रही थीं, सारे

कमरे को गुलाबी धूप से भर रही थीं। यहां खुशियों और उमंगों का राज प्रतीत होता था।

खाना खाते हुए बच्चे यही पूछते रहे कि मौसम कैसा है और कितने बजे हैं। सोन्या मौसी व्यर्थ ही यह जतन करती रहीं कि बच्चों के विचारों को दूसरी दिशा में मोड़ें और उन्हें कुछ शांत कर पाएं। खाने के बाद मौसी बच्चों के कमरे में लौटीं ; उनका चेहरा खुशी से चमक रहा था। वह बोलीं : काउंट और काउंटेस ने बच्चों को कपड़े पहनाने और सरकस ले जाने को कहा है।

कमरे में तूफ़ान मच गया। अब यह धमकी देनी पड़ी कि जो कहना नहीं मानेगा, ठीक से कपड़े नहीं पहनाने देगा उसे घर पर छोड़ जाएंगे। थोड़ी देर में बच्चों को बड़ी सीढ़ी पर ले जाया गया। वहां फिर से ध्यान से देखा गया, कपड़े ठीक किए गए और अंततः दरवाज़े से बाहर निकाला गया। वहां चार सीटोंवाली बंद स्लेज गाड़ी घोड़ों से जुती खड़ी थी। वह चारों ओर हिम से घिरी थी।

गाड़ी के दरवाज़े बंद हुए, चोबदार उछलकर कोच-बॉक्स पर बैठ गया और वे चल दिए।

(३)

सरकस का शो अभी शुरू नहीं हुआ था। सरकस ठसाठस भरा हुआ था, खास तौर पर ऊपर की कतारों में खूब भीड़ थी। बड़े लोग हमेशा की तरह देर से आ रहे थे। बैंड बज रहा था। सरकस के गोल रिंग पर अगल-बगल और ऊपर से तेज़ रोशनी पड़ रही थी। पांचों से उसे सपाट कर दिया गया था और वह अभी खाली था।

सहसा बैंड की धुन तेज़ हो गई। अस्तबल की ओर का पर्दा खुला और उधर से डोरियों वाली लाल वार्दियां तथा ऊंचे चमकीले बूट पहने कोई बीस लोग आए। उनके सिरों पर बालों की कुंडलें बनी हुई थीं और क्रीम से चमक रही थीं।

सरकस में ऊपर से नीचे तक प्रशंसा भरी फुसफुसाहट दौड़ गई। तमाशा शुरू हो रहा था। अभी ये वर्दीधारी सदा की तरह दो-दो की कतार बना भी न पाए थे कि अस्तबल की ओर से खिलखिलाहट और चीं-चीं करके हंसने की ज़ोरदार आवाज़ आई, जोकरों का झुंड का झुंड लोटता-पोटता, हाथों पर कूदता, हवा में उछलता रिंग पर आ पहुंचा।

सबसे आगे जो जोकर था उसके कोट की छाती और पीठ पर बहुत बड़ी तितली बनी हुई थी। दर्शक अपने प्यारे जोकर एड्वड्र्स को पहचान गए।

"हुर्रा, एड्वड्र्स, हुर्रा।" चारों ओर से आवाज़ें आईं।

परंतु इस बार एड्वड्र्स ने दर्शकों की आशा के अनुसार रंग नहीं जमाया। उसने कोई ख़ास करतब नहीं दिखाया; एक-दो बार सिर के बल कलाबाजियां खाईं, फिर नाक पर मोर का पंख संभालते हुए रिंग का चक्कर लगाया और जल्दी से चला गया। दर्शकों ने बहुत तालियां बजाईं, आवाज़ें लगाईं, पर वह फिर से रिंग पर नहीं आया।

उसके स्थान पर जल्दी-जल्दी एक मोटा सफ़ेद घोड़ा लाया गया और पंद्रह वर्ष की सुंदर युवती अमालिया ने चारों ओर झुकते हुए आदाब बजाया।

अमालिया के बाद बाज़ीगर आया; बाज़ीगर के बाद सधे हुए कुत्तों के साथ जोकर; उसके बाद रम्मे पर नाच हुआ; फिर घोड़े; बिना काठी के घुड़सवारी हुई, फिर दो घोड़ों पर काठी के साथ – संक्षेप में यह कि इंटरवल तक तमाशा अपने क्रम से चलता रहा।

"मौसी, प्यारी मौसी, अब रबड़ का पुतला होगा न?" वेरा ने पूछा।

"हां, इश्तहार में लिखा है कि वह इंटरवल के बाद होगा। तो बच्चो, कैसा लग रहा है? मज़ा आ रहा है?"

"ओह, बड़ा मजा आ रहा है!.. बड़ा!" वेरा ने ख़ुशी से चहचहाते हुए कहा।

"ज़िज़ी, तुम्हें? पाफ़, तुम्हें मजा आ रहा है?"

"यहां ठां-ठां होगी?" ज़िज़ी ने पूछा।

"अरे नहीं, बेटा, घबराओ नहीं। कह दिया न, नहीं होगी।"

पाफ़ से कुछ कहलवाना असम्भव था। इंटरवल के शुरू से ही उसका

सारा ध्यान फेरीवाले पर लगा हुआ था, जो सेब और मिठाइयां बेच रहा था।

फिर से बैंड बजने लगा, फिर से लाल वर्दी वाले दो कतारों में खड़े हुए। सरकस का दूसरा भाग आरम्भ हुआ।

"रबड़ का पुतला कब आएगा?" हर बार जब एक के बाद दूसरा तमाशबीन आता, तो बच्चे पूछते। "कब आएगा?"

"अभी..."

सचमुच ही वह आ गया। वाल्स नृत्य की धुन के साथ पर्दा खुला और भीमकाय कलाबाज़ बेक्कर दुबले-पतले सुनहरी बालों वाले लड़के की उंगली पकड़े प्रकट हुआ। दोनों बदन से सटी, त्वचा के रंग की पोशाक पहने थे, जिस पर सलमे-सितारे चमक रहे थे। उनके पीछे-पीछे दो नौकर लंबा सुनहरी पोल लाए, जिसके एक सिरे पर लोहे की आड़ी छड़ लगी हुई थी।

रिंग के बीचोंबीच पहुंचकर बेक्कर और लड़के ने चारों ओर झुककर सलाम किया, फिर बेक्कर ने लड़के की पीठ पर दायां हाथ रखकर उसे तीन बार हवा में घुमाया। पर यह तो केवल शुरुआत ही थी। फिर से उन्होंने झुककर सलाम किया, बेक्कर ने पोल उठा लिया, उसका मोटा सिरा पेट पर बंधी सुनहरी पेटी पर टिकाया, और उसके दूसरे सिरे को संतुलित करने लगा, जो सरकस के गुम्बद को छूता लगता था। इस तरह पोल को संतुलित करके कलाबाज़ ने लड़के से फुसफुसाकर कुछ कहा और वह पहले उसके कंधों पर चढ़ा और फिर धीरे-धीरे पोल पर चढ़ने लगा। लड़के की हर गति से पोल हिलने लगता और बेक्कर पैर बदलता हुआ उसे संतुलित करता।

जब लड़के ने पोल के ऊपर चढ़कर दर्शकों को हवाई चुम्बन भेजा तो सरकस तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। फिर से सन्नाटा छा गया, बस बैंड ही वाल्स की धुन बजाता जा रहा था। इस बीच लड़का लोहे की छड़ पकड़कर सीधा हो गया और फिर हौले-हौले पीछे को हटते हुए अपने सिर और छड़ के बीच से टांगें निकालने लगा; पल भर को उसके नीचे को लटकते सुनहरी बाल और धौंकनी की तरह चलती छाती ही दिखी, जो सलमे-सितारों से चमक रही थी। पोल एक ओर से दूसरी ओर को हिल रहा था और यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता था कि बेक्कर के लिए उसे संतुलित रखना कितना कठिन है।

"वाह! वाह! शाबाश!" फिर से हाल गूंज उठा।

"बस!.. बस!" दो-तीन जगहों से आवाज़ें आईं।

लेकिन जब लड़का फिर से आड़ी छड़ पर बैठा दिखा और वहां से उसने हवाई चुम्बन भेजा, तो हाल में तालियां गड़गड़ा उठीं। बेक्कर एकटक लड़के को देखे जा रहा था, उसने फुसफुसाकर कुछ कहा। लड़का धीरे-धीरे दूसरा करतब दिखाने लगा। हाथों से छड़ पकड़े हुए वह सावधानी से टांगें नीचे करने और पीठ के बल लेटने लगा। अब उसे सबसे मुश्किल काम करना था: उसे पीठ के बल लेटकर छड़ पर इस तरह टिकना था कि सिर और टांगों में संतुलन आ जाए और फिर सहसा पीठ पर पीछे को सरक जाना था, छड़ को घुटनों के नीचे से ही पकड़े रहना था।

सब ठीक-ठाक चल रहा था। हां पोल काफ़ी ज़ोर से हिल रहा था, पर रबड़ का पुतला आधा रास्ता तय कर चुका था; वह नीचे ही नीचे झुकता जा रहा था और पीठ पर सरक रहा था।

"बस! बस! बहुत हो गया!" कुछ ज़ोरदार आवाज़ें आईं।

लड़के की पीठ सरकती जा रही थी और वह धीरे-धीरे सिर के बल नीचे झुकता जा रहा था...

अचानक एक चमक हुई, हवा में बल खाता हुआ कुछ घूम गया, उसी क्षण रिंग पर कुछ गिरने की धम्म सी आवाज़ आई।

पलक झपकते ही हाल में तहलका मच गया। कुछ लोग शोर मचाने लगे, चीखने की आवाज़ें आईं, डाक्टर की पुकार सुनाई दी। रिंग पर भी भाग-दौड़ मची हुई थी; नौकरों और जोकरों ने जल्दी-जल्दी अंदर आकर बेक्कर को घेर लिया। कुछ लोगों ने कुछ उठाया और नीचे को झुकते हुए जल्दी से पर्दे की ओर ले गए, जिसके पीछे अस्तबल का दरवाज़ा था, रिंग पर बस सुनहरा पोल रह गया, जिसके एक ओर लोहे की आड़ी छड़ लगी हुई थी। मिनट भर को थम गए बैंड को इशारा किया गया और वह फिर से बजने लगा। चीं-चीं करते, कलाबाज़ियां खाते कुछ जोकर रिंग पर आए, लेकिन उनकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। लोग बाहर निकल रहे थे।

इस सब भाग-दौड़ और शोर-शराबे में भी कई लोगों का ध्यान नीली

टोपी पहने सुनहरी बालों वाली प्यारी सी लड़की की ओर गया ; काली पोशाक पहने स्त्री के गले में बाहें डाले वह दहाड़ें मारकर रो रही थी और ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी :

"हाय , लड़का ! लड़का !"

अगले दिन सुबह सरकस के इश्तहार में "रबड़ के पुतले" के करतबों का ज़िक्र न था। बाद में भी उसका नाम इश्तहारों में नहीं आया। आ भी कैसे सकता था : रबड़ का पुतला इस दुनिया में नहीं रहा था।

कोन्स्तन्तीन स्तन्युकोविच

मक्सीम्का

'मक्सीम्का' कहानी (१८९६) की घटनाएं रूस के असीम मैदानों या पहाड़ों में नहीं, बल्कि उष्णकटिबंधीय महासागर के नीले विस्तार में सैनिक जलपोत पर घटती हैं। कहानी कोन्स्तन्तीन मिखाइलोविच स्तन्युकोविच (१८४३—१९०३) ने लिखी है, जो मल्लाहों के जीवन के बारे में कहानियों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी 'समुद्री कहानियों' और ''चील' पोत पर संसार की यात्रा' पुस्तक को बाल-साहित्य में स्थान प्राप्त है।

ग्यारह वर्ष की आयु में कोन्स्तन्तीन को उनके एडमिरल पिता ने पीटर्सबर्ग के नेवी कैडट कोर में भरती कराया। सत्रह वर्ष की आयु में भावी लेखक 'कलेवाला' युद्ध पोत पर संसार की परिक्रमा पर निकला, जो तीन साल में पूरी हुई। बाईस वर्ष की आयु में नौसेना की सेवा छोड़कर स्तन्युकोविच ने पहले एक ग्रामीण विद्यालय में शिक्षक का काम किया और फिर पत्रकारिता के क्षेत्र में उतरे। क्रांतिकारियों के साथ सम्पर्क के आरोप में उन्हें साइबेरिया निर्वासित किया गया। यहां साइबेरिया में उन्होंने समुद्री जीवन पर कहानियां लिखनी शुरू कीं, जिनसे उन्हें ख्याति मिली।

स्तन्युकोविच की पुस्तकों पर उनके बचपन की यादों की अमिट छाप है। बचपन में वह सेवास्तोपल क़िले में रहते थे, जहां उनके पिता फ़ौजी गवर्नर थे। उन्हें यहां रूसी सैनिकों और मल्लाहों की वीरता, साहस और उच्च मानवीयता के अनेक उदाहरण देखने को मिले। साथ ही वह यह भी देखते थे कि उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं, वे अपने कमांडरों और अफ़सरों की मनमर्ज़ी पर पूरी तरह निर्भर हैं और उन्हें उनसे कितने अपमान सहने पड़ते हैं। अपनी कहानियों में स्तन्युकोविच ने भूदासता के प्रति अपना आक्रोशपूर्ण विरोध व्यक्त किया है। अपनी किशोरावस्था में उन्होंने आम लोगों की यह ग़ुलामी देखी थी। उनकी कहानियों का उज्ज्वल पक्ष है रूसी मल्लाहों की मानवीयता और उदारहृदयता, उनकी भाईचारे की भावना, बच्चों के प्रति उनका प्रेम तथा कोई भी भाषा बोलनेवाले, चमड़ी के किसी भी रंग के लोगों की सहायता करने की उनकी तत्परता।

(१)

अभी-अभी घंटा बजा था। अटलांटिक महासागर के उष्णकटिबंध में सुहावनी सुबह के छह बजे थे।

क्षितिज से असीम ऊंचाइयों को उठते आकाश का रंग कोमल, पारदर्शी सा फ़िरोज़ी था। कहीं-कहीं ही हिमश्वेत लेस जैसे छोटे-छोटे तीतर पंखी बादल छाए हुए थे। स्वर्णिम सूर्य तेज़ी से चढ़ रहा था। महासागर की लहरदार जलराशि पर वह हर्षमय आलोक बरसा रहा था। क्षितिज की नीली रेखा महासागर की अनंत दूरी को सीमाबद्ध कर रही थी।

चारों ओर एक भव्य निस्तब्धता छाई हुई थी।

बस सशक्त उजली-नीली लहरें धूप में अपने रुपहले शृंग चमचमाती और एक दूसरी से टकराती मधुर गुंजन करती प्रतीत होती थीं। और यह गुंजन मानो कहता था कि इन अक्षांतरों में यह चिरकालीन महासागर सदा उदार होता है। स्नेही पिता के समान वह अपने विशाल वक्ष पर जलपोतों
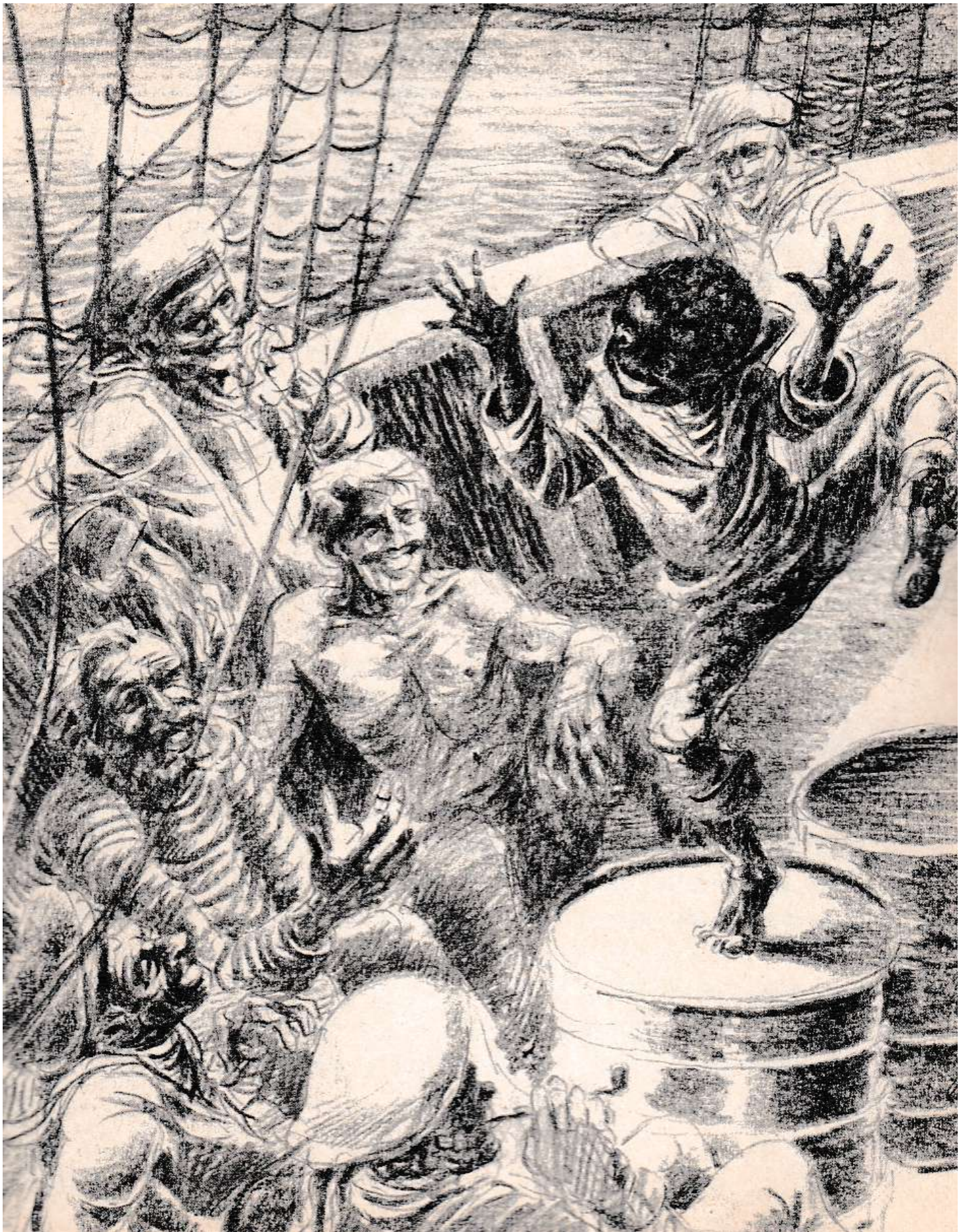
को संभाले हुए बहाता है और उन्हें तूफ़ानों का कोई डर नहीं होता।

चारों ओर शून्यता का राज था।

न कहीं कोई सफ़ेद पाल झिलमिला रहा था, न ही कहीं क्षितिज से उठता धुआं दिख रहा था। महासागर का मार्ग यहां एकदम खुला था।

विरले ही कभी कोई उड़ती मछली धूप में चमचमा उठती, जलक्रीड़ा करती व्हेल की काली पीठ दिखती और वह ज़ोर से पानी का फ़व्वारा छोड़ती, आकाश में काला सा फ़्रिगेट या हिमधवल एल्बाट्रोस उड़ते जाते, जल के पास ही छोटा सा, सुरमई समुद्रकाक उड़ता दिखता। वे अफ़्रीका या अमरीका के सुदूर तटों को जा रहे होते। और फिर से चारों ओर शून्य विस्तार होता। फिर वही गरजता महासागर और सूर्य एवं आकाश – उजले, स्नेहिल, मृदुल।

महासागर की तरंगों पर डोलता हुआ वाष्पचालित रूसी क्लिपर युद्धपोत 'लड़ाकू' तेज़ी से दक्षिण की ओर बढ़ रहा था और उत्तर से निरंतर दूर ही दूर होता जा रहा था, उस उत्तर से जहां धुंध थी, ठंड थी, पर फिर भी वह इतना प्रिय था।

'लड़ाकू' पोत बहुत बड़ा तो न था, वह बिल्कुल काला था और उसकी बनावट सुघड़, सुंदर थी। थोड़ा पीछे को झुके, ऊंचे मस्तूलों पर ऊपर से नीचे तक पाल लगे हुए थे, निरंतर एक ही दिशा में प्रायः एक ही गति से बह रही उत्तर-पूर्वी हवा पालों को फुला रही थी और वह घंटे में सात-आठ समुद्री मील पार करता बढ़ता चला जा रहा था, हवा की ओर वाला बगल थोड़ा झुका हुआ था। 'लड़ाकू' सहज ही एक लहर से दूसरी पर चढ़ता हुआ हल्के शोर के साथ अपने पनकट से उनको काटता जा रहा था। पनकट के पास पानी में झाग उठ रही थी और बूंदें हीरों सी चमक रही थीं। लहरें उसके बगलों को चूम रही थीं। दबूसे के पीछे चौड़ी रुपहली पट्टी छूट रही थी।

डेक पर और नीचे झंडा फहराने से पहले यानी आठ बजे से पहले की आम सफ़ाई हो रही थी। आठ बजे ही युद्धपोत पर दिन शुरू होता था।

चौड़े नीले कालरों वाली सफ़ेद कमीज़ें पहने मल्लाह डेक को, जहाज़ के पहलुओं, तोपों और तांबे को घिस-घिसकर, रगड़-रगड़कर साफ़ कर रहे थे। उनकी धूप से संवलाई गरदनें दिख रही थीं, पतलूनें घुटनों तक चढ़ी हुई

थीं और वे नंगे पैर थे। वे उसी तरह बड़ी लगन और ध्यान से अपने जहाज़ को चमका रहे थे, जैसा कि सदा युद्धपोतों पर होता है, जहां मस्तूलों के शिखरों से लेकर खाव तक ग़ज़ब की सफ़ाई होनी चाहिए और जहां हर हिस्सा जिसे ईंट या चीथड़े से घिसा-रगड़ा जा सकता है, चमचमाना चाहिए।

मल्लाह बड़ी लगन और जतन से काम कर रहे थे। मल्लाहों का मेट, पुराना नाविक, मत्वेइच जिसका चेहरा धूप से और तट पर चलनेवाले शराब के दौरों से लाल-सुर्ख़ था, सफ़ाई के दौरान बीच-बीच में ऐसी करारी और लंबी-चौड़ी गाली देता कि इनके आदी रूसी नाविक भी दंग रह जाते। मत्वेइच किसी को डांटने-डपटने के लिए नहीं, बल्कि जैसा कि वह खुद कहता था "क़ायदे के लिए" ही ऐसा करता था।

लेकिन कोई उसकी इन गालियों का बुरा नहीं मानता था। सब जानते थे कि वह भला आदमी है, खामखाह किसी को तंग नहीं करता, अपनी सत्ता का दुरुपयोग नहीं करता। सब इस बात के आदी हो चुके थे कि वह दो शब्द भी गाली के बिना नहीं कह सकता था। और आश्चर्य एवं प्रशंसा के साथ यह देखते थे कि वह एक ही गाली कितनी तरह से घुमा-फिराकर देता है। इस मामले में उसका कोई सानी न था।

कभी-कभी मल्लाह डेक के अग्रभाग में जाते, जहां पानी का ड्रम रखा था और एक डिब्बे में सुलगती रस्सी, ताकि जल्दी-जल्दी तेज़ तंबाकू का पाइप पी लें, दो बातें कर लें। और फिर से सफ़ाई में जुट जाते, तोपें चमकाने लगते, जहाज़ के बगल धोते। सुबह-तड़के से ही बड़ा अफ़सर जहाज़ पर इधर-उधर चक्कर लगा रहा था, झांक रहा था। ऊंचे क़द के, दुबले से अफ़सर को पास आता देखकर मल्लाह और भी जतन से अपना काम करते।

सुबह चार बजे से सुनहरी बालों वाला जवान अफ़सर ड्यूटी पर था। पहरे के पहले आधे घंटे का आलस वह कब का दूर कर चुका था। वह एकदम सफ़ेद कपड़े पहने था, कमीज़ के बटन खुले हुए थे। जहाज़ के चबूतरे पर चक्कर लगाता हुआ वह ताज़ी हवा में गहरी सांसें ले रहा था। हवा अभी धूप से तपी न थी। कभी-कभी रुक जाता और कुतुबनुमा देखता कि कर्णधार पतवार ठीक चला रहे हैं या नहीं, या पालों पर दृष्टि डालता कि वे ठीक फूले हुए हैं या नहीं,

या क्षितिज की ओर नज़र दौड़ाता – कहीं तूफ़ानी बादल तो नहीं दिख रहा। ऐसे क्षणों में गुद्दी का कोमल स्पर्श करती हवा जवान लेफ़्टिनेंट को बहुत भाती ... सब ठीक-ठाक था, और लेफ़्टिनेंट के लिए ड्यूटी पर करने को कुछ नहीं था।

और वह फिर से चबूतरा नापने लगता और बहुत जल्दी ही उस क्षण का सपना देखने लगता, जब ड्यूटी ख़त्म होगी और वह जाकर ताज़े, नरम-नरम बंदों के साथ एक-दो गिलास चाय पिएगा। अफ़सरों का बावर्ची बंद बड़े अच्छे बनाता था, हां, अगर मैदे में खमीर लाने के लिए जो वोद्का वह डालता था, उसे अपने हलक में नहीं उतार लेता था, तब।

(२)

अचानक डेक पर प्रहरी की, जो गलही पर बैठा आगे देख रहा था, बहुत ही ज़ोर की और व्यथित चीख गूंजी।

"समुद्र में आदमी है!"

मल्लाहों ने तुरंत अपना काम छोड़ दिया, आश्चर्यचकित और उद्विग्न से वे दौड़े-दौड़े डेक के अग्रभाग पर गए और समुद्र पर नज़रें लगा दीं।

"कहां है? कहां है?" चारों ओर से प्रहरी से पूछा जा रहा था। वह हल्के, पयाल के रंग के बालों वाला जवान मल्लाह था, उसका चेहरा कागज सा सफ़ेद पड़ गया था।

"वहां," कांपते हाथ से उसने इशारा किया। "अब दिखाई नहीं दे रहा। अभी-अभी मैंने देखा था ... मस्तूल पर था ... शायद बंधा हुआ है," उत्तेजित स्वर में मल्लाह कह रहा था और नज़रों से उस आदमी को ढूंढ़ने की कोशिश कर रहा था, जिसे उसने अभी-अभी देखा था।

ड्यूटी पर खड़ा लेफ़्टिनेंट प्रहरी की चीख से ठिठक गया, और बाइनोकुलर में आंखें गाड़कर उसे जहाज़ के आगे के विस्तार में घुमाने लगा।

सिग्नलमैन भी दूरबीन में उधर ही देख रहा था।

"दिखा?" लेफ़्टिनेंट ने पूछा।

"जी, सा'ब ... थोड़ा बाएं घुमाइए ..."

पर उसी क्षण अफ़सर ने भी लहरों के बीच मस्तूल का टुकड़ा और उस पर मानव आकृति देख ली।

और कांपती आवाज़ में जल्दी-जल्दी, अपने स्वस्थ फेफड़ों का पूरा ज़ोर लगाकर वह चीखा :

"ऊपर आने की सीटी दो! अगला और बड़ा पाल उतारो! नाव तैयार करो!"

सिग्नलमैन की ओर मुड़कर उत्तेजित स्वर में कहा :

"खोना नहीं उसे अपनी नज़रों से!"

"सब ऊपर चल!" सीटी बजाने के बाद मल्लाहों का मेट अपनी फटी सी, भारी आवाज़ में चिल्लाया।

मल्लाह बावलों से अपनी-अपनी जगह दौड़े।

कप्तान और बड़ा अफ़सर दौड़ते हुए चबूतरे पर चढ़ रहे थे। उनींदे अफ़सर चलते-चलते ही वर्दी के कोट पहनते हुए सीढ़ियां चढ़कर डेक पर आ रहे थे।

जैसा कि सबको ऊपर आने के हुक्म पर सदा होता है, बड़े अफ़सर ने कमान संभाली। उसके मुंह से ज़ोर-ज़ोर से आदेश निकलते और मल्लाह तत्क्षण उन्हें पूरा करने में जुट जाते। उनके हाथ मशीनों की तरह चल रहे थे। हर कोई मानो यह समझता था कि एक-एक पल कितना कीमती है।

सात मिनट भी न बीते थे कि दो-तीन पाल छोड़कर बाक़ी सब उतार दिए गए, जहाज़ खड़ा हो गया, थिर सा समुद्र में डोलने लगा, और सोलह खेवैयों के साथ नाव भी पानी में उतार दी गई। उसकी पतवार एक अफ़सर ने संभाल रखी थी।

"जाओ, भगवान तुम्हारा साथ दे!" जहाज़ से अलग हुई नाव की ओर चिल्लाकर कप्तान ने कहा।

आदमी को बचाने की जल्दी में खेवैये पूरा ज़ोर लगाकर नाव खेने लगे।

पर इन सात मिनटों में, जो जहाज़ को रोकने में लगे वह कोई मील भर दूर निकल गया था और मस्तूल का टुकड़ा बाइनोकुलर में भी नहीं दिख रहा था।

पर कुतुबनुमे से वह दिशा देख ली गई थी, जिधर आदमी था और नाव उस ओर बढ़ती जा रही थी।

'लड़ाकू' पोत के सभी मल्लाहों की नज़रें नाव पर लगी हुई थीं। महासागर की लहरों पर चढ़ती-उतरती नाव एक तुच्छ सा टुकड़ा लगती थी।

शीघ्र ही वह भी एक छोटा सा काला धब्बा लगने लगी।

(३)

डेक पर ख़ामोशी छाई हुई थी।

क्वार्टर डेक पर भीड़ लगाए खड़े मल्लाह बस कभी-कभार दबी-दबी आवाज़ में कुछ कह देते थे।

"किसी डूब गए जहाज़ का मल्लाह होगा।"

"यहां पर जहाज़ डूबना तो मुश्किल है। हां, अगर बिल्कुल ही बेकार जहाज़ रहा हो ..."

"नहीं, रात को किसी दूसरे जहाज़ से टकरा गया होगा।"

"या शायद जल गया हो।"

"एक ही आदमी बचा है बस!"

"शायद दूसरे नावों पर हों, इसे भूल गए हों ..."

"पता नहीं ज़िंदा है कि नहीं।"

"पानी तो गरम है। शायद ज़िंदा ही हो।"

"कैसे इसे शार्क मछली नहीं खा गई। यहां तो कितनी हैं ये शार्कें!"

"हां भाइयो! यह जहाज़ की नौकरी बड़ी ख़तरनाक है। ओफ़, कितनी ख़तरनाक!" उसांस भरते हुए बिल्कुल जवान से मल्लाह ने कहा। वह नौसेना में पहले साल ही था और सीधा विश्व परिक्रमा कर रहे जहाज़ पर लग गया था।

उसके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी। टोपी उतारकर उसने सलीब का निशान बनाया, मानो भगवान से प्रार्थना कर रहा हो कि उसे समुद्र में ऐसी भयानक मौत से बचा ले।

व्यग्रता भरी प्रतीक्षा में कोई पौना घंटा बीता।

आख़िर सिग्नलमैन, जो सारे वक़्त दूरबीन पर आंखें गड़ाए हुए था, ख़ुशी से चिल्लाया :

"नाव वापिस चल दी!"

जब वह पास आने लगी, तो बड़े अफ़सर ने सिग्नलमैन से पूछा :

"वह आदमी है नाव पर?"

"दिख नहीं रहा, सा'ब!" उसने जवाब दिया। अब उसकी आवाज़ इतनी ख़ुश न थी।

"लगता है मिला नहीं!" कप्तान के पास जाते हुए बड़े अफ़सर ने कहा।

'लड़ाकू' पोत का कमांडर अधेड़ उम्र का नाटे क़द का, मज़बूत काठी का आदमी था। उसके मांसल गालों और ठोड़ी पर घने काले बाल थे, जो अब सफ़ेद होने लगे थे। आंखें उसकी छोटी-छोटी थीं, बाज़ जैसी और वैसी ही तीक्ष्ण दृष्टि थी उसकी। उसने कंधा बिचकाया, प्रत्यक्षत: अपनी झुंझलाहट छिपाते हुए, और बोला :

"नहीं। नाव पर अच्छा अफ़सर है, अगर आदमी न मिलता, तो वह इतनी जल्दी न लौटता!"

"पर वह नाव पर दिख तो नहीं रहा।"

"हो सकता है, नीचे लेटा हो, इसीलिए दिख नहीं रहा... ख़ैर, अभी पता चल जाएगा।"

और कप्तान चबूतरे पर चक्कर काटने लगा। रह-रहकर वह रुक जाता और पास आ रही नाव पर नज़र डालता। आख़िर उसने बाइनोकुलर में देखा, बचाया हुआ आदमी तो उसे नज़र नहीं आया, लेकिन गलही पर बैठे अफ़सर के शांत, प्रसन्न चेहरे को देखकर वह समझ गया कि उन्होंने आदमी को बचा लिया है।

कप्तान के खिन्न चेहरे पर संतोष की मुस्कान फैल गई।

और कुछ मिनट बीतने पर नाव जहाज़ के पास आ गई और लोगों समेत उसे जहाज़ पर चढ़ा लिया गया।

अफ़सर के पीछे-पीछे खेवैये उसमें से निकलने लगे। उनके चेहरे लाल

पड़ गए थे, पसीने से वे तर-ब-तर थे और हांफ रहे थे। एक खेवैये का सहारा लेकर वह आदमी भी डेक पर उतरा, जिसे बचाया गया था। वह दस-ग्यारह साल का नीग्रो लड़का था। फटी हुई कमीज़ पहने था, जो उसके दुबले, सूखे, काले, चमचमाते शरीर का थोड़ा सा हिस्सा ही ढके हुए थी। वह बुरी तरह से भीग गया था।

लड़का मुश्किल से खड़ा हो पा रहा था, बुरी तरह से कांप रहा था, उसकी बड़ी-बड़ी धंसी हुई आंखों में अपार हर्ष था और साथ ही विस्मय भी, मानो उसे विश्वास न हो रहा हो कि बच गया।

"बिल्कुल अधमरे को मस्तूल से उतारा। बड़ी मुश्किल से बेचारे को होश में लाए हैं," अफ़सर कप्तान को रिपोर्ट दे रहा था।

"जल्दी से इसे रोगी कक्ष में ले जाओ!" कप्तान ने आदेश दिया।

लड़के को तत्क्षण रोगी कक्ष में ले जाया गया, उसका शरीर पोंछ कर सुखाया गया, बिस्तर में लिटाकर उसे कंबल ओढ़ा दिए और डाक्टर उसकी टहल करने लगा। उसके मुंह में ब्रांडी की कुछ बूंदें डालने लगा।

लड़का हौले से ब्रांडी निगल गया। आंखों से ही मिन्नत करता हुआ वह डाक्टर की ओर देख रहा था, मुंह की ओर इशारा कर रहा था।

ऊपर पाल चढ़ाए जाने लगे और पांच मिनट बाद ही 'लड़ाकू' पोत अपने पहले वाले मार्ग पर बढ़ चला। मल्लाह भी अपना बीच में छूट गया काम पूरा करने लगे।

"हब्शी छोकरे को बचा लिया!" चारों ओर मल्लाह खुशी-खुशी कह रहे थे।

"कैसा दुबला-पतला सा है!"

कुछ लोग रोगी कक्ष में जा रहे थे, यह पता लगाने कि लड़के का क्या हुआ।

"डाक्टर इलाज कर रहा है। देखो, शायद बचा ले!"

घंटे भर बाद कोर्शुनव नाम का मल्लाह यह खबर लाया कि हब्शी लड़का गहरी नींद सो रहा है, डाक्टर ने उसे गरम-गरम सूप के कुछ चम्मच दिए और वह सो गया ...

"अरे भाइयो, छोकरे के लिए डाक्टर ने ऐसा सूप बनवाया, कुछ भी नहीं डाला उसमें, बस सिर्फ़ गोश्त का उबला पानी ही समझो," कोर्शुनव बड़े जोश से कहे जा रहा था। वह इस बात पर खुश था कि मशहूर गप्पी होने के बावजूद इस वक़्त सब उसकी बातों पर विश्वास कर रहे हैं और इस बात पर भी कि वह इस वक़्त झूठ नहीं बोल रहा और सब ध्यान से उसकी बातें सुन रहे हैं।

और मानो इस मौक़े का फ़ायदा उठाते हुए वह कहे जा रहा था:

"वो छोटा डाक्टर कह रहा था कि जब छोकरे को खाना खिला रहे थे, तो वह कुछ गिटपिट कर रहा था, मतबल कह रहा था: 'और दो, वो सूप'... वह तो डाक्टर के हाथ से प्याला ही छीन रहा था... पर ज़्यादा नहीं दिया, एकदम ज़्यादा खा लेगा, तो मर जाएगा।"

"तो छोकरे ने क्या किया?"

"कुछ नहीं, मान गया।"

उसी समय पानी के ड्रम के पास कप्तान का अरदली सोइकिन आया और उसने कप्तान के सिगार का टुर्रा सुलगाया। सबका ध्यान अरदली की ओर गया, किसी ने पूछा:

"अरे सोइकिन, कुछ सुना, हब्शी छोकरे का बाद में क्या करेंगे?"

लाल बालों वाला सोइकिन खूब बन-ठन कर रहता था। वह अपने निजी कपड़े की बनी मल्लाहों की वर्दी की पतली कमीज़ और किरमिच के जूते पहने था। बड़ी शान से उसने सिगार का कश भरा और ऐसे अंदाज़ में मानो वह बहुत कुछ जानता हो, बोला:

"करेंगे क्या? गूड केप पर छोड़ देंगे, जब जहाज़ वहां पहुंचेगा तो।"

केप ऑफ़ गुड होप को वह गूड केप कहता था।

थोड़ी देर तक वह चुप रहा और फिर रोब सा दिखाता हुआ, कुछ घिन के से भाव के साथ बोला:

"और करना भी क्या है, काले हब्शी का? न कोई धरम इनका, न जात। एकदम जंगली हैं।"

"जंगली हों, चाहे कुछ हों, हैं तो सब खुदा के बंदे... कुछ रहम होना चाहिए!" बूढ़े बढ़ई ज़खारिच ने कहा।

तंबाकू पीने को जमा हुए मल्लाहों को ज़खारिच की बात अच्छी लगी थी।

"और वहां से छोकरा अपने घर कैसे पहुंचेगा? उसके भी तो मां-बाप होंगे!" किसी ने कहा।

"गूड केप में इन हब्शियों की भरमार है। अपने आप पता लगा लेंगे, कहां से है," सोइकिन ने जवाब दिया और टुर्रा पीकर चलता बना।

"बड़ा बनता फिरता है, अरदलिया!" बूढ़े बढ़ई ने ग़ुस्से से उसके पीछे चिल्लाकर कहा।

(४)

अगले दिन नीग्रो बालक अभी कमज़ोर ही था, पर हां सदमे के बाद वह इतना ठीक हो गया था कि मोटे, अधेड़ डाक्टर ने खुलकर मुस्कराते हुए लड़के का गाल थपथपाया और उसे प्याला भरकर शोरबा दिया। वह देख रहा था कि बालक कैसे जल्दी-जल्दी शोरबा निगल रहा है। अपनी बड़ी-बड़ी काली आंखों से, जिनकी सफ़ेदी पर तारे चमक रहे थे, कृतज्ञतापूर्वक डाक्टर की ओर देख रहा था।

इसके बाद डाक्टर ने यह जानना चाहा कि लड़का कैसे समुद्र में गिरा, कितनी देर भूखा रहा। लेकिन रोगी के साथ बातचीत करना असम्भव सिद्ध हुआ, बावजूद इसके कि डाक्टर खूब अच्छी तरह इशारों से अपनी बात समझा रहा था। नीग्रो बालक को प्रत्यक्षत: डाक्टर से ज़्यादा अंग्रेज़ी आती थी लेकिन डाक्टर की ही भांति वह भी जो थोड़े बहुत शब्द जानता था, उन्हें तोड़-मरोड़कर बोलता था।

वे एक दूसरे की बात नहीं समझ रहे थे।

तब डाक्टर ने अपने सहायक को जवान वारंट अफ़सर को बुलाने भेजा, जिसे अफ़सरों के कमरे में सब 'पेत्या' कहकर बुलाते थे।

"पेत्या, आप तो अंग्रेजी अच्छी बोल लेते हैं, ज़रा इससे बात तो कीजिए, मेरे से नहीं हो पा रही," डाक्टर ने हंसते हुए कहा। "और इसे यह भी कह दीजिए कि तीन दिन में मैं इसे छुट्टी दे दूंगा।"

वारंट अफ़सर खाट के पास बैठकर बालक से सवाल पूछने लगा। वह छोटे-छोटे वाक्य बोल रहा था और वे भी धीरे-धीरे, बिल्कुल स्पष्टतः। नन्हा नीग्रो शायद उसकी सारी बात तो नहीं, पर काफ़ी कुछ समझ रहा था और थोड़े-बहुत जो शब्द जानता था, उनको ही उल्टे-सीधे बोलते हुए जल्दी-जल्दी जवाब दे रहा था, हां साथ ही अर्थपूर्ण ढंग से इशारे भी करता जा रहा था।

काफ़ी लंबी और मुश्किल बातचीत के बाद वारंट अफ़सर ने अफ़सरों के कमरे में नीग्रो लड़के की मोटे तौर पर सही कहानी सुनाई।

लड़का अमरीकी जहाज़ 'बेट्सी' पर था और कप्तान का नौकर था (अफ़सर ने अपनी ओर से कहा: कमीने कप्तान का), लड़का कप्तान के कपड़ों से धूल झाड़ता था, जूते साफ़ करता था और कॉफ़ी के साथ ब्रांडी या ब्रांडी के साथ कॉफ़ी देता था। कप्तान लड़के को 'बॉय' कहता था और नीग्रो बालक को यह विश्वास था कि यही उसका नाम है। मां-बाप की उसे याद न थी। कप्तान ने साल भर पहले मोज़म्बीक में लड़के को ख़रीदा था और रोज़ उसे पीटता था। जहाज़ सेनेगाल से रियो जा रहा था, हब्शियों को लादकर ले जा रहा था। दो रात पहले दूसरा जहाज़ उससे ज़ोर से टकराया (इसका अनुमान अफ़सर ने इस बात से लगाया कि नीग्रो बालक ने दो-तीन बार "ठां-ठां-ठां" कहा और फिर रोगी कक्ष की दीवार पर धीरे से मुक्का मारा)। जहाज़ डूब गया। लड़का पानी में जा गिरा, मस्तूल के टुकड़े से अपने आप को बांध लिया और उसी पर दो दिन, दो रातें काटीं।

अपने भयानक जीवन की कहानी अगर बालक शब्दों में कह भी सकता, तो भी वे इतने भावपूर्ण न होते। शब्दों से अधिक अच्छी तरह उसकी कहानी उसकी नज़रें कह रही थीं, जिनमें इस बात पर आश्चर्य था कि उसके साथ इतना अच्छा सलूक किया जा रहा है। दयनीय पिल्ले की भांति कृतज्ञता भरी आंखों से वह डाक्टर, उसके सहायक और वारंट अफ़सर को देख रहा था। इन सबसे भी बढ़कर प्रभावित करती थी उसकी पतली सी, चमकती हुई काली पीठ, जिस पर सारी पसलियां दिखती थीं – सारी पीठ कोड़े लगने से सांटों से भरी हुई थी।

वारंट अफ़सर और डाक्टर की बातें सुनकर अफ़सरों के कमरे में सब

स्तब्ध रह गए। किसी ने कहा कि इस बेचारे को केपटाउन में रूसी वाणिज्यदूत के संरक्षण में दे देना चाहिए और लड़के के लिए चंदा जमा करना चाहिए।

नन्हे नीग्रो की कहानी से मल्लाह और भी अधिक प्रभावित हुए। उसी दिन शाम को वारंट अफ़सर के अरदली अर्तेमी मूखिन के मुंह से उन्होंने वारंट अफ़सर की बताई कहानी सुनी। अर्तेमी कहानी में अपनी ओर से नमक-मिर्च लगाने से भी बाज़ न आया ताकि यह पता चले कि अमरीकी कप्तान कैसा जल्लाद था।

"अरे, भैया रे, हर रोज़ कमबख़्त लौंडे को पीटता था। ज़रा सी कोई बात हुई, बस जबड़े पर घूंसे मारने लगा, एक दो, तीन ... ख़ूनोंख़ून कर देता और खूंटी से कोड़ा उतारता, कोड़ा भी भैया रे ऐसा-वैसा नहीं था, सबसे मोटी पेटी का बना और बस बेचारे की धुनाई करने लगता," अर्तेमी कह रहा था, अपनी कल्पना की उड़ान से वह अधिकाधिक जोश में आता जा रहा था, वह नीग्रो बच्चे का जीवन भयानकतम रूप में दिखाना चाहता था। "हरामी का पिल्ला यह तक न देखता था कि उसके सामने बेज़बान बच्चा है, हब्शी हुआ तो क्या ... अभी तक बेचारे की सारी पीठ सांटों से भरी हुई है। डाक्टर कह रहा था : देखा नहीं जाता!" भावुक अर्तेमी ने कहा।

मल्लाह स्वयं ही अतीत में भूदास थे, उनके लिए यह सब नमक-मिर्च लगाने की कोई ज़रूरत न थी। उन्हें याद था कि कैसे उनकी पीठें सेंकी जाती थीं। उनकी सारी सहानुभूति बालक के साथ थी और अमरीकी कप्तान को वे खूब बददुआएं दे रहे थे, अगर अभी तक शार्कें उसे हड़प नहीं गईं, तो जल्दी से जल्दी हड़प जाएं।

"हमारे यहां तो अब तक सब ईसा के भक्तों को आज़ादी मिल गई होगी।* पर इन अमरीकियों के यहां अभी भी ग़ुलाम हैं क्या?" किसी अधेड़ मल्लाह ने पूछा।

"हां, अभी तक हैं।"

"अजीब बात है ... आज़ाद लोग हैं, पर फिर भी ..." अधेड़ मल्लाह ने धीरे-धीरे बोलते हुए कहा।

---

* अभिप्राय भूदास प्रथा खत्म होने से है। – सं०

"उनके यहां हब्शी हमारे यहां के दासों जैसे हैं।" अर्तेमी ने कहा, जो अफ़सरों के कमरे में इस सिलसिले में कुछ बातें सुन चुका था। "इसी बात को लेकर उनकी आपस में लड़ाई हो रही है।* कुछ अमरीकी चाहते हैं कि सारे हब्शी, जो उनके यहां रहते हैं, आज़ाद हों, और दूसरे यह बात नहीं मानते, ये वही हैं, जिनके पास गुलाम हब्शी हैं। बस इसी बात पर एक दूसरे को भून रहे हैं... सा'ब लोग कहते हैं कि जो अमरीकी हब्शियों के साथ हैं न, वही जीतेंगे। अमरीकी ज़मींदारों का सफ़ाया कर देंगे!" खुश होते हुए अर्तेमी ने कहा।

"हां, भगवान उनकी मदद करेगा... हब्शी भी तो आज़ादी से रहना चाहते हैं... चिड़िया तक क़ैद में नहीं रह सकती, फिर आदमी तो आदमी है," ज़खारिच बढ़ई ने कहा।

सांवला जवान मल्लाह, वही जो कह रहा था कि जहाज़ की नौकरी ख़तरनाक है, बड़े ध्यान से सारी बातचीत सुन रहा था, आखिर उसने पूछा:

"तो, भई अर्तेमी, अब यह हब्शी छोकरा आज़ाद होगा?"

"और नहीं तो क्या? साफ़ बात है आज़ाद होगा," अर्तेमी ने दृढ़तापूर्वक कहा, हालांकि मन ही मन उसे इस बात पर पूरा विश्वास नहीं था, क्योंकि स्वामित्व के अमरीकी क़ानूनों के बारे में वह कुछ भी नहीं जानता था।

लेकिन उसकी अपनी समझ यह कहती थी कि लड़का आज़ाद होना चाहिए। मुआ मालिक तो मछलियों का निवाला बन चुका है, तो फिर और क्या बात हो सकती है।

और वह बोला:

"अब बस गूड केप में छोकरे को पासपरट मिल जाए और बस फिर जहां जी चाहे वह जाए।"

पासपोर्ट के इस विचार ने उसके बचे-खुचे संदेह भी दूर कर दिए।

"हां, बस यही तो बात है!" सांवला मल्लाह खुशी से बोला।

---

* कहानी अमरीका में गृहयुद्ध के दिनों की है। – ले०

उसके लाल गालों और नेक आंखों वाले चेहरे पर मीठी मुस्कान छा गई, जिससे अभागे नीग्रो के लिए उसकी ख़ुशी प्रकट होती थी।

सांझ का झुटपुटा तेज़ी से उष्णकटिबंध की सुहानी रात में बदल गया। आकाश पर असंख्य तारे चमक उठे, मख़मली ऊंचाइयों में उनकी उज्ज्वल झिलमिल हो रही थी। दूरी में महासागर काला पड़ गया, जहाज़ के अगल-बगल और दबूसे के पीछे उसमें स्फुर-दीप्ति हो रही थी।

शीघ्र ही प्रार्थना की सीटी बजी और फिर जिन मल्लाहों को तड़के ड्यूटी देनी थी वे खाटें लेकर डेक पर सो गए।

जो मल्लाह ड्यूटी पर थे, वे रस्सों पर बैठे धीमी आवाज़ में बतियाने लगे। उस रात को कई झुंडों में नीग्रो लड़के की ही चर्चा होती रही।

(५)

दो दिन बाद सदा की भांति सुबह सात बजे डाक्टर रोगी कक्ष में आया, अपने एकमात्र रोगी की जांच की और यह पाया कि वह ठीक हो गया है, बिस्तर से उठ सकता है और ऊपर जाकर मल्लाहों का खाना खा सकता है। यह सब उसने लड़के को इशारों से ही समझाया, जो इस बार जल्दी ही समझ गया। लड़के के चेहरे पर रौनक आ गई थी और वह यह भूल ही गया लगता था कि कुछ दिन पहले वह मौत के पंजों में था। वह झट से खाट से उछल खड़ा हुआ। वह मल्लाहों का लंबा कुर्ता, जो उसके बदन पर बोरे सा लगता था, पहने हुए ही ऊपर जाकर धूप सेंकना चाहता था। लेकिन उसकी यह वेशभूषा देख कर डाक्टर ज़ोर से हंसने लगा और सहायक भी खी-खी कर उठा, लड़का सकपका गया। वह केबिन के बीचोंबीच खड़ा था, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे और क्यों डाक्टर उसकी कमीज़ खींचता हुआ हंसे जा रहा है।

तब नीग्रो बालक ने जल्दी से कमीज़ उतार दी और नंगा ही खिसक जाना चाहा, पर सहायक ने उसकी बांह थाम ली और डाक्टर हंसते हुए कहता जा रहा था :

"नो, नो, नो।"

और इसके बाद इशारे से लड़के को समझाया कि वह बोरेनुमा-कमीज़ पहन ले।

"इसे क्या पहनाएं फ़िलीपव?" डाक्टर चिंतित सा घुंघराले बालों वाले बांके से तीस वर्षीय सहायक से पूछ रहा था। "इसकी तो हमने सोची ही नहीं।"

"जी हां, इसकी तो कल्पना नहीं हुई। अब अगर इसकी कमीज़ घुटनों तक काट दें और कमर पर पेटी बांध दे, तो खूब जोड़ बैठेगा," सहायक ने कहा। जब वह कोई बढ़िया बात कहना चाहता था तो अटपटे शब्द कह डालता था, जिससे सब उसका मज़ाक़ उड़ाते थे।

"जोड़ बैठेगा का क्या मतलब?" डाक्टर मुस्कराया।

"जी, वही ... जोड़ बैठेगा ... सब जानते हैं हजूर, जोड़ बेठैगा का मतबल क्या है!" सहायक ने बुरा मानते हुए कहा। "आरामदेह भी होगा, अच्छा भी लगेगा।"

"नहीं, भई, यह तो कोई 'जोड़ नहीं बैठेगा'। बस हंसी की बात ही होगी। हां, कुछ तो पहनाना चाहिए इसे, जब तक मैं कप्तान से इसके नाप के कपड़े सिलवाने की आज्ञा नहीं ले लेता।"

"जी हां, कपड़े तो बढ़िया सिल सकते हैं ... जहाज़ पर हैं ऐसे मल्लाह, जो दर्ज़ी का काम जानते हैं। वे सी देंगे।"

उसी क्षण रोगी कक्ष के दरवाज़े पर किसी ने हौले से दस्तक दी।

"कौन है? आ जाओ," डाक्टर ने कहा।

दरवाज़े में पहले तो लाल सा, थोड़ा फूला हुआ चेहरा दिखा, जिसके अगल-बगल सन के रंग के गलमुच्छे लटक रहे थे, नाक अजीब से, "संदेहास्पद" रंग की थी, पर आंखों से फुर्ती और नेकी टपकती थी। इसके बाद मल्लाह इवान लूच्किन की नाटी, सुघड़ और मज़बूत आकृति प्रकट हुई।

मल्लाह अधेड़ था, लगभग चालीस बरस का, पंद्रह बरस से फ़ौजी बेड़े में था। इस क्लिपर पोत पर वह एक सबसे अच्छा मल्लाह था और तट पर सबसे बढ़कर पियक्कड़। कई बार तो वह अपने कपड़े तक बेचकर शराब पी

डालता और केवल अंतरीय पहने जहाज़ पर लौटता। अगले दिन सुबह एकदम बेफ़िक्र सा सज़ा सुनने को हाज़िर होता।

"हज़ूर, यह मैं..." लूच्किन खोखली आवाज़ में बोला। वह खड़ा-खड़ा पैर बदल रहा था। उसके नंगे पांवों पर उभरी नसें दिख रही थीं। खुरदरे हाथ से वह अपनी पतलून को मसोस रहा था।

दूसरे हाथ में छोटी सी गठरी थी।

वह डाक्टर की ओर ऐसे संकोच और दोषी भाव से देख रहा था, जो पियक्कड़ों और अपने ऐब जाननेवाले लोगों के चेहरे और आंखों में प्राय: होता है।

"क्या चाहिए लूच्किन? बीमार पड़ गया क्या?"

"बिल्कुल नहीं, हज़ूर, वो... छोकरे के लिए कपड़े लाया हूं। सोचा नंगा है, सो सी दिए, नाप भी मैंने पहले ले लिया था। इजाज़त हो तो दे दूं, हज़ूर।"

"ज़रूर दो भई... बड़ी खुशी की बात है," डाक्टर चकित सा कह रहा था। "हम इसी सोच में पड़े हुए थे कि छोकरे को क्या पहनाएं, तुमने हमारे से पहले ही सब सोच लिया।"

"ख़ाली वक़्त था हज़ूर," लूच्किन मानो क्षमा मांग रहा था।

इतना कहकर उसने छींट के रूमाल में से मल्लाहों की वर्दी वाली छोटी सी कमीज़ और वैसी ही पतलून निकाली। उन्हें झटका और भौचक्के खड़े लड़के को सौंपा।

"ले मक्सीम्का! कपड़ा वेरी गूड है भैया! ले पहन ले, देखता हूं कैसे बैठता है। चल, मक्सीम्का!" नीग्रो बालक की ओर स्नेह से देखते हुए उसने खुशी से कहा, अब उसकी आवाज़ में दोष की भावना नहीं थी, जैसी कि डाक्टर से बातें करते समय थी।

"अरे, तू इसे मक्सीम्का क्यों कह रहा है?" डाक्टर हंस पड़ा।

"और क्या हज़ूर? मक्सीम्का ही है, क्योंकि इसे संत मक्सीम के दिन बचाया था, सो बस यह मक्सीम्का ही हुआ... और फिर इसका कोई नाम भी तो नहीं, कैसे बुलाएंगे इसे।"

नए कपड़े पहनकर तो लड़के की खुशी का वार-पार न रहा। लगता था पहले कभी भी उसने ऐसे कपड़े नहीं पहने।

लूच्किन ने लड़के को इधर-उधर घुमा कर देखा, कमीज़ खींची, सहलाई और पाया कि कपड़े बिल्कुल ठीक बैठे हैं।

"अब चल ऊपर चलें मक्सीम्का... धूप सेंकना। इजाजत है, हज़ूर?"

डाक्टर ने सद्भावना से मुस्कराते हुए सिर हिलाया और मल्लाह नीग्रो बालक का हाथ पकड़कर डेक के अग्रभाग में ले गया। दूसरे मल्लाहों को उसे दिखाते हुए उसने कहा:

"सो, यह रहा मक्सीम्का! बस अब भूल जाएगा दुष्ट अमरीकी को। जानता है कि रूसी मल्लाह इसका मन नहीं दुखाएंगे!"

उसने प्यार से लड़के का कंधा थपथपाया और उसके घुंघराले सिर की ओर इशारा करते हुए कहा:

"कोई बात नहीं, भैया टोपी भी बना देंगे... और जूते भी, बस थोड़ा समय चाहिए।"

लड़का कुछ नहीं समझ रहा था, पर मल्लाहों के संवलाए चेहरे, उनकी सहानुभूति भरी मुस्कानें देखकर वह यह अनुभव कर रहा था कि यहां उसे कुछ नहीं होगा।

और वह अपने चमकीले, दूधिया दांत दिखाता हंस रहा था, दक्षिण के अपने प्यारे सूरज की गर्मी पा रहा था।

इस दिन से सब उसे मक्सीम्का कहने लगे।

(६)

डेक पर मल्लाहों जैसे कपड़े पहने नन्हे नीग्रो से मल्लाहों को परिचित कराके लूच्किन ने तुरंत ही यह घोषणा की कि वह लड़के की देखभाल करेगा, उसका खास ख्याल रखेगा, इसका उसे हक़ है, क्योंकि उसने लड़के को सजाया है और उसका नाम रखा है।

लूच्किन ने किसी से इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा कि इस दुबले-पतले अभागे हब्शी बच्चे को देखकर जिसने अपने जीवन के आरम्भ में ही अमरीकी कप्तान के हाथों कितने दुख झेले हैं, उसके मन में कैसी अनुकम्पा जागी है, कि उसकी अपनी ठूंठ सी ज़िंदगी भी पहले कितनी दुख भरी रही है। आम रूसी लोगों की ही भांति वह दूसरों के सामने अपनी भावनाएं प्रकट करते हुए शर्माता था और शायद इसीलिए मक्सीम्का का ख़्याल रखने की अपनी इच्छा का कारण यह बताया कि हब्शी बड़ा मज़ेदार है, बिल्कुल बंदर जैसा।

हां, साथ ही उसने पेत्रोव मल्लाह की ओर नज़र दौड़ाते हुए, जो नए मल्लाहों को तंग करने के लिए मशहूर था, दृढ़तापूर्वक कहा कि अगर ऐसा "एकदम कमीना आदमी" निकलेगा, जो 'अनाथ' बच्चे को छेड़ेगा, तो उसका वास्ता सीधे लूच्किन से होगा। और मानो यह स्पष्ट करते हुए कि उससे वास्ता पड़ने का मतलब क्या है, वह बोला:

"ऐसा हुलिया बना दूंगा कि बस वह याद रखेगा। बच्चे को तंग करना सबसे बड़ा पाप है... ईसाई हो या हब्शी, है तो बच्चा ही... और कोई उसे हाथ नहीं लगाए।"

सब मल्लाहों ने तत्परता से मक्सीम्का पर लूच्किन का अधिकार स्वीकार कर लिया। हां, कई ऐसे भी थे, जिन्हें इस बात में कोई ख़ास विश्वास नहीं था कि लूच्किन ने अपने ऊपर जो दायित्व लिया है, उसे ठीक से निभा सकेगा। ऐसा पियक्कड़ और दुस्साहसी मल्लाह लड़के की देखरेख क्या करेगा? एक पुराने मल्लाह ने चुटकी लेते हुए पूछा:

"तो तू लूच्किन मक्सीम्का की दाई बनेगा?"

"दाई ही समझ लो," लूच्किन ने हंसते हुए जवाब दिया। मज़ाक़ की उसने कोई परवाह नहीं की। "क्यों भाइयो, इतना भी नहीं कर सकता क्या मैं? अरे किसी साहबज़ादे की देखभाल थोड़े ही करनी है... इस कलुए के लिए भी कपड़ों का इंतज़ाम करना है... दूसरा जोड़ा सीना होगा, टोपी बनानी होगी... डाकदर कहता था, जहाज़ से सरकारी माल ले देगा... आख़िर मक्सीम्का जब गूड केप पर रह जाएगा, तो याद करेगा रूसी मल्लाहों को। कम से कम नंगा तो नहीं होगा।"

"तू इससे बातें कैसे करेगा ? न वह तेरी कुछ समझता है, न तू उसकी।"

"कर लेंगे बातें भी। तुम देखते रहना!" अनबूझ विश्वास के साथ लूच्किन ने कहा। "हब्शी है तो क्या हुआ, है तो समझदार... अरे, मैं उसे अपनी बोली सिखा दूंगा... सब समझ लेगा वह..."

और लूच्किन ने नन्हे नीग्रो पर स्निग्ध नज़र डाली, जो जहाज़ के पहलू से सटा कौतूहलवश इधर-उधर देख रहा था।

नीग्रो बालक ने प्रेम और स्नेह में पगी यह दृष्टि देखी और अपने सफ़ेद दांत चमकता हुआ मुस्करा दिया। बिना शब्दों के ही वह यह समझ रहा था कि यह मल्लाह उसका मित्र है।

साढ़े ग्यारह बजे मल्लाहों ने अपना सुबह का काम खत्म किया। डेक पर वोद्का का ड्रम लाया गया और दोनों मेटों और आठ जूनियर अफ़सरों ने घेरा बनाकर सीटी बजाई। मल्लाह इस सीटी को "कोयल की कूक" कहते थे। लूच्किन खुशी से मुस्कराया और अपने मुंह की ओर इशारा करते हुए लड़के से बोला: "मांगता है!" और दौड़ता हुआ पिछले डेक पर चला गया। लड़का असमंजस में खड़ा रहा।

पर उसका असमंजस शीघ्र ही दूर हो गया।

वोद्का की तेज़ गंध सारे डेक पर फैल गई। मल्लाह अपने खुरदरे हाथों से नाक पोंछते पिछले डेक से आ रहे थे, उनके गम्भीर चेहरों पर संतोष छलक रहा था। नीग्रो बालक को याद आया कि 'बेट्सी' पर भी मल्लाहों को हफ़्ते में एक बार रम का गिलास मिलता था और यह कि कप्तान रोज़ाना ही रम पीता था और लड़के को लगता था कि वह ज़रूरत से ज़्यादा पीता है।

लूच्किन मक्सीम्का के पास लौट आया था। वह बड़े अच्छे मूड में था, उसने लड़के की पीठ थपथपाई और बोला:

"गूड वोद्का! वेरी गूड, मक्सीम्का!"

मक्सीम्का ने भी सिर हिला दिया और बोला:

"वेरी गुड!"

यह देखकर कि लड़का इतनी जल्दी उसकी बात समझ गया, लूच्किन बहुत खुश हुआ और चिल्लाया:

"अरे वाह मक्सीम्का! सब समझता है... चल अब खाना खाने चलें... भूख लगी है?"

और वह जबड़े चलाने लगा।

यह समझना भी कठिन न था, ख़ास तौर पर इसलिए कि लड़के ने नीचे से मल्लाहों को लकड़ी के बड़े-बड़े डोंगों में खाना लाते देखा, जिनसे बड़ी प्यारी गंध आ रही थी।

नन्हा नीग्रो भी सिर हिलाने लगा और उसकी आंखें ख़ुशी से चमक उठीं।

"देखो तो सब समझता है! कैसा अक्लमंद है!" लूच्किन ने कहा। हब्शी लड़के से उसका लगाव पल-पल बढ़ रहा था और इस बात का भी उसे मान था कि वह लड़के को अपनी बात समझा सकता है। मक्सीम्का का हाथ पकड़कर वह उसे ले चला।

डेक पर तिरपाल बिछाकर बारह-बारह के झुंड बैठे थे। श्ची से भरे डोंगों के गिर्द घेरा बनाकर वे बैठे थे और चुपचाप बड़ी लगन से, जैसे कि आम आदमी खाते हैं, खाना खा रहे थे। श्ची उस बंदगोभी से बनी थी, जिसे क्रोन्श्तात में ही काटकर और नमक लगाकर लकड़ी के पीपों में जहाज़ पर रख लिया गया था।

खाना खाते लोगों के बीच संभलकर बढ़ते हुए लूच्किन मक्सीम्का को अपने साथियों के पास ले गया। उन्होंने लूच्किन के इंतज़ार में अभी खाना शुरू नहीं किया था। लूच्किन उनसे बोला:

"क्यों भाइयो, मक्सीम्का को अपने साथ बिठाओगे?"

"अरे पूछने की बात क्या है? बैठो दोनों जने!" बूढ़े बढ़ई ज़ख़ारिच ने कहा।

"शायद और किसी को ऐतराज हो... साफ़-साफ़ कह दो, भई!" लूच्किन ने फिर से पूछा।

सब ने एक स्वर में जवाब दिया कि मक्सीम्का उनके साथ खाना खाए और थोड़ा हटकर उन दोनों के बैठने के लिए जगह बनाई। मल्लाह मज़ाक़ करने लगे:

"अरे क्या, हमारे हिस्से का खा जाएगा!"

"सारा गोश्त तो नहीं हड़प जाएगा!"

"तेरे कलुए के लिए हमने चम्मच भी ले लिया है।"

"मैं तो, भाइयो, इसलिए पूछ रहा था कि यह हब्शी है... ईसाई नहीं," लूच्किन ने बैठकर और अपने पास मक्सीम्का को बिठाते हुए कहा। "पर मैं तो यह समझता हूं कि भगवान के सामने सब बराबर हैं... रोटी तो हर कोई खाना चाहता है।"

"और नहीं तो क्या? भगवान ने सबको ज़मीन पर बसाया है। उसके लिए तो कोई फ़र्क़ नहीं। वो तो सोइकिन अरदलिये जैसे बेवकूफ़ ये बातें करते हैं कि ईसाई है, नहीं है!" बूढ़े ज़खारिच ने फिर से कहा।

ज़खारिच की बात से सब सहमत लगते थे। रूसी मल्लाह तो सदा ही जिन अलग-अलग धर्मों, नस्लों के लोगों से मिलते हैं, सबके प्रति बड़ी सहिष्णुता दिखाते हैं।

लूच्किन के दल के साथियों ने मक्सीम्का का खुले दिल से स्वागत किया। किसी ने उसे चम्मच दिया, दूसरे ने भिगोया हुआ रस और सब बड़े प्यार से सहमे-सहमे बैठे लड़के को देख रहे थे। लगता था वह गोरी चमड़ी वालों से ऐसा प्यार पाने का आदी नहीं है। सब लोग मौन नज़रों से उसे न डरने को कह रहे थे।

"अच्छा तो, चलो शुरू करें, नहीं तो श्ची ठंडी हो जाएगी।" ज़खारिच बोला।

सबने सलीब का निशान बनाया और अपने-अपने चम्मच से बारी-बारी डोंगे में से श्ची लेने लगे।

"मक्सीम्का तू खाता क्यों नहीं? खा न, बुद्धू! बड़ी अच्छी श्ची है! गूड श्ची!" चम्मच की ओर इशारा करते हुए लूच्किन कह रहा था।

नीग्रो बालक को अमरीकी जहाज़ पर कभी गोरों के साथ खाना नहीं दिया जाता था, वहां उसे जूठन ही मिलती थी, जिसे वह कहीं अंधेरे कोने में दुबककर खाता था। वह ललचाई आंखों से श्ची की ओर देख रहा था, राल निगल रहा था, पर खाने में झिझक रहा था।

"देखो तो कैसा डरपोक है! उस अमरीकी शैतान ने बड़ा डराया होगा

बेचारे को!" मक्सीम्का के बगल में बैठे ज़खारिच ने कहा। और उसका सिर सहलाते हुए अपना चम्मच उसके मुंह के पास ले गया...

इसके बाद मक्सीम्का की सारी झिझक दूर हो गई और कुछ ही क्षणों में वह दबादब श्ची खाने लगा, फिर नमकीन गोश्त और बाजरे की खिचड़ी भी उसने खाई।

लूच्किन रह-रहकर उसकी हिम्मत बढ़ा रहा था, कह रहा था:

"गूड मक्सीम्का! वेरी गूड, भैया! खाए जा, मज़े से।"

(७)

सारे जहाज़ पर खाना खाकर सो रहे मल्लाहों के खर्राटे सुनाई दे रहे थे। सिर्फ़ ड्यूटी वाले मल्लाह नहीं सो रहे थे, और कहीं-कहीं कोई मल्लाह ख़ाली समय का लाभ उठाते हुए अपने जूते ठीक कर रहा था, कमीज़ सी रहा था या कपड़े-लत्ते की मरम्मत कर रहा था।

'लड़ाकू' पोत के पालों में हवा भरी हुई थी और उसे बढ़ाए लिए जा रही थी। ड्यूटी के मल्लाहों के लिए करने को कुछ था ही नहीं। हां अगर कहीं काली घटा बढ़ती दिखती, तो उन्हें ठीक समय पर पाल समेटने होते, ताकि उष्णकटिबंध की मूसलाधार बारिश और तेज़ हवा का सामना तैयार, यानी ख़ाली मस्तूलों से किया जा सके, जिससे झंझा के प्रतिरोध का क्षेत्रफल कम से कम हो।

परंतु क्षितिज एकदम साफ़ था। कहीं पर भी वह सुरमई धब्बा नहीं दिख रहा था, जो तेज़ी से बढ़ता है, विशाल काली घटा बनकर क्षितिज और सूरज को अपने गर्भ में छिपा लेता है। हवा के तेज़ झोंके जहाज़ को एक ओर को झुका-झुका देते हैं, डेक पर मूसलाधार पानी बरसता है, मल्लाहों को बुरी तरह से भिगो देता है और जितनी तेज़ी से यह झंझा आती है, उतनी ही तेज़ी से चली भी जाती है।

फिर से धूप खिल उठती है, डेक, रस्सों, पालों और मल्लाहों की कमीज़ों को सुखाती है। फिर से ऊपर नीला आकाश और नीचे नीला महासागर होता

है, जिसके वक्ष पर सारे पाल चढ़ाए जहाज़ हवा के बल बढ़ता चला जाता है।

इस समय भी चारों ओर सुहावना दृश्य था। जहाज़ पर भी शांति थी। सब आराम कर रहे थे और इस समय नितांत आवश्यक होने पर ही मल्लाहों को बुलाया जा सकता था, अन्यथा नहीं – यह जहाजों की पुरानी परम्परा है।

अगले मस्तूल के पास छाया में लूच्किन बैठा था, वह भी आज नहीं सो रहा था। ड्यूटी वाले यह देखकर दंग थे, वे जानते थे कि लूच्किन सोने में उस्ताद है।

कुछ गुनगुनाता हुआ लूच्किन किरमिच के टुकड़े से जूते काट रहा था। रह-रहकर वह अपने पास ही मीठी नींद में सोए मक्सीम्का और उसके पांवों की ओर देखता, मानो यह अनुमान लगा रहा हो कि उसने खाने के तुरंत बाद ही इन पांवों का जो नाप लिया है, वह ठीक है या नहीं।

उसका नाप ठीक ही लगता था, वह फिर से काम में जुट गया और अब सफ़ेद पतलून में से दिख रहे काले पांवों की ओर उसका ध्यान नहीं जा रहा था।

यह सोचकर कि वह इस अभागे अनाथ बच्चे के लिए "अब्बल दरजे" के जूते बना देगा और भी उसे जो कुछ चाहिए सी देगा, लूच्किन का मन हर्ष-विभोर हो रहा था। फिर उसे अपनी मल्लाह की ज़िंदगी याद हो आई। उसमें याद करने को कुछ ख़ास था नहीं: अंधाधुंध पीना और सरकारी कपड़ा-लत्ता बेचकर पी लेने पर कोड़े खाना – यही थी उसकी सारी ज़िंदगी।

लूच्किन इस निष्कर्ष पर अकारण ही नहीं पहुंचा कि अगर वह इतना दुस्साहसी मल्लाह न होता, जिसकी निडरता देखकर सभी कप्तान और अफ़सर दंग रह जाते थे, तो वह कब का क़ैदियों की टुकड़ी में होता।

"काम देखकर दया करते थे!" उसने अपने आप से कहा, न जाने क्यों गहरी सांस ली और बोला: "यही तो अड़ंगा है।"

यह अड़ंगा किस बात में था: इस बात में कि वह बेतहाशा पीता था और किसी भी बंदरगाह में (सिवाय क्रोन्श्तात के) सबसे पास वाले अड्डे के आगे कभी नहीं पहुंचा, या इस बात में कि वह निडर मल्लाह था और केवल इसलिए क़ैदियों की टुकड़ियों में जाने से बचा रहा था, – यह कहना मुश्किल था। एक बात निस्सदेह थी: जीवन में किसी "अड़ंगे" के प्रश्न पर

लूच्किन सोच में पड़ गया था, उसका गुनगुनाना बंद हो गया और आख़िर वह बोला :

"मक्सीम्का के लिए बंडी भी सीनी चाहिए... बंडी के बिना भला कैसे काम चलेगा?"

खाने के बाद के आराम के एक घंटे में लूच्किन ने मक्सीम्का के जूतों के लिए साज और तलवे काट लिए। तलवे नए ही थे, सरकारी माल के, जो लूच्किन ने सुबह ही एक किफ़ायती मल्लाह से उधार लिए थे, जिसके पास अपने जूते थे। लूच्किन जानता था कि उसके पास पैसे नहीं रहते थे, ख़ास तौर पर तट पर उतरने पर, इसलिए उसने ख़ुद ही यह सुझाया कि क़र्ज़े के पैसे मेट ही उसकी तनख़्वाह में से काट कर दे देगा।

मेट की सीटी बजी और उसके बाद मेट वसीली येगोरोविच, या जैसा कि मल्लाह उसे कहते थे – येगोरिच "भोंपू" – ने उठने का हुक्म दिया। लूच्किन मीठी नींद सो रहे मक्सीम्का को जगाने लगा। लूच्किन के विचार में मक्सीम्का "सवारी" ही था, पर तो भी उसे मल्लाहों की तरह रहना चाहिए था, ताकि कोई अप्रिय बात न हो, ख़ास तौर पर येगोरिच की ओर से। लूच्किन यह मानता था कि येगोरिच नेक आदमी है, पर ताव में आकर वह नीग्रो बालक को भी "क़ायदा बिगाड़ने" के लिए झापड़ रसीद कर सकता था, सो अच्छा हो कि वह शुरू से ही क़ायदा सीखे।

"उठ, मक्सीम्का!" बालक का कंधा झकझोड़ते हुए लूच्किन प्यार से कह रहा था।

मक्सीम्का ने अंगड़ाई ली, आंखें खोलीं और चारों ओर नज़र दौड़ाई। यह देखकर कि सभी मल्लाह उठ खड़े हुए हैं और लूच्किन अपना काम समेट रहा है, मक्सीम्का झट से उठ खड़ा हुआ और वफ़ादार कुत्ते की तरह लूच्किन की आंखों में झांकने लगे।

"अरे तू डर नहीं, भैया... है न बुद्धू... हर बात से डरता है! यह देख, तेरे लिए जूते बना रहा हूं।"

नीग्रो बालक की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि लूच्किन उसके पांवों और किरमिच के टुकड़ों की ओर दिखाते हुए क्या कह रहा है, पर वह मुस्कराए

जा रहा था, यह महसूस करते हुए कि उससे कुछ अच्छी बात कही जा रही है। लूच्किन ने उसे इशारा किया और वह उसके पीछे-पीछे मल्लाहों के रहने के निचले डेक पर चला गया। वहां बड़े कौतूहल से वह देखने लगा कि कैसे लूच्किन ने कपड़ों से भरी अपनी किरमिच की संदूकची में काम रखा। लूच्किन ने अपनी टोपी उतारी और कभी टोपी, तो कभी लड़के के सिर की ओर इशारा करते हुए शब्दों से भी और इशारों से भी यह समझाने का यत्न करने लगा कि मक्सीम्का के पास भी ऐसी ही टोपी होगी, सफ़ेद खोल और नीले फ़ीते वाली, पर वह फिर से कुछ नहीं समझ पा रहा था और बस कृतज्ञतापूर्वक मुस्कराए जा रहा था।

नन्हा नीग्रो अपने सारे हृदय से इन गोरे लोगों की सद्‌भावना अनुभव कर रहा था, जो 'बेट्सी' के गोरों से बिल्कुल अलग भाषा बोलते थे। यह लाल मिर्च जैसी नाक और सन के रंग के बालों वाला मल्लाह तो कितना उदार था – ऐसे शानदार कपड़े उसने दिए थे, इतना अच्छा खाना खिलाया था और ऐसे प्यार से देखता था, जैसे कभी किसी ने उसे नहीं देखा था, सिवाय काले नारी चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आंखों ने।

सहृदयता और स्नेह भरी ये दो आंखें उसकी स्मृति में अतीत की, धुंधली याद के रूप में केले और नारियल के पेड़ों से घिरी झोंपड़ियों की यादों के साथ घुली-मिली, बनी हुई थीं। यह उसकी कल्पना थी या बचपन की छापें – उसके लिए कहना मुश्किल था। हां, ये आंखें कभी-कभी सपने में उसे दिखतीं, उसे सांत्वना देती थीं। और अब उसने प्रकट रूप में स्नेह भरी आंखें देखी थीं।

युद्धपोत पर बिताए ये दिन उसे उन मीठे सपनों जैसे ही लग रहे थे, जो नींद में आते हैं – अभी थोड़े दिन पहले की ही उसकी ज़िंदगी, दुख और डर से भरी ज़िंदगी से ये इतने भिन्न थे।

आखिर लूच्किन ने टोपी की बाबत समझाना छोड़कर संदूकची में से चीनी की डली निकाली और मक्सीम्का को दी। वह गद्‌गद हो उठा। उसने मल्लाह का खुरदरा, गट्टेदार हाथ पकड़ा और सहमा-सहमा से उसे सहलाने लगा। वह लूच्किन की आंखों में झांक रहा था, उसके चेहरे पर ऐसे पददलित जीव का भाव था, जिसे अंततः कुछ लाड़-प्यार मिला हो। उसकी आंखों से

भी और चेहरे से भी कृतज्ञता टपक रही थी ... लड़के ने चीनी की डली मुंह में डालने से पहले अपनी मातृ भाषा में जल्दी-जल्दी और बड़े जोश से कुछ शब्द कहे, उनके कंठ्य स्वरों में भी यही कृतज्ञता छलकती थी।

"देखो तो, कैसे लाड़ लेता है। कभी किसी ने तुझ दुखियारे को प्यार के दो शब्द नहीं कहे लगते!" मल्लाह अपनी फटी-फटी आवाज़ में जितनी कोमलता उंडेल सकता था, उतनी कोमलता से बोला। "खा ले न! बड़ी स्वाद है!"

निचले डेक के इस अंधेरे कोने में स्नेह के आदान-प्रदान के बाद मल्लाह और नीग्रो बालक की मैत्री पक्की हो गई। दोनों एक दूसरे से पूरी तरह खुश थे।

"हां, भैया, मक्सीम्का, तुझे हमारी बोली ज़रूर सिखानी चाहिए, नहीं तो कुछ समझ में ही नहीं आता. क्या गिटपिट करता है तू कलुए। अच्छा, चलो ऊपर चलें। अभी गोलंदाज़ी का अभ्यास होगा! देखना!"

वे ऊपर चले आए। शीघ्र ही ढोलची ने खतरे का ढोल बजाया। मक्सीम्का मस्तूल से सटकर खड़ा हो गया, ताकि बेतहाशा दौड़ते जा रहे मल्लाहों के पांवों तले आकर गिर न जाए। पहले तो वह तोपों की ओर दौड़ते जा रहे मल्लाहों को देखकर डर ही गया, पर फिर वह शांत हो गया और प्रशंसा भरी नज़रों से यह देखने लगा कि कैसे मल्लाहों ने बड़ी-बड़ी तोपों को पीछे धकेला, कैसे जल्दी से उनमें ब्रुश डालकर साफ़ किया, फिर से तोपें जहाज़ के पहलू के बाहर निकाल दीं। और उनके पास सावधान खड़े हो गये। लड़के को उम्मीद थी कि अभी गोलाबारी होगी और वह परेशान था कि किस पर गोले दागेंगे, क्योंकि चारों ओर कहीं कोई दूसरा जहाज़ न था। वह इस गोलाबारी से परिचित था और अपनी आंखों से यह देख चुका था कि कैसे 'बेट्सी' के दबूसे के पीछे धम से कुछ आ गिरा था। 'बेट्सी' जहाज़ तब हवा का रुख लेकर किसी तीन मस्तूलों वाले पोत से बचकर भाग रहा था, जो हब्शियों से लदे 'बेट्सी' का पीछा कर रहा था। लड़के ने देखा था कि कैसे जहाज़ पर सब डर गए थे और कैसे जहाज़ का कप्तान गालियां देता रहा था, जब तक कि तीन मस्तूलों वाला पोत काफ़ी पीछे न छूटने लगा। उसे यह पता

नहीं था कि यह उन ब्रिटिश क्रूज़रों में से एक था, जिन्हें हब्शियों का व्यापार करनेवालों को पकड़ने के लिए नियुक्त किया गया था; और वह भी खुश हो रहा था कि उनका जहाज़ बच निकला और इस तरह उसका जल्लाद कप्तान पकड़ा नहीं गया और उसे लोगों का व्यापार करने के लिए मस्तूल पर लटका नहीं दिया गया। *

लेकिन कोई गोला नहीं दागा जा रहा था। मक्सीम्का बड़े उत्साह से ढोल बजते सुन रहा था और लूच्किन पर नज़रें टिकाए हुए था, जो डेक के अग्रभाग की तोप के पास खड़ा था और निशाना साधने के लिए बार-बार झुक रहा था।

अभ्यास का दृश्य मक्सीम्का को बहुत अच्छा लगा और उससे भी ज़्यादा अच्छी रही अभ्यास के तुरंत बाद मिली चाय। पहले तो मक्सीम्का यह देखकर हैरान होता रहा कि कैसे सब मल्लाह मगों में से गरम पानी की चुस्कियां भर रहे हैं, चीनी की डली कुतर रहे हैं और पसीने से तर-ब-तर होते जा रहे हैं। पर जब लूच्किन ने उसे भी मग और चीनी की डली दी, तो मक्सीम्का को भी मज़ा आया और वह दो मग पी गया।

उसी दिन शाम को जब गर्मी कुछ कम होने लगी और जब लूच्किन के शब्दों में "दिमाग़ में बात बिठाना" आसान होता है, तभी उसने रूसी का पहला पाठ शुरू किया। वह लड़के को यह समझाना चाहता था कि उसका नाम मक्सीम्का है और उसके शिक्षक का नाम लूच्किन। लेकिन उसे अपने प्रयासों में कतई सफलता नहीं मिल रही थी और दूसरे मल्लाह उसका खूब मज़ाक़ उड़ा रहे थे।

---

* पुराने ज़माने में जब हब्शियों का व्यापार खूब ज़ोरों पर था, तो यूरोप के प्रायः सभी देशों के बीच इस अन्याय का विरोध करने के हेतु अंतर्राष्ट्रीय संधि हुई थी। इसके अंतर्गत फ्रांस और इंगलैंड अफ्रीका और अमरीका के तटों की ओर अपने युद्धपोत भेजते थे। पकड़े गए लोगों के साथ सख्ती बरती जाती थी। कप्तान और उसके सहायक को फांसी दे दी जाती थी और मल्लाहों को कठोर श्रम-कारावास की सज़ा मिलती थी। नीग्रो आज़ाद घोषित कर दिए जाते थे और पकड़े गए जहाज उन्हें पकड़नेवालों का पुरस्कार होते थे। – ले०

लूच्किन का मत था कि नाम का ज्ञान सारी शिक्षा की नींव है। यद्यपि वह कभी शिक्षक नहीं रहा था, परंतु अपने ध्येय की प्राप्ति में वह जिस अध्यवसाय से लगा हुआ था, जितने धीरज और नम्रता से वह सिखा रहा था, उस पर पेशेवर शिक्षकों को भी ईर्ष्या हो सकती थी, और फिर उन्हें तो शायद ही कभी ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा हो, जैसी मल्लाह के सामने थीं।

वह अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए नए-नए चतुराई भरे रास्ते सोचता और तुरंत ही उन पर अमल क़रने लगता।

वह नन्हे नीग्रो की छाती पर उंगली रखकर कहता: "मक्सीम्का" और फिर अपनी ओर इशारा करके कहता "लूच्किन"। कई बार ऐसा करने पर भी उसे संतोषजनक परिणाम नहीं मिला, तब वह कुछ क़दम दूर हटकर चिल्लाने लगा: "मक्सीम्का!" लड़का खीसें निपोड़ता, पर इस तरह भी उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा। तब लूच्किन ने नया तरीक़ा सोचा। उसने एक मल्लाह से कहा कि वह "मक्सीम्का" पुकारे और जब उसने ऐसा किया, तो लूच्किन सफलता के विश्वास के साथ खुश होते हुए लड़के की ओर इशारा किया और वह पूरी तरह समझ जाए इसलिए उसका कालर भी हौले से झकझोड़ा। पर, अफ़सोस! मक्सीम्का खिलखिलाकर हंस रहा था। प्रत्यक्षत: कालर झकझोड़ने का मतलब उसने यह समझा कि उसे नाचने को कहा गया है, क्योंकि वह तुरंत ही उछला और सब मल्लाहों तथा स्वयं लूच्किन को खुश करता हुआ नाचने लगा।

आखिर जब नाच ख़त्म हुआ, तो लड़का यह अच्छी तरह समझ गया कि सब उसके नाच से बहुत खुश हैं, क्योंकि कई मल्लाहों ने उसका कंधा, पीठ, सिर थपथपाया और हंसते हुए बोले:

"गूड, मक्सीम्का! शाबाश, मक्सीम्का!"

यह कहना कठिन है कि मक्सीम्का को उसके नाम से परिचित कराने के लूच्किन के नए प्रयास कितने सफल रहते, जो वह फिर से शुरू करना चाहता था, पर तभी डेक पर वारंट अफ़सर आया, जो अंग्रेज़ी बोलता था और मामला आसान हो गया। उसने लड़के को समझाया कि उसका नाम "बॉय" नहीं, मक्सीम्का है और यह भी बता दिया कि उसके मित्र का नाम लूच्किन है।

"अब इसे पता चल गया है कि तूने इसका क्या नाम रखा है!" वारंट अफ़सर ने लूच्किन से कहा।

"बहुत-बहुत शुक्रिया हजूर!" खुश होकर लूच्किन ने कहा और बोला: "मैं तो बड़ी देर से मगज़पच्ची कर रहा था। छोकरा तो अक्लमंद है, पर यह नहीं समझ पा रहा था कि इसका नाम क्या है..."

"अब जान गया... पूछ देखो!"

"मक्सीम्का!"

नन्हे नीग्रो ने अपनी ओर इशारा किया।

"बहुत खूब, हजूर... लूच्किन!" फिर से मल्लाह लड़के की ओर उन्मुख हुआ।

लड़के ने मल्लाह की ओर इशारा किया।

और वे दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। बाक़ी मल्लाह भी हंस रहे थे और कह रहे थे:

"अरे, कलुआ तो पंडित बन रहा है..."

आगे के पाठ में कोई कठिनाई नहीं आई।

लूच्किन नई-नई चीज़ें दिखाता और उनके नाम बताता जाता। अगर कोई शब्द वह ज़रा भी तोड़-मरोड़ सकता तो ज़रूर ऐसा करता, कमीज़ की जगह "कमीजा", मस्तूल की जगह "मस्तूला"। उसे विश्वास था कि इस तरह वे विदेशी शब्दों से अधिक मिलते हैं और मक्सीम्का उन्हें आसानी से याद कर पाएगा।

जब शाम के खाने की सीटी बजी, तो मक्सीम्का लूच्किन के पीछे कुछ रूसी शब्द दोहरा सकता था।

"भई वाह, लूच्किन। फटाफट सिखा दिया कलुए को। ऐसे तो बस गूड केप तक पहुंचते-पहुंचते वह हमारी बोली ही बोलने लगेगा!" मल्लाह कह रहे थे।

"और नहीं तो क्या! गूड केप तक तो बीस दिन से कम का रास्ता नहीं है... और मक्सीम्का समझदार है!"

"मक्सीम्का" सुनकर लड़के ने लूच्किन की ओर आंखें उठाईं।

"देखो तो, कैसे अपना नाम जानता है!.. आ जा, भैया, बैठ जा, खाना खाएंगे।"

प्रार्थना के बाद खाटें मिलीं। लूच्किन ने मक्सीम्का को अपने पास डेक पर सुलाया। मक्सीम्का बहुत सुखी था और कृतज्ञता से ओतप्रोत। वह आराम से मल्लाहों के गद्दे पर सिर तले तकिया रखे और कम्बल ओढ़े जिस्म तोड़ रहा था। लूच्किन ने स्टोरकीपर से उसके लिए खाट और बिस्तर ले लिया था।

"सो जा, सो जा मक्सीम्का! सुबह जल्दी उठना होगा।"

मक्सीम्का की तो उसके कहे बिना ही आंखें मुंदी जा रही थीं। पहला पाठ उसने काफ़ी अच्छी तरह सीख लिया था। सोने से पहले बोला: "मक्सीम्का" और "लूचिक", अपने उस्ताद का नाम उसने यों ही समझा था।

मल्लाह ने नन्हे नीग्रो पर सलीब का निशान बनाया और जल्दी ही खर्राटे भरने लगा।

आधी रात से उसकी ड्यूटी थी। अगले मस्तूल पर एक और मल्लाह लेओन्त्येव के साथ वह ड्यूटी दे रहा था।

इधर-उधर देखकर कि सब कुछ ठीक-ठाक है कि नहीं, वे दोनों बैठ गए और बतियाने लगे, ताकि ऊंघे न। क्रोन्श्तात की बातें कीं, पुराने कमांडरों को याद किया और फिर चुप हो गए।

सहसा लूच्किन ने पूछा:

"लेओन्त्येव, तू कभी पीता-वीता नहीं?"

कभी नशा न करनेवाला संयमी लेओन्त्येव अच्छे मल्लाह के नाते लूच्किन का आदर करता था, पर साथ ही उसके पियक्कड़पन के कारण उसे घिन से देखता था। उसने दृढ़तापूर्वक कहा:

"कभी नहीं!"

"कभी हाथ तक नहीं लगाया!"

"कभी त्योहार-व्योहार पर एकाध गिलास पी ली, तो पी ली।"

"तभी तो तू जहाज़ पर अपना हिस्सा नहीं लेता, उसके बदले पैसे लेता है?"

"हां भैया, पैसे तो आख़िर काम आएंगे... रूस लौटेंगे, वहां रिटायर हो गए, तो हाथ में कुछ पैसे होने से अच्छा ही रहेगा..."

"सो तो है ..."

"पर तू लूच्किन, क्यों यह सब पूछने लगा?"

"इसीलिए, लेओन्त्येव, कि तू खुशक़िस्मत है ..."

लूच्किन ने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा :

"सुना है इस नशे से छूटने का कोई मंतर-वंतर है?"

"हां, कुछ लोग पढ़ते हैं ... 'कोब्चिक' पर छोटे अफ़सर ने एक मल्लाह पर पढ़ा था ... जानता था वह ... हमारे यहां भी एक आदमी है ..."

"कौन?"

"ज़खारिच बढ़ई ... पर वह किसी को बताता नहीं। हर किसी पर पढ़ता भी नहीं। पर तू क्या पीना छोड़ेगा, लूच्किन?" लेओन्त्येव ने व्यंग्य के स्वर में पूछा।

"छोड़ना तो क्या, बस यह है कि अंधाधुंध न पिऊं ..."

"सोच-समझकर पीने की कोशिश कर ..."

"कोशिश तो की थी, पर बात बनती नहीं। बस एक बार पीने लगूं, तो फिर छूटती नहीं। ऐसा ही है मेरा ढंग!"

"ढंग-वंग कुछ नहीं, अक्ल की कमी है तुझे!" लेओन्त्येव ने उसे समझाते हुए कहा। "हर आदमी को अपनी होश होनी चाहिए ... तू ज़खारिच से बात कर देख। हो सकता है, तुझे ना न करे ... पर तेरे पर मंतर-वंतर का असर शायद ही पड़े!" लेओन्त्येव ने उपहास के साथ कहा।

"हां, मैं भी यही सोचता हूं। नहीं असर पड़ेगा!" लूच्किन बोला और खुद ही हौले से हंस दिया, मानो इस बात पर खुश ही हो कि उस पर किसी मंतर का असर नहीं पड़ेगा।

(८)

तीन हफ़्ते बीत गए। क्लिपर पोत 'लड़ाकू' केपटाउन से दूर नहीं था, लेकिन बिल्कुल सामने से और कभी-कभी तो तूफ़ान जैसी तेज़ बहती हवा की वजह से वह तट के पास नहीं जा पा रहा था। हवा और लहरें इतनी ज़ोरदार

थीं कि भाप का इंजन चलाकर भी नहीं पहुंचा जा सकता था। कोयला ही बेकार फूंका जाता।

मौसम बदलने की प्रतीक्षा में पोत पाल समेटे किनारे से थोड़ी ही दूर खड़ा था और ज़ोर से धचकोले खा रहा था।

इस तरह छह-सात दिन बीते।

आख़िर हवा रुक गई। जहाज़ पर भाप का इंजन चलाया गया और शीघ्र ही सफ़ेद चिमनी से धुआं छोड़ता पोत केपटाउन को चल दिया।

कहना न होगा कि मल्लाह इस पर कितने ख़ुश थे।

पर जहाज़ पर एक आदमी था, जो न केवल ख़ुश नहीं था, बल्कि ज्यों-ज्यों बंदरगाह पास आती जा रही थी, त्यों-त्यों वह अधिक उदास नज़र आ रहा था।

यह लूच्किन था, जो मक्सीम्का से बिछुड़नेवाला था।

बीते मास में मल्लाहों के अनुमान के विपरीत लूच्किन ने मक्सीम्का की देखभाल करनी नहीं छोड़ी, बल्कि उसे मक्सीम्का से मोह हो गया और नन्हा नीग्रो भी उससे हिल-मिल गया। वे दोनों एक दूसरे की बातें बड़ी अच्छी तरह समझ लेते थे, क्योंकि लूच्किन ने असाधारण अध्यापन योग्यता का परिचय दिया था और मक्सीम्का भी बड़ा होशियार निकला था। अब वह थोड़ी-बहुत रूसी बोल लेता था। वे एक दूसरे को जितना अधिक जानते जा रहे थे, उतना ही उनका लगाव बढ़ रहा था। मक्सीम्का के पास दो जोड़े कपड़े, जूते, टोपी और पेटी पर बंधा मल्लाहों का चाकू था। वह बड़ा समझदार और हंसमुख लड़का था। जहाज़ पर सब उसे प्यार करते थे, यहां तक कि येगोरिच मेट भी, जिसे जहाज़ पर कोई मुसाफ़िर कतई अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि वे कुछ नहीं करते, वह भी मक्सीम्का के प्रति उदार था, क्योंकि मक्सीम्का काम के वक़्त सदा दूसरों के साथ रस्से खींचता था और सदा किसी न किसी तरह दूसरों की मदद करने की कोशिश करता था, मुफ़्त की रोटी नहीं खाता था। बंदर की तरह बरांडल पर चढ़ जाता था और तूफ़ान आने पर भी डरता नहीं था, संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वह पक्का "मल्लाह छोकरा" था।

बड़े अच्छे स्वभाव का और स्नेही लड़का था वह। डेक पर नाच दिखाकर और सुरीली आवाज़ में अपने गाने गाकर वह मल्लाहों का मन बहलाता था। इसलिए सब उसे चाहते थे, लाड़-प्यार करते थे और वारंट अफ़सर का अरदली अर्तेमी अफ़सरों के कमरे में से उसके लिए बची-खुची पेस्ट्री ले आता था।

यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि मक्सीम्का लूच्किन के प्रति कुत्ते की तरह वफ़ादार था, हमेशा उसके साथ रहता था। मस्तूल पर भी उसके पास चढ़ जाता था, जब वह वहां ड्यूटी पर होता, या जब वह गलही पर पहरा दे रहा होता, तो उसके पास घंटों बैठा रहता, बड़े जतन से रूसी शब्द सीखता।

...ऊंचे कगारों वाला तट अच्छी तरह दिखाई दे रहा था। 'लड़ाकू' पोत पूरी गति से बढ़ रहा था। दोपहर तक जहाज़ केपटाउन में लंगर डालनेवाला था।

इस सुहानी सुबह को लूच्किन का मन बुझा-बुझा था और वह ज़ोर लगा-लगाकर तोप साफ़ कर रहा था। मक्सीम्का उसके पास ही खड़ा हाथ बंटा रहा था।

"हां, भैया मक्सीम्का, थोड़ी देर में हम अलग-अलग जाएगा!" आख़िर लूच्किन बोला।

"अलग-अलग क्यों?" मक्सीम्का हैरान हुआ।

"तुझे गूड केप पर छोड़ जाएंगे... और क्या करेंगे तेरा?"

लड़के ने अपने भविष्य के बारे में कुछ नहीं सोचा था और वह ठीक से यह समझ भी नहीं पा रहा था कि लूच्किन उसे क्या कह रहा है, पर मल्लाह का उदास चेहरा देखकर यह समझ गया कि वह कोई ख़ुशी की बात नहीं कर रहा। बालक के चेहरे पर उसके मनोभाव तुरंत ही झलक उठते थे। पल भर में उसका चेहरा उतर गया, बोला:

"मैं नहीं समझा, लूचिक।"

"जाएगा मक्सीम्का, जहाज़ से नीचे... तट पर उतरेगा, मैं आगे चला जाऊंगा, तू यहां रहेगा।"

लूच्किन उसे इशारों से समझाने लगा कि बात क्या है।

प्रत्यक्षत: नीग्रो बालक सब समझ गया। उसने लूच्किन का हाथ पकड़ लिया और मिन्नत करते हुए बोला :

"मैं तट नहीं ... मैं यहां, मक्सीम्का, लूचिक, लूचिक, मक्सीम्का, ... मैं लूसी मल्ला ... हां, हां, हां ..."

सहसा मल्लाह के दिमाग़ में एक विचार कौंधा। उसने पूछा :

"मक्सीम्का रूसी मल्लाह बनेगा?"

"हां, हां," मक्सीम्का दोहरा रहा था और पूरे ज़ोर से सिर हिला रहा था।

"अरे हां, कितना अच्छा रहे! पहले क्यों नहीं आई मेरे दिमाग़ में ... साथियों से बात करनी चाहिए और येगोरिच से ... वह बड़े अफ़सर से कह देगा।"

कुछ मिनट बाद ही डेक के अग्रभाग पर लूच्किन वहां जमा मल्लाहों से बातें कर रहा था :

"भाइयो! मक्सीम्का हमारे साथ रहना चाहता है। हम इजाज़त मांग लेंगे ... हमारे साथ हमारे जहाज पर रहे। तुम्हारा क्या ख्याल है, भाइयो?"

सब मल्लाहों ने बड़े उत्साह से इस प्रस्ताव का स्वागत किया।

तब लूच्किन मेट के पास गया, उसे सारे मल्लाह दल की ओर से बड़े अफ़सर से अनुरोध करने को कहा और अपनी ओर से जोड़ा :

"येगोरिच, मेरी बिनती है, ना मत करना ... बड़े सा'ब से कह दो कि मक्सीम्का खुद भी रहना चाहता है ... कहां बेचारे अनाथ को अकेला छोड़ जाएंगे। बिल्कुल मारा जाएगा बेचारा ... तरस आता है लड़के पर ... इतना अच्छा छोकरा है!"

"ठीक है, मैं कह दूंगा ... मक्सीम्का अच्छा लड़का है। पर पता नहीं, कप्तान क्या कहे ... हब्शी को रूसी जहाज़ पर रखने को तैयार हो कि नहीं ... कहीं इसमें अड़चन न हो ..."

"कोई अड़चन नहीं होगी, येगोरिच। हम मक्सीम्का को हब्शी नहीं रहने देंगे।"

"सो कैसे?"

"हमारे रूसी धर्म में उसका बपतिस्मा कर देंगे और वह रूसी हब्शी हो जाएगा।"

येगोरिच को यह विचार पसंद आया और उसने तुरंत ही बड़े अफ़सर को रिपोर्ट करने का वायदा किया।

बड़े अफ़सर ने मेट की बात सुनी और कहा :

"लूच्किन कह रहा है ?"

"सारा मल्लाह दल कह रहा है, हजूर... कहां उसे छोड़ेंगे ? तरस आता है, हजूर... वह हमारे जहाज़ पर छोटा मल्लाह होगा। लड़का बड़ा सुधरा हुआ है, हजूर। और अगर उसका बपतिस्मा कर दें, तो बस आत्मा का भी उद्धार हो जाए।"

बड़े अफ़सर ने कप्तान को रिपोर्ट देने का वायदा किया।

झंडा फहराने के समय कप्तान ऊपर आया। बड़े अफ़सर ने जब मल्लाह दल का अनुरोध बताया, तो पहले तो कप्तान न करने लगा था। पर फिर शायद उसे अपने बच्चे याद हो आए, उसने तत्क्षण अपना निश्चय बदल लिया और बोला :

"ठीक है, रहे। उसे छोटा मल्लाह बना देंगे। और जब हमारे साथ क्रोन्श्तात लौटेगा तो उसे कहीं दाख़िल करा देंगे... वाकई, क्यों उसे यों छोड़ा जाए और वह ख़ुद भी नहीं चाहता ! हां उसे लूच्किन की देखभाल में ही रहने दीजिए... है तो यह लूच्किन पक्का पियक्कड़, पर देखिए... लड़के से इतना लगाव... मुझे डाक्टर ने बताया था, कैसे उसने नीग्रो के लिए कपड़े सिए थे..."

डेक पर जब मक्सीम्का को जहाज़ पर रखे रहने की ख़बर पहुंची, तो सभी मल्लाह बेहद ख़ुश हो उठे। बेशक लूच्किन और मक्सीम्का सबसे ज़्यादा ख़ुश थे।

दोपहर के एक बजे पोत ने केपटाउन बंदरगाह में लंगर डाला। अगले दिन जो मल्लाह पहली पाली में ड्यूटी दे चुके थे, उन्हें तट पर जाने की इजाज़त मिली। लूच्किन और मक्सीम्का भी जाने को तैयार हुए।

"देख, लूच्किन, कहीं मक्सीम्का को बेचकर मत पी लेना," येगोरिच ने हंसते हुए कहा।

प्रत्यक्षतः यह बात लूच्किन को चुभी, उसने जवाब दिया : "हो सकता है मक्सीम्का की वजह से मैं बिना पिए लौट आऊं !"

लूच्किन तट से नशे में धुत्त लौटा, पर सब यह देखकर हैरान थे कि

उसके कपड़े सही सलामत थे। बाद में पता चला कि ऐसा मक्सीम्का की बदौलत ही हुआ। उसने जब यह देखा कि उसका मित्र हद से ज़्यादा पी रहा है, तो वह भागा-भागा पास के दूसरे अड्डे पर रूसी मल्लाहों को बुलाने गया और वे लूच्किन को घाट पर उठा लाए और उसे नाव में लिटा दिया, जहां मक्सीम्का उसके पास से पल भर को भी नहीं हटा।

लूच्किन के मुंह से बोल मुश्किल से निकल रहे थे, पर वह बार-बार कह रहा था :

"मक्सीम्का कहां है? इधर दो, मेरे मक्सीम्का को... भाइयो, मैंने मक्सीम्का को नहीं बेचा ... वह मेरा सबसे अच्छा दोस्त है ... कहां है मक्सीम्का ?"

और जब मक्सीम्का उसके पास आया, तो वह तुरंत शांत हो गया और सो गया।

हफ़्ते भर बाद 'लड़ाकू' पोत केप ऑफ़ गुड होप से चल दिया। शीघ्र ही धूमधाम के साथ मक्सीम्का का बपतिस्मा किया गया।

तीन साल बाद 'लड़ाकू' पोत पर चौदह वर्ष की आयु में मक्सीम्का क्रोन्श्तात पहुंचा। जहाज़ पर वारंट अफ़सर उसे पढ़ाता रहा था और अब वह रूसी अच्छी तरह पढ़-लिख लेता था।

कप्तान ने उसे नर्सिंग स्कूल में दाखिल करवा दिया। लूच्किन भी रिटायर हो गया और क्रोन्श्तात में ही रहने लगा, ताकि अपने प्यारे बालक के पास हो, जिसे उसने अपने हृदय का सारा स्नेह दिया था और जिसकी ख़ातिर अब वह अपने कपड़े बेचकर नहीं, बल्कि सोच समझकर पीता था।

व्सेवोलोद गार्शिन

सिग्नल

व्सेवोलोद मिखाइलोविच गार्शिन का जन्म १८५५ में हुआ और ३३ वर्ष की आयु में ही उनका देहांत हो गया। अपने इस अल्प जीवन-काल में वह दस से कुछ अधिक कहानियां लिख पाए। इनमें अधिकांश बड़ों के लिए ही हैं। किंतु बाल-साहित्य और बच्चों के चरित्रनिर्माण की समस्याओं में भी गार्शिन सदा रुचि लेते रहे। वह पीटर्सबर्ग के शिक्षाकर्मियों की मण्डली में शामिल हुए। इसका उद्देश्य बच्चों के लिए पुस्तकें चुनने में माता-पिताओं और शिक्षकों की सहायता करना था। इस मण्डली के सदस्य के रूप में गार्शिन ने १८८५ और १८८६ में प्रकाशित वार्षिक पत्रिका 'बाल-साहित्य सर्वेक्षण' का सम्पादन किया। विदेशी लेखकों की कुछ बाल-कथाओं का भी उन्होंने अनुवाद किया। आज तक सोवियत बच्चे बड़ी दिलचस्पी से गार्शिन की बाल-कथाएं 'गर्वीला ताड़', 'मेंढकी और गुलाब' पढ़ते हैं। सबसे लोकप्रिय है—'मेंढक की यात्रा', जो गार्शिन ने पंचतंत्र की कछुए और सारसों की कहानी के आधार पर लिखी।

'सिग्नल' कहानी १८८७ में बड़ों के लिए पत्रिका में प्रकाशित हुई, लेकिन तुरंत ही बच्चों की प्रिय पुस्तक बन गई। सरल और रोचक ढंग से लिखी गई इस कहानी में लेखक इस प्रचलित विचार का खण्डन करता है कि संसार में बुराई का ही प्रभुत्व है। लेखक ने अपनी कहानी में भलाई में, मेहनतकश इन्सान के उत्तम नैतिक गुणों में विश्वास की पुष्टि की है।

सेम्योन इवानोव रेलवे में लाइनमैन का काम करता था। उसकी चौकी से एक स्टेशन नौ मील दूर था और दूसरा कोई सात मील। कोई तीन मील दूर पिछले साल एक बड़ी कताई मिल खुली थी। जंगल के पीछे से उसकी काली चिमनी दिखाई देती थी। आस-पास लाइनमैनों की चौकियों के अलावा कोई घर नहीं था।

सेम्योन इवानोव बीमार और टूटा हुआ आदमी था। नौ साल पहले वह लड़ाई में गया था। एक अफ़सर का अर्दली था वह और उसके साथ पूरे अभियान में रहा था। वहां उसे भूखा भी रहना पड़ा था और कड़कड़ाती ठंड व चिलचिलाती धूप भी सहनी पड़ी थी। सर्दी-गर्मी में वह तीस-तीस, चालीस-चालीस मील चला था। गोलियों की बौछार में भी चलना पड़ा था, पर भगवान की दया से एक भी गोली उसे नहीं लगी थी। एक बार उनकी रेजिमेंट मोर्चे की अगली लाइन में रही थी; हफ़्ते भर तक तुर्कों के साथ गोलियां चलती रहीं:

इधर हमारी टुकड़ी थी और खड्ड के पार तुर्कों की, सुबह से शाम तक गोलियां चलती रहती थीं। सेम्योन का अफ़सर भी उसी टुकड़ी में था; दिन में तीन बार रेजिमेंट के रसोईघर से सेम्योन उसके लिए खाना और गर्म समोवार ले जाया करता था। खुली जगह पर वह समोवार लेकर चलता, सायं-सायं करती गोलियां बरसतीं, पत्थरों से टकरातीं; सेम्योन का डर के मारे बुरा हाल होता, वह रोता, पर चलता जाता। अफ़सर लोग उससे बहुत खुश थे: उन्हें चौबीसों घंटे गर्म चाय मिलती रहती थी। इस अभियान से वह सही-सलामत लौटा, बस हाथ-पैर टूटने लगे थे। तब से उसे बहुत दुख झेलना पड़ा था। घर लौटा तो बूढ़ा बाप मर गया, गले की बीमारी थी उसे; सेम्योन घरवाली के साथ अकेला रह गया। खेतीबारी उनकी ठीक नहीं चली; फूले हाथों-पैरों से ज़मीन जोतना भी आसान नहीं था। अपने गांव में रहना उनके लिए नागवार हो गया और वे नई जगह सुख-चैन ढूंढ़ने निकल पड़े। सेम्योन अपनी बीवी के साथ खेर्सोन भी गया, दोन के इलाके में भी, पर कहीं उसे सुख नहीं मिला। बीवी नौकरानी का काम करने लगी और सेम्योन पहले की ही तरह भटकता फिर रहा था। एक बार वह रेलगाड़ी में कहीं जा रहा था; एक स्टेशन पर क्या देखता है कि स्टेशन मास्टर जाना-पहचाना लगता है। सेम्योन उसकी ओर ताक़ रहा था और स्टेशन मास्टर भी सेम्योन को गौर से देख रहा था। दोनों एक दूसरे को पहचान गए: वह उनकी रेजिमेंट का ही अफ़सर था।

"अरे, इवानोव है क्या?" उसने पूछा।

"जी हजूर, मैं ही हूं।"

"तू यहां कैसे आ पहुंचा?"

सेम्योन ने उसे अपनी सारी कहानी सुनाई।

"अब कहां जा रहा है?"

"कुछ पता नहीं, हजूर।"

"वाह रे भोंदू, कैसे पता नहीं?"

"ठीक बात है, हजूर। कोई ठौर-ठिकाना तो है नहीं। कोई काम-वाम ढूंढ़ना चाहिए, हजूर।"

स्टेशन मास्टर ने उसकी ओर देखा, फिर कुछ सोचकर बोला :

"अच्छा, सुन, तू अभी स्टेशन पर ही ठहर जा। तू तो शादीशुदा है न ? बीवी कहां है ?"

"जी हजूर, शादीशुदा हूं। बीवी कूर्स्क में एक व्यापारी के घर नौकर है।"

"अच्छा तो बीवी को लिख दे कि यहां चली आए। मैं उसके लिए मुफ़्त के टिकट का इंतज़ाम कर दूंगा। हमारे यहां एक चौकी ख़ाली होनेवाली है ; मैं डिवीजन मैनेजर से तेरी सिफ़ारिश कर दूंगा।"

"बहुत-बहुत शुक्रगुज़ार हूं, हजूर, माई बाप," सेम्योन ने जवाब दिया।

और वह स्टेशन पर रहने लगा। स्टेशन मास्टर के रसोईघर में कुछ काम कर देता था, लकड़ियां चीरता, आंगन की, प्लेटफ़ार्म की झाड़ू-बुहारी कर देता। दो हफ़्ते बाद बीवी आ गई और सेम्योन हथट्राली में सामान लादकर अपनी चौकी को चल दिया। चौकी नई ही थी, अंदर गर्म थी, लकड़ी की कोई कमी न थी ; पहले वाले लाइनमैन ने पास ही सब्ज़ी-वब्ज़ी के लिए कुछ क्यारियां बना रखी थीं और रेल लाइन के इधर-उधर कोई दो बीघा ज़मीन भी थी। सेम्योन खुश हो गया ; सोचने लगा कि कैसे अपनी खेती करने लगेगा, गाय-घोड़ा ख़रीद लेगा।

काम के लिए सभी ज़रूरी चीज़ें उसे मिल गईं : हरी झंडी, लाल झंडी, लालटेनें, बिगुल, हथौड़ा, ढिबरियां कसने की चाबी, सब्बल, बेलचा, झाड़, बोल्ट और कीले। साथ में दो किताबें भी मिलीं – एक नियमों की और दूसरी टाइमटेबल की। शुरू-शुरू में तो सेम्योन रातें नहीं सोता था, टाइमटेबल रटता रहता था ; गाड़ी दो घंटे बाद जानेवाली होती, पर वह पहले से ही अपने हिस्से का चक्कर लगा आता, चौकी के पास बेंच पर बैठ जाता और ध्यान से देखता-सुनता रहता : पटरी तो नहीं हिल रही, गाड़ी की आवाज़ तो नहीं आ रही। सारे नियम भी उसने ज़बानी रट लिए ; पढ़ता तो वह मुश्किल से था – एक-एक अक्षर जोड़कर, फिर भी सब रट लिए।

गर्मियों के दिन थे, काम कोई ज़्यादा मुश्किल नहीं था, बर्फ़ हटाने की ज़रूरत नहीं और गाड़ियां भी उस लाइन पर कम ही चलती थीं। सेम्योन दिन में दो बार अपना पौन मील का चक्कर लगा आता ; कहीं-कहीं कोई

ढिबरी कस देता, रोड़ी ठीक कर देता, पानी के पाइप देख लेता और अपनी खेती करने घर लौट आता। खेती में एक बड़ी अड़चन थी: जो भी करना हो फ़ोरमैन से पूछो, वह डिवीजन मैनेजर को लिखेगा, जब तक इजाज़त मिलती, वह काम करने का वक़्त ही निकल चुका होता। सेम्योन और उसकी बीवी इसके मारे ऊबने भी लगे।

कोई दो महीने बीत गए; सेम्योन अपने आस-पास के लाइनमैनों से जान-पहचान करने लगा। एक तो बिल्कुल बूढ़ा था; उसे बदलने की सोच रहे थे; मुश्किल से चौकी में से बाहर निकलता था। उसकी घरवाली ही उसकी जगह लाइन का चक्कर लगाती थी। दूसरा लाइनमैन, जो स्टेशन की ओर वाली चौकी पर था, जवान ही था — दुबला-पतला सा, नसें उभरी हुईं। एक बार लाइन पर दोनों की मुलाकात हो गई; सेम्योन ने टोपी उतारी, झुककर सलाम किया, बोला:

"कहो भई पड़ोसी कैसे हो? मज़े में तो हो?"

पड़ोसी ने कनखियों से उसकी ओर देखा।

"नमस्ते!" और मुड़कर वापस चल दिया। इसके बाद एक बार दोनों की बीवियों की मुलाकात हो गई। सेम्योन की अरीना ने पड़ोसिन को नमस्ते की; उसने कोई बात नहीं की और चली गई। एक दिन सेम्योन ने उसे देखा, बोला:

"क्या बात है, बीबी, मर्द तेरा बात ही नहीं करता?"

वह कुछ देर चुप रही। फिर बोली:

"बातें क्या करे? हर किसी की अपनी ज़िंदगी है... जाओ, तुम अपनी देखो।"

ख़ैर, और एक महीना बीतते न बीतते दोनों की जान-पहचान हो गई। लाइन पर सेम्योन और वसीली मिलते, किनारे पर बैठ जाते, पाइप पीते और इधर-उधर की बातें करते। वसीली तो ज़्यादातर चुप ही रहता, सेम्योन उसे अपने गांव की, लड़ाई की बातें बताता रहता। एक दिन सेम्योन बताने लगा:

"उम्र तो मेरी ख़ास कुछ नहीं, पर दुख बहुत देखे हैं मैंने। सुख नहीं

मिला कहीं भी। आदमी की क़िस्मत में जो लिखा होता है, बस वही मिलता है उसे। यही बातें हैं, भाई मेरे।"

वसीली ने पाइप रेल पर ठोका और उठ खड़ा हुआ, बोला :

"हमारे पर क़िस्मत की मार नहीं, लोगों की मार है। इस दुनिया में आदमी से बढ़कर दुष्ट जानवर और कोई नहीं। भेड़िया भेड़िये को नहीं खाता, पर आदमी आदमी को जीते जी हड़प जाता है।"

"नहीं, भाई मेरे। यह बात तो नहीं। भेड़िया तो भेड़िये को खा जाता है।"

"वो तो मैंने बात में बात कह दी। पर फिर भी आदमी से कठोर कोई नहीं। अगर लोगों की दुष्टता और लालच न हो, तो चैन से जिया जा सकता है। हर कोई इसी ताक में रहता है कि कैसे तुझे काट ले, हड़प ले।"

सेम्योन सोच में पड़ गया, फिर बोला :

"पता नहीं, भैया। हो सकता है, ऐसा ही हो। पर ऐसा है भी तो सब भगवान की मर्ज़ी है।"

वसीली बोला :

"अगर ऐसा है, तो फिर मुझे तुमसे कोई बात नहीं करनी। हर अन्याय को भगवान की दुहाई देकर बैठे सहते रहो, तो फिर आदमी आदमी नहीं, जानवर है। मैं तो यही कहूंगा।"

और वह मुड़कर चल दिया, नमस्ते भी नहीं की। सेम्योन भी उठ खड़ा हुआ, चिल्लाया :

"वसीली, अरे नाराज़ क्यों होता है, भई!"

पर उसने मुड़कर नहीं देखा और चलता गया। सेम्योन देर तक उसे जाता देखता रहा जब तक कि मोड़ पर वसीली आंखों से ओझल नहीं हो गया। घर लौटकर बीवी से बोला :

"कैसा पड़ोसी है हमारा, अरीना। आदमी नहीं ततैया है।"

पर ख़ैर उनमें मन-मुटाव नहीं हुआ। अगले दिन फिर मिले और पहले की तरह बातें करने लगे, फिर वही चर्चा छिड़ गई।

"अरे भैया, अगर लोगों का जुल्म न होता, तो हम यहां इन चौकियों में न बैठे होते," वसीली बोला।

"चौकी भी क्या बुरी है... जिया जा सकता है।"

"ओफ़्फ़ो, जिया जा सकता है, जिया जा सकता है... बहुत जिए, पर कुछ नहीं पाया, बहुत देखा, पर कुछ नहीं जाना। ग़रीब आदमी चाहे चौकी में रहे या और कहीं, उसकी ज़िंदगी ज़िंदगी थोड़े ही है! ये कमबख़्त जीते जी खाते रहते हैं। सारा ख़ून निचोड़ लेते हैं और जब बूढ़े हो जाओगे, तो फोक की तरह उठा फेंकेंगे, सूअरों के खाने को। तुम्हें कितने पैसे मिलते हैं?"

"कोई ख़ास नहीं, भैया। बस बारह रूबल ही।"

"मुझे साढ़े तेरह मिलते हैं। अब तुम यह बताओ कि क्यों? क़ायदे से सबको एक सी तनख़्वाह मिलनी चाहिए: महीने में पंद्रह रूबल और आग, दिया-बत्ती अलग से। किसने यह तय किया कि हमें बारह या साढ़े तेरह मिलें? किसकी जेब में बाक़ी तीन या डेढ़ रूबल जाते हैं, कौन इनसे अपना दोज़ख भरता है, तुम बताओ तो मुझे!.. और तुम कहते हो जिया जा सकता है! समझते क्यों नहीं, बात डेढ़ या तीन रूबल की नहीं। चाहे पूरे पंद्रह ही क्यों न दें। अभी पिछले महीने मैं स्टेशन पर गया था। जनरल मैनजर जा रहा था देखा था मैंने उसे। ऐसे भाग खुले थे मेरे कि दर्शन हुए उनके! अपना अलग बोगी में साहब जा रहे हैं; प्लेटफ़ार्म पर निकले, ठाठ से खड़े हैं, तोंद पर सोने की ज़ंजीरी लटक रही है, गाल लाल-सुर्ख... ख़ून पी-पीकर लाल हो गया, साला। ओह अगर इन हाथों में ताकत हो!.. नहीं, मैं यहां नहीं रहूंगा, चला जाऊंगा कहीं, जिधर भी सिर उठेगा।"

"कहां जाएगा, भाई मेरे! रोटी को लात मारकर कोई रोटी ढूंढ़ता है क्या? यहां पर तुझे घर भी मिला हुआ है, जाड़ों में घर गरमाने को लकड़ी है और थोड़ी-बहुत ज़मीन भी है! औरत तो तेरी मेहनती है..."

"क्या ज़मीन है! तुम आकर देखो तो मेरी ज़मीन। एक ठूंठ तक नहीं उगता। वसंत में मैंने बंदगोभी उगाने की सोची थी, तो फ़ोरमैन आ निकला, चिल्लाने लगा: 'यह क्या करते हो। रपट क्यों नहीं दी? बिना इजाज़त के क्यों बोई? उखाड़ो अभी, इसका नामोनिशान तक न रहे यहां।' पिए हुए था साला। और कोई मौका होता तो कुछ भी न कहता, पर उस दिन भूत सवार था उस पर... 'तीन रूबल जुर्माना!'"

वसीली चुप हो गया, पाइप के दो कश खींचे, फिर धीरे से बोला:

"बस थोड़ी देर की और कसर थी, साले का काम तमाम कर दिया होता।"

"अरे भैया, बड़ा क्रोधी है तू!"

"क्रोधी-वोधी कुछ नहीं, मैं सच बात करता हूं, सब समझता हूं अच्छी तरह। खैर मैं भी उस लाल थूथने को मज़ा चखाके रहूंगा। डिवीजन मैनेजर से शिकायत करूंगा। देख लेना!"

और सचमुच ही उसने शिकायत की।

एक बार डिवीजन मैनेजर रास्ते की जांच-पड़ताल करने आया। उसके तीन दिन बाद पीटर्सबर्ग से कुछ बड़े साहब इंस्पेक्शन करने आनेवाले थे, सो उससे पहले सब कुछ ठीक-ठाक करना था। रोड़ी-वोड़ी डाल दी, सब बराबर कर दिया, स्लीपर सारे देखे, कीले ठोक-ठाक दिए, ढिबरियां कस दीं, खंभों पर रंग कर दिया, क्रासिंगों पर पीली रेत डालने का हुक्म हुआ। पड़ोसिन लाइनमैन ने अपने बूढ़े को भी बाहर निकाल दिया – घास नोचने को। सेम्योन सारा हफ़्ता डटकर काम करता रहा; सब कुछ ठीक-ठाक कर दिया, अपने कफ़्तान की भी मरम्मत कर ली, धो-धा लिया और तांबे के बिल्ले को भी ईंट से रगड़-रगड़कर चमका लिया। वसीली भी काम में जुटा हुआ था। डिवीजन मैनेजर ट्राली पर आया; चार मज़दूर हैंडल घुमाते थे, गियर सर-सर करते, घंटे भर में ट्राली पंद्रह मील पार कर लेती। सेम्योन ने सावधान खड़े होकर सिपाही की तरह रपट दी। सब कुछ ठीक-ठाक निकला।

"कब से है तू यहां?" मैनेजर ने पूछा।

"दूसरी मई से, हजूर।"

"अच्छा। शुक्रिया तेरा। एक सौ चौसठ नम्बर में कौन है?"

फ़ोरमैन भी उसके साथ ट्राली में जा रहा था, बोला:

"वसीली स्पिरीदव।"

"स्पिरीदव, स्पिरीदव... यह वही है न, जिसके बारे में तुमने पिछले साल कुछ कहा था।"

"जी, साहब, वही है।"

"अच्छा, देखते हैं इस वसीली स्पिरीदव को भी। चलो।"

मज़दूर हैंडल घुमाने लगे; ट्राली चल पड़ी।

सेम्योन उन्हें जाते देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था: "ज़रूर कोई तमाशा होगा वहां।"

दो घंटे बाद वह लाइन का चक्कर लगाने निकला। देखता क्या है कि पटरी पर कोई चला आ रहा है, सिर पर सफ़ेद सा कुछ नज़र आ रहा है। सेम्योन ध्यान से देखने लगा – वसीली था। हाथ में छड़ी पकड़े हुए, कंधे पर छोटी सी गठरी, गाल पर रूमाल बंधा हुआ।

"कहां चल दिया, वसीली?" सेम्योन चिल्लाया।

वसीली बिल्कुल पास आ गया; उसका चेहरा एकदम उतरा हुआ था, चूने जैसे सफ़ेद, आंखें फटी-फटी, बोला, तो आवाज़ कांपने लगी।

"शहर जा रहा हूं... मास्को... बड़े दफ़्तर..."

"बड़े दफ़्तर... अच्छा! तो शिकायत करने जा रहा है? रहने दे, भैया, भूल जा यह सब!.."

"नहीं, भैया, नहीं भूलूंगा। भूलने का वक़्त नहीं रहा अब। देख रहे हो, कैसे मुंह पर मारा है, ख़ूनोख़ून कर दिया। जब तक ज़िंदा हूं, ऐसे नहीं छोड़ूंगा। इन ख़ून चूसनेवालों को सबक़ सिखाना चाहिए।"

सेम्योन ने उसका हाथ पकड़ लिया:

"रहने दो, वसीली, मैं ठीक कह रहा हूं: कुछ बननें का तो है नहीं।"

"बने बनाएगा क्या! मुझे ख़ुद ही पता है कि कुछ नहीं होना-होवाना; सच ही कह रहे थे तुम – जो क़िस्मत में लिखा है। मेरा तो कुछ बनेगा नहीं, पर न्याय के लिए मैं ज़रूर लड़ूंगा।"

"तुम यह तो बताओ कि यह सब हुआ कैसे?"

"होना क्या था... सब कुछ देख लिया उसने, ट्राली से उतरा, चौकी में झांककर देखा। मैं जानता था कि सख़्ती से देखेंगे, सब ठीक-ठाक कर रखा था। वह तो चलने ही वाला था, तभी मैं शिकायत लेकर बढ़ा। वह बरस पड़ा: 'हरामज़ादे, यहां तो सरकारी इंस्पेक्शन होनेवाला है और तुझे शिकायत करने की पड़ी है! यहां तो बड़े-बड़े साहब आनेवाले हैं और तुझे अपनी बंदगोभी

की फ़िक्र है !' मुझसे रहा न गया, मुंह से बात निकल गई, कोई ख़ास नहीं, पर उसे बुरी लगी। कसके हाथ दे मारा ... ओफ़, कमबख़्त हमारा धीरज ! यहीं पर उसे देता ... पर मैं बुत बना खड़ा रहा, मानो ऐसे ही होना चाहिए। वे चले गए, तब होश आया, मुंह धोकर चल दिया।"

"चौकी का क्या होगा?"

"बीवी तो है; संभाल लेगी। भाड़ में जाएं ये सब और इनकी रेल!"

वसीली उठा, चलने को हुआ।

"अच्छा तो, सेम्योन भैया! पता नहीं कहीं न्याय मिलेगा कि नहीं।"

"पैदल जाएगा क्या?"

"स्टेशन पर मालगाड़ी में बैठ जाऊंगा; कल मास्को पहुंच जाऊंगा।"

पड़ोसियों ने हाथ मिलाया; वसीली चला गया और कई दिनों तक उसकी कोई ख़बर न मिली। उसकी बीवी उसका सारा काम करती थी, रात-दिन नहीं सोती थी; मर्द की बाट जोहते-जोहते सूख गई। तीसरे दिन इंस्पेक्शन की गाड़ी गुज़री: इंजन, माल डिब्बा और दो फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे। वसीली अभी तक नहीं लौटा था। चौथे दिन सेम्योन ने उसकी बीवी को देखा: चेहरा रो-रोकर फूल गया था, आंखें लाल हो रही थीं।

"लौट आया?" उसने पूछा।

वसीली की औरत ने हाथ झटक दिया, कुछ नहीं कहा और अपनी चौकी की ओर चली गई।

* * *

सेम्योन ने अपने लड़कपन में बेंत की टहनियों से बांसुरी बनानी सीखी थी। टहनी को अंदर से गर्म सीख़ से खोखला कर लेता, फिर उसमें जहां छेद करने होते छेद कर लेता, एक सिरे पर डाट लगा देता और ऐसी बढ़िया बांसुरी बना देता कि जो चाहे बजाओ। ख़ाली समय में वसीली बहुत सी बांसुरियां बना लेता था और अपने एक जान-पहचान के मालगाड़ी के गार्ड के साथ शहर भेज देता था। वहां बाज़ार में वे दो-दो कोपेक की बिक जाती थीं। इंस्पेक्शन के बाद तीसरे दिन शाम को उसने घरवाली को छह बजे की गाड़ी को झंडी

दिखाने को छोड़ा और ख़ुद चाकू लेकर जंगल को चल दिया, टहनियां काटने। वह अपने टुकड़े के आख़िर तक पहुंचा – उस जगह रेल लाइन में तेज़ घुमाव था, वहां से नीचे उतरकर वह जंगल-जंगल चल दिया। कोई डेढ़ फ़र्लांग दूर एक दलदल था, और उसके पास बांसुरियों के लिए बहुत अच्छी झाड़ियां उगती थीं। उसने ढेर सारी टहनियां तोड़कर गट्ठर बांधा और घर को चल दिया। वह जंगल-जंगल जा रहा था; सूरज क्षितिज की ओर झुक रहा था, जंगल में सन्नाटा था, बस चिड़ियों के चहकने और पैरों तले सूखी लकड़ियों के चटखने की आवाज़ आ रही थी। सेम्योन काफ़ी दूर आ गया था, अब रेल लाइन आने ही वाली थी। सहसा उसे लगा कि और कोई आवाज़ भी आ रही है, मानो कहीं लोहे से लोहा टकरा रहा हो। सेम्योन तेज़-तेज़ चलने लगा। उन दिनों उनके हिस्से में पटरी की कोई मरम्मत-वरम्मत तो होनेवाली नहीं थी।

"क्या है यह सब?" मन ही मन वह सोच रहा था। जंगल के बाहर पहुंचा – सामने रेल लाइन का पुश्ता था; ऊपर एक आदमी उकड़ूं बैठा कुछ कर रहा था; सेम्योन चुपके-चुपके उसकी ओर चढ़ने लगा: सोचा कोई ढिबरियां चुराने आया है। पर देखता क्या है कि वह आदमी भी खड़ा हो गया, उसके हाथों में सब्बल था; उसने सब्बल पटरी तले अटकाया और झटके से पटरी एक ओर को खिसका दी। सेम्योन की आंखों आगे अंधेरा छा गया; चिल्लाना चाहता था, पर आवाज़ नहीं निकल रही थी। देखा – ऊपर वसीली था, दौड़ने लगा, पर वसीली सब्बल और चाबी लेकर दूसरी ओर ढलान पर लुढ़क गया।

"वसीली, अरे, भैया रे। लौट आ, रे, लौट आ! दे दे मुझे सब्बल। आ जा, रेल जोड़ दें, किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। लौट आ! क्यों अपने सिर ऐसा पाप लेता है।"

वसीली नहीं मुड़ा, जंगल में चला गया।

सेम्योन उखड़ी पटरी पर खड़ा था, टहनियों का गट्ठर उसके हाथों से गिर गया। गाड़ी आनेवाली थी, वह भी मालगाड़ी नहीं सवारी गाड़ी। उसे रोका भी नहीं जा सकता: झंडी नहीं है। पटरी ठीक की नहीं जा सकती, ख़ाली हाथों कीले तो ठुकेंगे नहीं। दौड़कर चौकी पर जाना चाहिए, जल्दी से। हे भगवान, मदद करो!

सेम्योन अपनी चौकी की ओर दौड़ा, सांस फूल गई, बस अभी गिरा कि गिरा। जंगल पार किया, चौकी मुश्किल से दो-ढाई सौ गज़ दूर थी। तभी फ़ैक्टरी का भोंपू बजा। छह बज गए! छह बजकर दो मिनट पर गाड़ी गुज़रेगी। हे भगवान! निर्दोष जानों को बचाओ! सेम्योन की आंखों के सामने यह नज़ारा घूम गया: इंजन का बायां पहिया उखड़ी पटरी से टकराएगा, इंजन कांप उठेगा, एक ओर को झुकेगा और स्लीपरों के चीथड़े करता चला जाएगा, और आगे तेज़ घुमाव है और ढलान भी, नीचे पूरे पच्चीस गज़ तक, उधर तीसरे दर्जे में लोग ठसाठस भरे हुए हैं, छोटे-छोटे बच्चे ... अभी वे सब बैठे होंगे, बेख़बर! हे भगवान, मैं क्या करूं! नहीं, चौकी तक जाने और लौटने का वक़्त नहीं रहा।

सेम्योन उल्टे पांव वापस दौड़ चला, पहले से भी तेज़। बदहवास सा दौड़ता जा रहा था, उसे ख़ुद भी पता नहीं था क्या करेगा। उखड़ी पटरी पर गट्ठर पड़ा हुआ था। झुककर एक टहनी निकाल ली, ख़ुद को भी पता नहीं किसलिए, और आगे दौड़ चला। उसे लगा, गाड़ी आ रही है। दूर से सीटी सुनाई दी, पटरियां धीरे-धीरे कांपने लगी थीं ... आगे दौड़ने की हिम्मत नहीं रही; उस भयानक जगह से सौ गज़ दूर रुक गया: तभी दिमाग़ में एक विचार कौंधा। उसने टोपी उतारी, उसमें तह करके रखा सफ़ेद सूती रूमाल निकाला; घुटनों तक ऊंचे बूट में से चाकू निकाला, छाती पर सलीब का निशान बनाया: हे भगवान, तेरा आसरा है।

उसने बाएं बाज़ू में कोहनी से ऊपर चाकू घोंप दिया; ख़ून की धार फूटी, गर्म-गर्म ख़ून; उसमें उसने रूमाल भिगोया, उसे खोला, टहनी पर बांधा और लाल झंडी ऊपर उठा ली।

खड़ा-खड़ा वह लाल झंडी हिला रहा था, गाड़ी दिखाई दे रही थी। इंजन ड्राइवर उसे नहीं देख रहा था, पास आ गया, तो सौ गज़ में इतनी भारी गाड़ी रोक न पाएगा!

उधर ख़ून बहता ही जा रहा था; वह घाव को बगल से दबा रहा था, पर ख़ून रुक नहीं रहा था, गहरा घाव हो गया था। सिर चकराने लगा, आंखों आगे तितरियां सी नाचने लगीं, फिर बिल्कुल अंधेरा छा गया; कानों

में जैसे घड़ियाल गूंज रहे हों। उसे न गाड़ी दिख रही थी, न उसकी आवाज़ सुनाई दे रही थीं ; दिमाग में बस एक ही विचार घूम रहा था : "खड़ा नहीं रह सकूंगा, गिर जाऊंगा, झंडी छूट जाएगी, गाड़ी मेरे ऊपर से निकल जाएगी ... हे भगवान, मदद करो, किसी को भेज दो ..."

आंखों में घुप्प अंधेरा छा गया, मन में सन्नाटा और झंडी उसके हाथ से निकल गई। पर ख़ून से रंगी पताका ज़मीन पर नहीं गिरी : एक हाथ ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया और ऊंचा उठा लिया, बढ़ती आ रही गाड़ी के सामने हिलाने लगा। इंजन ड्राइवर ने पताका देख ली, रेगुलेटर बंद किया, पीछे को भाप दी और गाड़ी रुक गई।

* * *

डिब्बों में से लोग कूद-कूदकर बाहर निकले। भीड़ लग गई। सबने देखा : ख़ून से लथपथ आदमी बेहोश पड़ा हुआ है और उसके पास एक दूसरा – डंडी पर ख़ून में भीगा कपड़ा पकड़े।

वसीली ने नज़र घुमाकर सबको देखा और सिर झुका लिया।

"मुझे पकड़ लो, मैंने पटरी उखाड़ी है।"

लेव तोलस्तोय

कोहकाफ़ का बंदी

'युद्ध और शांति' तथा 'आन्ना करेनिना' जैसे विश्वविख्यात उपन्यासों के लेखक लेव तोलस्तोय (१८२८—१९१०) के जीवन के अनेक वर्ष बाल-साहित्य की रचना और बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में बीते। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था: "बच्चों और अध्यापन से मुझे गहरा लगाव है..." तोलस्तोय का जन्म अभिजात कुल में हुआ। वह काउंट थे, उनकी अपनी ज़मींदारी थी। अपनी जागीर यास्नया पल्याना में उन्होंने किसान बच्चों के लिए स्कूल खोला और वह स्वयं ही उसमें पढ़ाते थे। उन्होंने शैक्षिक पत्रिका 'यास्नया पल्याना' का प्रकाशन किया और १८७२ में अपनी प्रसिद्ध 'अक्षरमाला' लिखी, जिसके साथ 'पाठमाला' (रीडर) की चार पुस्तकें भी थीं।

इन पुस्तकों को लिखने के लिए तोलस्तोय ने विशेषत: प्राचीन यूनानी भाषा सीखी, अरबी और हिन्दी पढ़नी सीखी। अपनी 'पाठमाला' में उन्होंने शार्ल पेर्रो, ग्रीम बंधुओं और हांस एंडरसन की कथाओं, 'अलिफ़ लैला' की कथाओं और रूसी लोक कथाओं को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया। तोलस्तोय दूसरे जनगण की आत्मिक सम्पदा से रूसी बच्चों को परिचित कराना चाहते थे। 'पाठमाला' की बहुत सी कहानियां उन्होंने स्वयं लिखीं, जिनमें 'कोहकाफ़ का बंदी' भी है। यह कहानी दिखाती है कि संसार के सभी लोगों में नेक भावनाएं होती हैं, तथा यह कि विभिन्न जातियों के बीच वैमनस्य, शत्रुता और युद्ध कितने निरर्थक और अमानवीय हैं।

तोलस्तोय के जीवन काल में ही उनकी 'अक्षरमाला' को रूस के जन विद्यालयों के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया। आज तक सोवियत संघ में सभी बच्चे 'कोहकाफ़ का बंदी' और तोलस्तोय की दूसरी कहानियां अवश्य पढ़ते हैं। जन शिक्षा की एक विलक्षण कर्मी, लेनिन की बहन आन्ना उल्यानवा ने लिखा था: "इन कहानियों को उनकी अन्य रचनाओं की ही भांति हमारे साहित्य की स्वर्ण निधि में स्थान मिलना चाहिए। किसी भी सच्ची कलात्मक रचना की भांति ये कहानियां पढ़कर सुख की अनुभूति होती है और इनका अकृत्रिम, सादगी भरा आकर्षण छोटी उम्र से ही सचेत पठन-पाठन की इच्छा जगाता है।"

(१)

एक था साहब। उसका नाम था झीलिन। वह फ़ौज में अफ़सर था और काकेशिया में तैनात था।

एक दिन उसे घर से चिट्ठी मिली। बूढ़ी मां ने लिखा था : "बेटा, मैं तो अब बिल्कुल बूढ़ी हो चली। मरने से पहले बस एक बार अपने आंख के तारे को देखना चाहती हूं। आ जाओ बेटा, अपनी मां से विदा ले लो। मुझे दफ़नाके फिर से फ़ौज में नौकरी करने चले जाना। मैंने बहू भी देख रखी है : समझदार है, सुंदर है और अपनी जागीर भी है उसकी। तुम्हें पसंद आ जाए, तो शादी-ब्याह भी हो जाए, फिर तो फ़ौज में लौटने की भी ज़रूरत न रहे।"

झीलिन सोच में पड़ गया। मां सचमुच ही बहुत बूढ़ी हो गई थी, ज़िंदगी का कोई भरोसा नहीं, जाने फिर मिलना हो न हो। क्यों न चला जाए, और अगर लडकी अच्छी है, तो शादी भी की जा सकती है।

तब वह कर्नल के पास गया, उनसे छुट्टी ली, साथी अफ़सरों से विदाई

ली, अपने सिपाहियों को चार बाल्टियां वोद्का की दीं और चलने को तैयार हो गया।

काकेशिया में तब लड़ाई चल रही थी। रात हो या दिन रास्ते पर चलना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। कोई रूसी पैदल या घोड़े पर ही क़िले से थोड़ी दूर निकल जाता, तो तातार उसे मार डालते या पकड़कर पहाड़ों में ले जाते। सो यह क़ायदा था कि हफ़्ते में दो बार एक क़िले से दूसरे क़िले में गारद के साथ काफ़िला जाता था। आगे-पीछे सिपाही चलते थे और बीच में लोग।

गर्मियों के दिन थे। सुबह-तड़के क़िले के बाहर काफ़िला जमा हो गया, गारद के सिपाही आए और सब चल दिए। झीलिन घोड़े पर जा रहा था और उसका सामान गाड़ी पर लदा हुआ काफ़िले के साथ आ रहा था।

अठारह मील का रास्ता था। काफ़िला धीरे-धीरे बढ़ रहा था। कभी सिपाही रुक जाते, कभी काफ़िले में किसी की गाड़ी का पहिया उतर जाता या घोड़ा अड़ जाता और सबको रुककर इंतज़ार करना पड़ता।

दोपहर हो चुकी थी, पर काफ़िला अभी आधा रास्ता ही तय कर पाया था। चिलचिलाती धूप थी, धूल उड़ रही थी। कहीं शरण लेने की जगह नहीं, चारों ओर स्तेपी थी, न कोई पेड़, न झाड़ी।

झीलिन थोड़ा आगे बढ़ गया और रुककर इंतज़ार करने लगा कि कब काफ़िला आए। तभी उसे बिगुल सुनाई दिया – काफ़िला फिर रुक गया था। झीलिन सोचने लगा : "क्यों न मैं अकेला ही चल दूं, गारद के बिना ही? घोड़ा मेरा तेज़ है, अगर तातारों से सामना हो भी गया, तो भाग निकलूंगा। जाऊं या न जाऊं?"

ऐसे ही खड़ा-खड़ा वह सोच रहा था। तभी घोड़े पर सवार एक दूसरा अफ़सर कस्तीलिन वहां आया। उसके पास बंदूक थी। वह बोला :

"चलो, झीलिन अकेले ही चलते हैं। मुझ से अब नहीं रहा जाता, भूख लगी है, ऊपर से यह गर्मी। मैं तो पसीने से तर हो गया।"

कस्तीलिन खासा भारी-भरकम था, गर्मी के मारे उसका मुंह लाल हो रहा था और पसीना चू रहा था। झीलिन कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला :

"बंदूक में गोलियां तो हैं?"

"हैं।"

"तो चलो, चलते हैं। पर एक बात है: रास्ते में अलग-अलग नहीं होना, साथ-साथ चलना होगा।"

बस वे दोनों आगे बढ़ चले। बातें करते, इधर-उधर नज़र डालते हुए वे स्तेपी में चले जा रहे थे। चारों ओर दूर-दूर तक दिखाई देता था। आखिर उन्होंने स्तेपी पार कर ली, आगे रास्ता दो पहाड़ों के बीच से जाता था। भीलिन बोला:

"पहाड़ी पर चढ़के देख लेना चाहिए, नहीं तो अचानक कहीं पहाड़ी के पीछे से निकल आएंगे, पता भी नहीं चलेगा।"

पर कस्तीलिन ने कहा:

"देखना क्या है? चले चलो।"

भीलिन ने उसका कहना नहीं माना और घोड़े को बाईं ओर पहाड़ी पर चढ़ा दिया। घोड़ा शिकारी था (भीलिन ने सौ रूबल में बछेड़ा ख़रीदा था और खुद ही उसे निकाला था); हवा से बातें करते हुए वह पहाड़ी पर चढ़ गया। ऊपर पहुंचते ही भीलिन ने क्या देखा कि उसके बिल्कुल सामने चारेक बीघा दूर घुड़सवार तातार खड़े हैं, कोई तीस लोग होंगे। उन्हें देखते ही वह पीछे मुड़ा; तातारों ने भी उसे देख लिया, उसकी तरफ़ घोड़े दौड़ा दिए और बंदूकें निकालने लगे। भीलिन घोड़े को ढलान पर सरपट दौड़ाने लगा। उसने कस्तीलिन से चिल्लाकर कहा:

"बंदूक निकालो!" मन ही मन वह अपने घोड़े से मिन्नत कर रहा था: "ले चल, भैया, कहीं ठोकर न लेना; गिर गया, तो बस काम तमाम समझो। एक बार बंदूक तक पहुंच जाऊं, फिर मैं इनके हाथ नहीं आऊंगा।"

कस्तीलिन इंतज़ार करने के बजाय तातारों को देखते ही जान छोड़कर किले की ओर दौड़ा। वह कभी इस बगल से कभी उस बगल से घोड़े पर कोड़े बरसाता जा रहा था। धूल के बादल में बस घोड़े की दुम हिलती नज़र आ रही थी।

भीलिन ने देखा कि मामला गड़बड़ है। बंदूक चली गई, एक तलवार से वह क्या कर लेगा। उसने घोड़े को वापस गारद की ओर घुमाया – सोचता था निकल जाएगा। पर देखा क्या कि उधर से उसका रास्ता काटने को छह

घुड़सवार दौड़े चले आ रहे हैं। उसका घोड़ा तेज़ था, पर उनके घोड़े और भी ज़्यादा तेज़ थे और ऊपर से वे उसका रास्ता भी काट रहे थे। झीलिन ने घोड़े को रोकना चाहा, दूसरी ओर मोड़ना चाहा, पर घोड़ा इतनी तेज़ी से दौड़ा जा रहा था कि रोका नहीं जा सकता था, वह सीधा तातारों की ओर बढ़ता जा रहा था। झीलिन ने देखा कि सब्ज़े घोड़े पर सवार लाल दाढ़ी वाला तातार उसके पास आ रहा है। वह खीसें निपोड़े हुए चीख रहा था, बंदूक ताने हुए था।

झीलिन मन ही मन सोच रहा था: "जानता हूं मैं तुम कमबख़्तों को: अगर ज़िंदा पकड़ लिया, तो गड्ढे में डाल दोगे, कोड़े मारोगे। नहीं, जीते जी मैं तुम्हारे हाथ नहीं आनेवाला ..."

झीलिन था तो नाटा सा ही, पर बड़ा साहसी। उसने तलवार निकाली और घोड़े को सीधे लाल तातार की ओर बढ़ाया, सोच रहा था: "या तो घोड़े से कुचल दूंगा, या तलवार से सिर उड़ा दूंगा"।

एक घोड़े का फ़ासला रह गया, तभी पीछे से किसी ने गोली चला दी, गोली घोड़े को लगी। घोड़ा धड़ाम से ज़मीन पर गिरा, झीलिन की टांग उसके तले दब गई।

झीलिन उठना चाहता था, पर दो तातार उसके ऊपर चढ़ गये थे, उसकी बांहें पीछे मरोड़ रहे थे। झीलिन ने झटके से उन्हें उतार फेंका, पर तभी और तीन तातार घोड़ों से उतर आए, बंदूकों के कुंदे उसके सिर पर मारने लगे। झीलिन की आंखों आगे अंधेरा छा गया, टांगें लड़खड़ा गयीं। तातारों ने उसे पकड़ लिया। ज़ीनों पर लगे फ़ालतू तंग उतारे, उसकी बांहें पीठ पीछे मरोड़कर तातारी गांठ बांध दी और घसीटते हुए काठी की ओर ले चले। किसी ने उसकी टोपी उतार ली, घुटनों तक ऊंचे बूट खींच लिए, सारी जेबें टटोल-टटोलकर पैसे, घड़ी जो कुछ मिला निकाल लिया, कपड़े फाड़ डाले। झीलिन ने अपने घोड़े पर नज़र डाली: वह बेचारा जिस बल गिरा था, उसी बल पड़ा हुआ था, बस हवा में टांगें फेंक रहा था, लेकिन टाप ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। सिर में छेद था और छेद में से ख़ून की धार फूट रही थी, चारों ओर हाथ भर मिट्टी ख़ून से रंग गई थी।

एक तातार घोड़े के पास जाकर काठी उतारने लगा–घोड़ा टांगें हवा

में फेंके जा रहा था। तातार ने छुरा निकाला और उसकी गर्दन काट दी। गर्दन से सूं की आवाज़ निकली, घोड़ा छटपटाया और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

तातारों ने काठी उतार ली, साज़ उतार लिया। लाल दाढ़ी वाला तातार घोड़े पर सवार हो गया, दूसरों ने झीलिन को उठाकर उसकी काठी पर बिठा दिया, वह गिरे न, इसलिए उसकी कमर पर पेटी खींचकर तातार से बांध दी। और फिर वे उसे पहाड़ों में ले चले।

अब झीलिन तातार के पीछे बैठा धचके खा रहा था। उसका चेहरा तातार की पीठ से टकरा-टकरा जाता था। उसकी आंखों के सामने बस तातार की चौड़ी पीठ थी, गर्दन की फूली हुई नसें या टोपी के नीचे से मुंडी हुई टांड ही उसे नज़र आ रही थी। झीलिन का सिर फूटा हुआ था, आंखों के ऊपर ख़ून जम गया था। न तो वह घोड़े पर ठीक से होकर बैठ सकता था, न ख़ून पोंछ सकता था। हाथ इतने कसकर बांधे गए थे कि हंसली में दर्द हो रहा था।

बड़ी देर तक वे चलते रहे, एक पहाड़ी से दूसरी पर चढ़ते-उतरते। एक नदी पांझ पर हलकर पार की। सड़क पर पहुंचे और तंग घाटी में होकर जाने लगे।

झीलिन रास्ता याद करना चाहता था कि उसे किधर ले जा रहे हैं, पर आंखें ख़ून में सनी हुई थीं और सिर भी नहीं घुमा सकता था।

झुटपुटा होने लगा। उन्होंने एक और नदी पार की, फिर पथरीली पहाड़ी पर चढ़ने लगे। धुएं की गंध आई, कुत्ते भौंकने लगे। वे लोग गांव में पहुंच गए। तातार घोड़ों से उतर गए, उनके बच्चे जमा हो गए, उन्होंने झीलिन को घेर लिया। ख़ुशी से चीखते-चिल्लाते वे झीलिन को कंकड़ मारने लगे।

तातार ने बच्चों को भगा दिया, झीलिन को घोड़े पर से उतारा और नौकर को आवाज़ दी। एक नगाई* आया – गालों की हड्डियां उभरी हुईं, कुर्ता सा पहने। कुर्ता फटा हुआ था, सारी छाती उघड़ी हुई थी। तातार ने उसे

---

* काकेशिया (कोहकाफ़) में बसनेवाली एक जाति। इन लोगों की भाषा तातारों से मिलती-जुलती है। – सं०

कुछ कहा। नौकर बेड़ी लाया : बलूत की लकड़ी के दो कुन्दे, उन पर लोहे के कड़े लगे हुए, एक कड़े में कुंडा और ताला लगा हुआ।

झीलिन के हाथ खोलकर पैरों में बेड़ी चढ़ा दी और कोठरी में ले गया ; उसे कोठरी में धकेलकर बाहर से दरवाज़ा बंद कर दिया। झीलिन गोबर पर गिरा। अंधेरे में टटोलते हुए उसने नरम जगह ढूंढ़ी और लेट गया।

(२)

उस रात झीलिन सो नहीं सका। रातें छोटी थीं। उसने देखा दरार में उजाला हो रहा है। उठकर दरार के पास गया, कुरेदकर दरार बड़ी की और देखने लगा।

दरार में से उसे सड़क दिखाई दे रही थी, जो पहाड़ी के नीचे चली गई थी। दाईं ओर तातारों का घर था, उसके पास दो पेड़ उग रहे थे। दहलीज़ पर काला कुत्ता लेटा हुआ था, बकरी मेमनों के साथ टहल रही थी, वे सब दुम हिला रहे थे। झीलिन ने देखा ढलान पर से जवान तातार औरत चढ़ी आ रही थी, वह रंग-बिरंगी, खुली कमीज़ और सलवार पहने थी, पांवों में घुटनों तक ऊंचे बूट थे, सिर कफ़्तान से ढका हुआ था और सिर पर टीन की झज्झर थी, पानी से भरी हुई। चलते हुए उसकी कमर लचक रही थी। सिर मुंडे लड़के की उंगली पकड़े उसे साथ लिए जा रही थी, लड़के ने बस एक कुर्ता ही पहन रखा था। पानी उठाए तातार औरत घर में चली गई। घर में से तातार निकला – वही कल वाला, लाल दाढ़ी वाला। उसने रेशमी अंगरखा पहन रखा था, कमरबंद पर चांदी के काम वाला खंजर लटक रहा था, बिना जुराबों के ही जुतियां पहन रखी थीं। सिर पर ऊंची टोपी थी, काली भेड़ की खाल की, पीछे को मोड़ी हुई। बाहर निकलकर उसने अंगड़ाई ली, अपनी लाल दाढ़ी सहलाई। थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर नौकर से कुछ कहा और कहीं चल दिया।

दो लड़के घोड़ों पर सवार नदी की ओर गए। फिर कुछ और सिर मुंडे लड़के घरों से बाहर निकले, सब निरा कुर्ता पहने, नंगे पैर थे। वे एक झुंड में खड़े हो गए, फिर कोठरी के पास आए, दरार में तिनके डालने लगे। झीलिन

ने ज़ोर से आवाज़ की, बच्चे चीखे और भाग उठे, बस उनके नंगे घुटने ही चमकते रहे।

झीलिन को प्यास लगी थी, गला सूख रहा था। वह मन ही मन कह रहा था: कोई ख़बर लेने ही आ जाता। तभी उसे कोठरी खुलने की आवाज़ सुनाई दी। लाल तातार आया और उसके साथ एक काला तातार भी, उससे थोड़े छोटे क़द का आंखें काली-काली, लाल गाल, छोटी सी, छटी हुई दाढ़ी। चेहरे से ख़ुशमिज़ाज लगता था, हंसता जा रहा था। इसने और भी अच्छे कपड़े पहने रखे थे: नीला अंगरखा, जिस पर डोरियां लगी हुई थीं, कमर पर चांदी के काम वाला खंजर लटक रहा था। पैरों में पतले चमड़े की लाल जूतियां पहने था – ज़री के काम वाली और उनके ऊपर मोटे जूते। सिर पर सफ़ेद भेड़ की ऊंची टोपी।

लाल तातार अंदर आया, कुछ बोला, मानो नाराज़ हो रहा हो और भरेठ का सहारा लेकर खड़ा हो गया। खंजर हिलाता हुआ और भौंहें सिकोड़कर ख़ूंख़्वार भेड़िये की तरह झीलिन को देखने लगा। काला तातार बड़ा तेज़ था, लपकता हुआ चलता था। झीलिन के पास आ गया, उकड़ूं होकर बैठ गया, खीसें निपोड़ लीं, झीलिन का कंधा थपथपाने लगा और जल्दी-जल्दी अपनी भाषा में कुछ बोलने लगा, साथ में आंख मारता जाए, जीभ से च-च करे और बीच-बीच में बोलता जाए: "अच्चा उरूस*! अच्चा उरूस!"

झीलिन कुछ नहीं समझा, बोला: "पानी दो, पानी।"

काला हंसता जा रहा था। "अच्चा उरूस," अपनी बोली में बोलता जा रहा था।

झीलिन ने होंठों और हाथों से दिखाया कि उसे प्यास लगी है।

काला तातार समझ गया, हंस पड़ा, दरवाज़े की ओर देखा और किसी को पुकारा: "दीना!"

एक लड़की भागी आई, दुबली-पतली, कोई तेरह साल की, शक्ल-सूरत

---

* तातार रूसियों को 'उरूस' कहते थे और उनके लिए हर रूसी का नाम 'इवान' था। – सं०

बिल्कुल काले तातार जैसी। उसकी बेटी ही होगी। उसकी आंखें भी काली, चमकदार थीं और चेहरा सुंदर। लंबी, नीली कमीज़ पहने थी, चौड़ी बाहों वाली और कमरबंद के बिना। कमीज़ के दामन, छाती और बाजुओं पर लाल गोट लगी हुई थी। सलवार पहने थी। पैरों में पतली जूतियां और उनके ऊपर ऊंची एड़ी की दूसरी मोटी जूतियां। गले में पचास कोपेक के रूसी सिक्कों की हंबेल। सिर नंगा था, काली चोटी और चोटी में रिबन गुंथा हुआ, रिबन पर पतरियां और चांदी का रूबल लगा हुआ था।

बाप ने उसे कुछ कहा। वह दौड़ी गई और फिर लौट आई, जस्ते की सुराही लाई। झीलिन को पानी दिया और खुद उसके सामने उकड़ूं बैठ गई ऐसे गठरी बन गई कि कंधे घुटनों से नीचे हो गए। आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगी कि कैसे झीलिन पानी पी रहा है, मानो वह कोई जानवर हो।

झीलिन ने उसे सुराही लौटाई। वह जंगली बकरी की तरह उछलकर पीछे हटी। उसका बाप भी हंस पड़ा। फिर उसे कहीं भेज दिया। उसने सुराही उठाई और दौड़ी गई। गोल पटरी पर फीकी रोटी लाई, फिर बैठ गई, गठरी बन गई, टकटकी लगाकर झीलिन को देखती जाए।

तातार चले गए, दरवाज़ा बंद कर गए।

थोड़ी देर बाद नगाई आया, बोला:

"ऐ, मालिक, ओ-ओ!"

उसे भी रूसी नहीं आती थी। पर झीलिन समझ गया कि कहीं जाने को कह रहा है।

झीलिन बेड़ी पहने चल दिया, लंगड़ाता जाए, पैर नहीं रखा जा रहा था – एक ओर को मुड़-मुड़ जाता था। झीलिन नगाई के पीछे-पीछे बाहर निकला। देखा: दसेक घरों का गांव है और मीनार वाली मस्जिद। एक घर के पास तीन घोड़े खड़े थे – ज़ीन कसे हुए। लड़कों ने लगामें पकड़ रखी थीं। उस घर से काला तातार निकला, हाथ हिलाने लगा कि झीलिन उधर आए। हंसता जा रहा था और अपनी बोली में कुछ बोल रहा था, फिर दरवाज़े में घुस गया। झीलिन घर के अंदर गया। बैठक अच्छी थी, दीवारों पर चिकनी मिट्टी से पुताई की हुई थी। सामने की दीवार के आले में रंग-बिरंगे तकियों का ढेर

लगा हुआ था, अगल-बगल क़ीमती कालीन टंगे हुए थे; कालीनों पर बंदूकें, पिस्तौलें, सब पर चांदी का काम। एक दीवार में फ़र्श के पास ही अंगीठी बनी हुई थी। फ़र्श भी मिट्टी का था, बिल्कुल साफ़, सामने के सारे कोने में नमदा बिछा हुआ था; नमदे पर कालीन और उन पर परों के तकिये। कालीनों पर पतली जूतियां पहने तातार बैठे थे: काला, लाल और तीन मेहमान। सब की पीठ पीछे मसनद तकिये थे। उनके सामने गोल पटरे पर बाजरे की टिकियां रखी थीं और एक प्याले में पिघला हुआ मक्खन। सुराही में तातारों की बियर रखी थी – बूज़ा। वे हाथों से खा रहे थे, उंगलियां मक्खन में सनी हुई थीं।

काला तातार खड़ा हो गया, झीलिन को एक ओर बिठाने को कहा, कालीन पर नहीं, नंगे फ़र्श पर। फिर से वह कालीन पर जा बैठा, मेहमानों को टिकियां और बूज़ा देने लगा। नौकर ने झीलिन को उसकी जगह पर बिठा दिया, खुद ऊपर के जूते उतारे, उन्हें दरवाज़े के पास रखा, जहां दूसरों के जूते भी रखे हुए थे और मालिकों के पास नमदे पर बैठ गया; उन्हें खाते देखता जाए और लार टपकाता जाए।

तातारों ने टिकियां खा लीं। एक औरत आई, लड़की जैसी ही सलवार-कमीज़ पहने; सिर पर कसाबा बांधे थी। वह मक्खन और टिकियां ले गई, लकड़ी की चिलमची और पतली टोंटी वाली सुराही लाई। तातार हाथ धोने लगे, फिर घुटनों के बल बैठ गए, हाथ जोड़े, चारों ओर फूंक मारी और दुआ पढ़ी। आपस में बातें करने लगे। फिर मेहमानों में से एक तातार झीलिन की ओर मुड़ा और रूसी में बोलने लगा:

"तुझे काजी मुहम्मद ने पकड़ा है," लाल तातार की ओर इशारा किया, "और अब्दुल मुराद को दे दिया," काले तातार की ओर दिखाया, "अब अब्दुल मुराद तेरा मालिक है।"

झीलिन चुप बैठा रहा। अब्दुल मुराद बोलने लगा, बार-बार झीलिन की ओर दिखाता जाए और हंसता जाए, बोला: "उरूस सिपाही, अच्चा उरूस"। दुभाषिया बोला: "वह कहता है तू घर चिट्ठी लिख, ताकि तेरे बदले पैसे भेजें। जब पैसे आ जाएंगे, तो वह तुझे छोड़ देगा।"

झीलिन कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला:

"कितने पैसे चाहता है?"

तातार बातें करने लगे; दुभाषिया बोला :

"तीन हज़ार सिक्के।"

"नहीं, इतने मैं नहीं दे सकता," झीलिन ने जवाब दिया।

अब्दुल उछलकर खड़ा हो गया, हाथ हिलाने लगा और झीलिन से कुछ कहने लगा – सोच रहा था कि वह समझ जाएगा। दुभाषिये ने बताया : "कितना देगा तू?" झीलिन सोचता रहा, फिर बोला : "पांच सौ रूबल"। सब तातार एकसाथ जल्दी-जल्दी बोलने लगे। अब्दुल लाल तातार पर चिल्लाने लगा, ऐसे ज़ोर-ज़ोर से गिटपिट करने लगा कि मुंह से थूक निकलने लगी। लाल तातार बस आंखें सिकोड़ता जाए और जीभ से च-च करता जाए।

वे चुप हो गए तो दुभाषिये ने कहा :

"मालिक के लिए ५०० रूबल थोड़े हैं। उसने खुद तेरे बदले २०० दिए हैं। काज़ी मुहम्मद उसका कर्ज़दार था। उसने तुझे कर्ज़े के बदले लिया है। तीन हज़ार रूबल से कम नहीं हो सकता। नहीं लिखेगा, तो तुझे गड्ढे में बिठा देंगे, कोड़ों से सज़ा मिलेगी।"

झीलिन ने मन ही मन सोचा : "इनके आगे झुकने से तो और बुरा ही होगा।"

वह उठ खड़ा हुआ और कहने लगा :

"तू उससे कह दे कि अगर वह मुझे डराना चाहता है, तो एक कोपेक भी नहीं दूंगा और घर लिखूंगा भी नहीं, मैं तुम लोगों से न कभी डरा हूं, न डरूंगा।"

दुभाषिये ने उसकी बात उन्हें बता दी, फिर सब एकसाथ बोलने लगे। बड़ी देर तक गिटपिट करते रहे, फिर काला तातार उठा, झीलिन के पास आया, कहने लगा :

"उरूस जिगीत, जिगीत उरूस!"

जिगीत का उनकी बोली में मतलब है : बड़ा अच्छा है। तातार खुद हंसता जा रहा था, उसने दुभाषिये से कुछ कहा और वह बोला :

"चल, एक हज़ार दे दे।"

झीलिन अपनी बात पर अड़ गया : "५०० रूबल से ज़्यादा नहीं दूंगा। अगर मार डालोगे, तो कुछ भी नहीं पाओगे।"

तातारों ने आपस में बात की, नौकर को कहीं भेजा और ख़ुद कभी झीलिन और कभी दरवाज़े की ओर ताकने लगे। नौकर आया, उसके पीछे कोई मोटा सा आदमी चला आ रहा था – नंगे पैर, फटे हाल; उसके पांव में भी बेड़ी थी।

झीलिन देखकर दंग रह गया। कस्तीलिन को पहचान गया। उसे भी पकड़ लिया था। दोनों को उन्होंने पास-पास बिठा दिया। वे दोनों एक दूसरे को आपबीती बताने लगे, तातार चुपचाप उन्हें देखते रहे। झीलिन ने उसके साथ जो कुछ हुआ था बताया। कस्तीलिन ने बताया कि उसका घोड़ा अड़ गया, बंदूक भी चली नहीं, और बस इसी अब्दुल ने उसे जा पकड़ा था।

अब्दुल उचककर खड़ा हुआ, कस्तीलिन की ओर इशारा कर-करके कुछ कहने लगा। दुभाषिये ने बताया कि अब वे एक ही मालिक के हैं, जो पहले पैसे देगा, वही पहले छूट जाएगा। झीलिन से कहने लगा :

"देख, तू गुस्सा करता है, और तेरा साथी ठंडे मिज़ाज का है; उसने घर लिख दिया है, पांच हज़ार सिक्के भेजेंगे। अब उसे खाना भी अच्छा मिलेगा और तंग भी नहीं करेंगे।"

झीलिन ने जवाब दिया :

"साथी जो चाहे करे : हो सकता है वह अमीर हो, पर मैं अमीर नहीं। जैसे मैंने कह दिया, वही होगा। जी में आए तो मार डालो, तुम्हारे हाथ कुछ लगने का नहीं। पर मैं ५०० से ज़्यादा नहीं लिखूंगा।"

सब चुप रहे। फिर अब्दुल झटके से उठ खड़ा हुआ, संदूकची ली, उसमें से कलम निकाली, कागज़ का टुकड़ा और स्याही, झीलिन को सब दिया और उसके कंधे पर हाथ मारा, हुक्म दिया : "लिख"। राज़ी हो गया पांच सौ पर।

"ठहर जा," झीलिन ने दुभाषिये से कहा, "तू इससे कह दे कि हमें खाना अच्छा दे और ढंग के जूते-कपड़े भी, कि हमें इकट्ठा रखे – ऐसे हम अच्छे रहेंगे, और हमारी बेड़ियां भी उतार दे", कहते हुए वह मालिक की ओर देखकर हंसता जा रहा था। मालिक भी हंस रहा था। उसने सारी बात सुनी और बोला :

"कपड़े बहुत बढ़िया दूंगा : चोगा भी और ऊंचे बूट भी, ऐसे कि पहनकर शादी कर सको। अगर इकट्ठा रहना चाहते हैं तो रहें कोठरी में। पर बेड़ी नहीं उतारी जा सकती – भाग जाएंगे। रात को सिर्फ़ उतार दिया करेंगे।" उठा और झीलिन का कंधा थपथपाया। "तेरा अच्चा, मेरा अच्चा!"

झीलिन ने चिट्ठी लिख दी, पर पता ठीक नहीं लिखा। मन ही मन सोचा : "भाग जाऊंगा।"

झीलिन और कस्तीलिन को कोठरी में ले जाया गया। उनके लिए करबी ले आए, दो पुराने चोगे और घुटनों तक ऊंचे बूट, सिपाहियों के। मारे गए सिपाहियों के उतारे हुए होंगे। रात को उनकी बेड़ियां उतारकर उन्हें कोठरी में बंद कर दिया।

(३)

झीलिन और उसका साथी महीने भर ऐसे ही रहे। मालिक जब देखता, हंसता : "तू इवान अच्चा, हम अब्दुल अच्चा!" खाना जैसा-तैसा ही देता था – सिर्फ़ बाजरे की फीकी रोटियां और वे भी कभी कच्ची, कभी पकी हुई।

कस्तीलिन ने एक बार और घर चिट्ठी लिखी, बस इसी इंतज़ार में रहता था कि कब पैसे आएं। सारा-सारा दिन कोठरी में बैठा दिन गिनता रहता था कि कब चिट्ठी आएगी या सोता रहता था। झीलिन जानता था कि उसकी चिट्ठी घर तक नहीं पहुंचेगी और दूसरी चिट्ठी उसने लिखी नहीं।

वह सोचता था : "मां के पास इतने पैसे कहां से आएंगे? वैसे ही मैं जो भेजता था, उसी से उसकी गुज़र होती थी। ५०० रूबल जमा करने के लिए तो उसे कंगाल होना पड़ेगा ; खुद ही किसी तरह निकल जाऊंगा।"

खुद वह हर वक़्त इसी ताक में रहता था कि कैसे भागा जा सकता है।

गांव में सीटी बजाता घूमता रहता, या बैठा-बैठा कुछ बनाता रहता : कभी चिकनी मिट्टी से गुड़ियां बना देता, कभी बेल की टहनियों से कोई चीज़। झीलिन ऐसे काम करने में होशियार था।

एक दिन उसने गुड़िया बनाई, छोटी सी नाक, बाहें और टांगें भी, तातारों जैसी ही कमीज़ और छत पर उसे सुखाने को रख दिया। तातार लड़कियां पानी लेने चलीं। मालिक की बेटी दीना ने गुड़िया देख ली, दूसरी लड़कियों को बुलाया। सबने झंझरें उतार कर रख दीं, गुड़िया देखती जाएं और हंसती जाएं। झीलिन ने गुड़िया उतारकर उनकी ओर बढ़ाई। वे हंसती जाएं, पर लेने की हिम्मत न करें। गुड़िया वहीं रखकर वह कोठरी में चला गया, चुपके-चुपके देखने लगा, अब क्या होगा ?

दीना दौड़ी-दौड़ी आई, इधर-उधर देखा, गुड़िया उठाई और भाग गई।

अगले दिन सुबह उसने देखा दीना गुड़िया उठाए दहलीज़ पर आई। गुड़िया को उसने लाल चिथड़ों से सजा लिया था और अब बच्चे की तरह गोद में झुला रही थी, अपनी बोली में लोरी सुना रही थी। एक बुढ़िया बाहर निकली, उसे डांटने लगी, गुड़िया छीनकर तोड़ डाली और दीना को कुछ काम करने भेज दिया।

झीलिन ने एक और गुड़िया बनाई, पहली से भी अच्छी और दीना को दे दी। एक दिन दीना सुराही लेकर आई, उसके पास रख दी, बैठकर उसकी ओर देखने लगी, सुराही की ओर इशारा करके हंसती जाए।

"इतनी खुश क्यों हो रही है ?" झीलिन ने सोचा। सुराही उठाई और पीने लगा। उसने सोचा था पानी होगा, पर उसमें दूध था। झीलिन ने दूध पी लिया और बोला : "आहा ! बहुत अच्छा !" कितनी खुश हुई दीना !

"अच्चा इवान, अच्चा ! " उछलकर तालियां बजाने लगी। सुराही छीनी और भाग गई।

तब से वह रोज़ाना उसके लिए चुपके-चुपके दूध लाने लगी। तातार बकरी के दूध का पनीर बनाकर उसे मोटी रोटियों की शक्ल में छत पर सुखाते हैं। कभी-कभी दीना ऐसी रोटी भी चुपके से ले आती थी। एक बार मालिक के घर भेड़ कटी, दीना बाज़ू में छिपाकर मांस का टुकड़ा ले आई। बस फेंक देती और भाग जाती।

एक दिन खूब बादल गरजे, घंटे भर तक मूसलाधार बारिश होती रही। सारी नदियां उफनने लगीं। जहां पांझ थी, वहां तीन-तीन फुट पानी हो गया,

पत्थर बहते जाएं। हर जगह पानी की धारें बह रही थीं, पहाड़ों में ख़ूब शोर हो रहा था। जब बारिश रुकी, तो गांव में जगह-जगह पानी बह रहा था। झीलिन ने मालिक से चाकू मांग लिया, लकड़ी छील-काटकर धुरी, गोल पटरियां और चक्के बनाए, चक्कों पर पर लगा दिए और पहिए के दोनों ओर गुड़ियां बना दीं।

लड़कियां चीथड़े ले आईं; उसने गुड़ियों को कपड़े पहना दिए – एक आदमी बन गया, एक औरत; उन्हें ठीक तरह जोड़ा और पहिया पानी की धार पर रख दिया। पहिया घूमे और गुड़ियां उछलें।

सारा गांव जमा हो गया: लड़के, लड़कियां, औरतें और तातार भी, जीभ से चटखारे भरते जाएं:

"वाह, उरूस, वाह, इवान!"

अब्दुल के पास रूसी घड़ी थी, ख़राब हो गई थी। उसने झीलिन को बुलाया, घड़ी दिखाई और च-च करने लगा। झीलिन बोला:

"लाओ, ठीक कर दूं।"

घड़ी लेकर उसे चाकू से खोल डाला, एक-एक पुर्ज़ा अलग किया; फिर जोड़ दिया और दे दी। घड़ी चलने लगी। मालिक ख़ुश हो गया, अपना पुराना, फटा हुआ अंगरखा लाकर उसे दे दिया। क्या करता, ले लिया और कुछ नहीं तो रात को ओढ़ने के काम आएगा।

तब से झीलिन की मशहूरी हो गई कि वह अच्छा कारीगर है। दूर के गांवों से भी लोग आने लगे, कोई बंदूक या पिस्तौल का घोड़ा ठीक कराने, कोई घड़ी ठीक कराने। मालिक ने उसे औज़ार ला दिए: चिमटी, बरमा, रेती।

एक बार एक तातार बीमार पड़ गया, झीलिन को बुलाया गया: "चल, इलाज कर!" झीलिन को कुछ पता नहीं था कैसे इलाज-विलाज किया जाए। गया, तातार को देखा और मन ही मन सोचा: "कौन जाने अपने आप ही ठीक हो जाए।" कोठरी में चला गया, थोड़ा पानी लिया और उसमें रेत मिला दी। तातारों के सामने पानी पर मंत्र पढ़ दिया और बीमार को पिला दिया। उसकी ख़ुशक़िस्मती से तातार ठीक हो गया।

झीलिन उनकी बोली भी थोड़ी-थोड़ी समझने लगा। जो तातार उसके कुछ आदी हो गए थे, उन्हें जब ज़रूरत पड़ती, पुकारते: "इवान, इवान!" कुछ ऐसे भी थे जो तिरछी नज़रों से ऐसे देखते थे जैसे वह कोई जानवर हो।

लाल तातार को झीलिन फूटी आंखों न सुहाता था। उसे देखते ही वह मुंह मोड़ लेता या गाली देता। एक और बूढ़ा था उनके यहां। वह गांव में नहीं रहता था पहाड़ी के नीचे से कहीं से आता था। वह मस्जिद में नमाज़ पढ़ने जब आता, तभी झीलिन उसे देखता। कद उसका छोटा था, टोपी पर सफ़ेद दुपट्टा बंधा हुआ था, दाढ़ी और मूंछें छंटी हुई थीं, बिल्कुल सफ़ेद थीं। चेहरा सारा झुर्रियों से भरा था और ईंट सा लाल। नाक उसकी बाज़ जैसी थी और आंखें सुरमई, कठोरता भरी, मुंह में बस दो दांत रह गए थे। वह अपनी पगड़ी पहने, बैसाखी का सहारा लिए चलता आता और ख़ूंख़्वार भेड़िये की तरह इधर-उधर घूरता जाता। झीलिन को देखते ही, गुर्राने लगता और मुंह मोड़ लेता।

एक दिन झीलिन पहाड़ी उतरकर देखने गया कि बूढ़ा कहां रहता है। पगडंडी पर नीचे उतरा, देखा, पत्थरों की बाड़ के पीछे बाग़ है, बाग़ में चैरी और दूसरे फलों के पेड़ लगे हुए हैं। और बीच में सपाट छत वाला मकान। और पास गया, देखा, पयाल के बने मधुमक्खियों के छत्ते रखे हुए हैं और मधुमक्खियां उड़ रही हैं, भिनभिना रही हैं। बूढ़ा घुटनों के बल खड़ा छत्ते के पास कुछ कर रहा है। झीलिन ने उचककर देखना चाहा, बेड़ी की आवाज़ हुई। बूढ़े ने पलटकर देखा और चीख उठा; कमरबंद से पिस्तौल निकाली और झीलिन पर गोली चला दी। झीलिन मुश्किल से पत्थर के पीछे झुक पाया।

बूढ़े ने आकर मालिक से शिकायत की। मालिक ने झीलिन को बुलाया, हंसते-हंसते पूछा:

"तू क्यों गया था इसके घर?"

"मैंने इसका कुछ बिगाड़ा नहीं। मैं तो बस देखना चाहता था कि यह कैसे रहता है।"

मालिक ने बूढ़े को बताया। बूढ़ा गुस्से से लाल-पीला होता जाए, गिटपिट करता जाए, नुकीले दांत बाहर निकल आए, झीलिन की ओर हाथ झटकाता जाए।

झीलिन सारी बात तो नहीं समझा, पर इतना समझ गया कि बूढ़ा मालिक को कह रहा रूसियों को मार डालो, गांव में मत रखो। फिर बूढ़ा चला गया।

झीलिन मालिक से पूछने लगा: "कौन है यह बूढ़ा?" मालिक ने बताया:

"यह बहुत बड़ा आदमी है! बड़ा शूरवीर था यह, इसने बहुत सारे रूसियों को मारा है, खूब अमीर था। तीन बीवियां थीं इसकी और आठ बेटे। सब एक ही गांव में रहते थे। रूसी आए, उन्होंने गांव तबाह कर दिया, सात बेटों को मार डाला। एक बेटा बच गया, वह रूसियों से जा मिला। बूढ़े ने भी जाकर अपने आपको रूसियों के सुपुर्द कर दिया। तीन महीने उनके पास रहा, वहां अपने बेटे को ढूंढ़ लिया, उसे मार डाला और भाग गया। तब से इसने लड़ना छोड़ दिया। मक्का गया, हज करने। इसीलिए वह पगड़ी पहनता है। जो मक्का हो आता है, उसे हाजी कहते हैं और वह पगड़ी पहनता है। उसे तुम रूसी अच्छे नहीं लगते। वह कहता है कि मैं तुझे मार डालूं, पर मैं मार नहीं सकता – मैंने तेरे बदले पैसे दिए हैं। और तू तो, इवान, मुझे अच्छा लगने लगा है। तुझे मारना तो क्या, मैं तुझे छोड़ूं भी नहीं, पर मैंने वचन दिया है।" वह हंसने लगा और रूसी में बोला: "तू, इवान अच्चा, हम अब्दुल अच्चा।"

(४)

इसी तरह एक महीना और बीत गया। झीलिन दिन में गांव में घूमता रहता या कुछ बनाता रहता। रात पड़ती, गांव में सन्नाटा हो जाता, तो वह कोठरी में ज़मीन खोदने लगता, पत्थरों के कारण खोदना मुश्किल था, पर वह रेती से पत्थर रगड़ता था और अब दीवार तले इतना बड़ा छेद कर लिया था कि उसमें से निकला जा सकता था। वह सोचता रहता: "अब बस किसी तरह इस जगह का ठीक से पता चल जाए कि किधर जाना चाहिए, पर तातार कुछ बताते ही नहीं।"

आख़िर, उसने ऐसा मौक़ा देखा, जब मालिक कहीं गया हुआ था; दोपहर

में गांव के बाहर पहाड़ी पर जाने लगा – वहां से सारी जगह देखना चाहता था। मालिक जब घर से जा रहा था, तो छोटे बेटे से कह गया था कि झीलिन पर नज़र रखे। लड़का झीलिन के पीछे दौड़ा, चिल्लाया :

"नहीं जा उधर! अब्बा ने मना किया है। नहीं तो अभी मैं लोगों को बुला लूंगा।"

झीलिन उसे मनाने लगा, बोला :

"मैं दूर नहीं जाऊंगा, बस उस पहाड़ी पर ; मुझे एक बूटी ढूंढ़नी है – तुम्हारे लोगों के इलाज के लिए। चल मेरे साथ, बेड़ी पहने हुए मै भाग थोड़े ही जाऊंगा। कल मैं तेरे लिए तीर-कमान बना दूंगा।"

छोटा मान गया, और वे चल दिए। पहाड़ी देखने में तो पास ही थी, पर बेड़ी पहनकर चलना बड़ा मुश्किल था। चलता गया, चलता गया और जैसे-तैसे चढ़ ही गया। झीलिन बैठ गया और जगह देखने लगा। दोपहर में जहां सूरज होता है, उस ओर कोठरी के पीछे तंग घाटी थी, उसमें घोड़े चर रहे थे और नीचे एक दूसरा गांव दिख रहा था। उस गांव से एक ओर पहाड़ी चली गई थी, इस से भी बड़ी और उसके पीछे एक और पहाड़ी थी। पहाड़ियों के बीच नीला-नीला जंगल दिख रहा था, आगे पहाड़ ऊपर ही ऊपर चले गए थे। सबसे ऊपर थे हिमाच्छादित पर्वत। टोपी सा एक हिम पर्वत सबसे ऊंचा था। सूर्योदय और सूर्यास्त की ओर भी ऐसे ही पहाड़ थे ; कहीं-कहीं दर्रों में गांवों का धुआं उठ रहा था। "अच्छा, तो यह सब तो इनका ही इलाक़ा है," झीलिन ने सोचा और वह रूसी इलाक़े की ओर देखने लगा ; नीचे नदी थी और गांव, जहां से वह आया था, चारों ओर बाग़ लगे हुए थे। नदी किनारे गुड़ियों सी लग रही औरतें कपड़े धो रही थीं। गांव के पीछे, थोड़ी नीचे को एक पहाड़ी और उसके पीछे और दो पहाड़ियां, उन पर जंगल था ; दो पहाड़ियों के बीच धुंधला सा सपाट मैदान नज़र आ रहा था और उस मैदान में बहुत दूर मानो धुआं फैल रहा था। झीलिन यह याद करने लगा कि जब वह क़िले में रहता था, तो सूरज किधर से निकलता था और किधर डूबता था। उसने देखा – ठीक, उसी घाटी में क़िला होना चाहिए, इन दोनों पहाड़ियों के बीच ही भागना चाहिए।

सूरज डूबने लगा। सफ़ेद पहाड़ लाल हो गए; नीचे की पहाड़ियों में अंधेरा छा गया, तंग घाटियों में से कोहरा उठने लगा और वह बड़ी घाटी, जिसमें क़िला होना चाहिए, सूर्यास्त की किरणों से आग की तरह चमक उठी। झीलिन ग़ौर से देखने लगा – घाटी में डोलायमान सा कुछ दिख रहा था, मानो चिमनी से उठता धुआं हो। उसका मन कहता था कि बस यही रूसी क़िला हो।

देर हो गई थी। मुल्ला की अज़ान सुनाई दी। मवेशी लौट रहे थे, गायें रंभा रही थीं। लड़का कई बार घर चलने को कह चुका था, पर झीलिन का जाने को मन ही नहीं हो रहा था।

वे घर लौट आए। झीलिन सोच रहा था: "अब जगह का पता चल गया, भागना चाहिए।" वह उसी रात भागना चाहता था। रातें अंधेरी थीं, कृष्ण पक्ष था। पर बदक़िस्मती से शाम तक तातार लौट आए। कई बार ऐसा होता था कि वे लौटते तो अपने साथ मवेशी खदेड़कर लाते, हंसते-गाते आते। पर इस बार कुछ नहीं लाए, बस एक काठी पर मारे गए तातार को लाए। वह लाल दाढ़ी वाले का भाई था। सब जले-भूने लौटे थे। दफ़नाने के लिए जमा हुए। झीलिन भी बाहर निकलकर देखने लगा। तातारों ने मुर्दे को कफ़न में लपेट दिया। ताबूत के बिना ही, गांव के बाहर चिनार के पेड़ों तले ले जाकर घास पर लिटा दिया। मौलवी आया, बूढ़े जमा हुए, टोपियों पर दुपट्टे बांधे हुए, जूते उतारकर मुर्दे के सामने घुटनों के बल बैठ गए।

आगे मौलवी, पीछे तीन बूढ़े, पगड़ी बांधे – पास-पास ही, और उनके पीछे बाक़ी तातार। बैठकर सिर नीचे झुका लिए और काफ़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। मौलवी ने सिर उठाया और बोला:

"अल्लाह।" यही एक शब्द कहा और फिर सिर झुका लिया, देर तक चुप बैठे रहे, ज़रा भी हिले-डुले नहीं। फिर मौलवी ने सिर उठाया:

"अल्लाह!" सब बोले: "अल्लाह!" और फिर चुप हो गए।

मुर्दा घास पर रखा हुआ था, और वे भी मुर्दों की तरह बैठे थे, कोई भी ज़रा सा हिलता-डुलता तक न था। बस चिनार की पत्तियों की खड़खड़ाहट ही सुनाई दे रही थी। फिर मौलवी ने दुआ पढ़ी, सब उठे, मुर्दे को उठाया

और ले चले। एक गड्ढे के पास लाए। गड्ढा मामूली नहीं था, ज़मीन के नीचे तहख़ाने की तरह बगली बनी हुई थी। तातारों ने मुर्दे को बगलों और जांघों से पकड़कर उठाया, मोड़ दिया, हौले से नीचे किया, बैठे हुए को ज़मीन के नीचे घुसा दिया और उसके हाथ पेट पर टिका दिए।

नगाई हरे सरकंडे लाया, गड्ढे में उन्होंने सरकंडे रखे और ऊपर से जल्दी-जल्दी मिट्टी डाल दी और बराबर कर दी। मुर्दे के सिर की ओर एक पत्थर खड़ा करके लगा दिया। ज़मीन को दबाया और फिर से क़ब्र के सामने बैठ गए। काफ़ी देर तक चुप बैठे रहे।

"अल्लाह! अल्लाह!" गहरी सांस ली और उठ गए। लाल दाढ़ी वाले ने बूढ़ों को पैसे दिए, फिर उठा, कोड़ा लिया, तीन बार अपने माथे पर मारा और घर चल दिया।

अगले दिन सुबह झीलिन ने देखा कि लाल दाढ़ी वाला घोड़ी को गांव के बाहर ले जा रहा था और तीन तातार उसके पीछे-पीछे जा रहे थे। गांव के बाहर पहुंचकर लाल तातार ने अंगरखा उतारा, कमीज़ की बांहें ऊपर चढ़ाईं – मोटे-तगड़े बाज़ू थे उसके, खंजर निकाला, पत्थर पर धार तेज़ की। तातारों ने घोड़ी का सिर ऊपर उठाया, लाल दाढ़ी वाले ने आकर घोड़ी की गर्दन काट दी, घोड़ी को गिरा दिया और उसे चीरने लगा – अपनी विशाल मुट्ठियों से खाल उतारता जाए। औरतें-लड़कियां आईं, घोड़ी की अंतड़ियां धोने लगीं। फिर घोड़ी के टुकड़े करके घर में ले गए। और सारा गांव शोक मनाने लाल तातार के यहां जमा हुआ।

तीन दिन तक वे घोड़ी का गोश्त खाते रहे और बूज़ा पीते रहे। सारे तातार घर पर ही रहे।

चौथे दिन झीलिन ने दोपहर को देखा कि कहीं जाने की तैयारियां हो रही हैं। घोड़े लाए गए, उन पर साज़ कसा गया और कोई दस लोग चल दिए। लाल दाढ़ी वाला भी चला गया। पर अब्दुल घर पर ही रहा। चांद अभी चढ़ती कला में आया ही था रातें अंधेरी ही थीं।

"बस, आज भाग लेना चाहिए," झीलिन ने सोचा और कस्तीलिन से कहा। पर वह डरने लगा।

" भागेंगे कैसे, हमें तो रास्ते का भी नहीं पता।"

" मैं जानता हूं रास्ता।"

" रात भर में तो पहुंच भी नहीं पाएंगे।"

" नहीं पहुंचेंगे, तो जंगल में रात काट लेंगे। मैंने कुछ रोटियां जमा कर रखी हैं। आखिर कितने दिन यहां बैठे रहेंगे? पैसे आ गए तो ठीक है, पर कौन जाने तुम्हारे घर वाले इतनी बड़ी रकम न भी जमा कर पाएं। तातार आजकल गुस्से में हैं कि रूसियों ने उनके आदमी को मार डाला है। सो हमें मारना चाहते हैं।"

कस्तीलिन सोचता रहा, सोचता रहा, फिर बोला:

" अच्छा, चलो!"

(५)

झीलिन छेद में घुस गया, उसे थोड़ा और खोदकर खुला किया, ताकि कस्तीलिन भी निकल सके; अब वे बैठे इंतज़ार कर रहे थे कि कब गांव में सब शांत हो जाए।

जैसे ही गांव में सोउता पड़ा, झीलिन दीवार के नीचे घुसा और बाहर निकल आया। कस्तीलिन भी घुसा, पर उसका पांव पत्थर से अटक गया, शोर हुआ। मालिक ने रखवाली के लिए एक कुत्ता पाला हुआ था, बड़ा ही कटखना; उसका नाम था उल्याशिन। झीलिन ने उसे पहले से ही परचाया हुआ था। उल्याशिन ने शोर सुना, भौंकने लगा और लपका, उसके पीछे दूसरे कुत्ते भी। झीलिन ने हौले से सीटी बजाई और रोटी का टुकड़ा फेंका। उल्याशिन उसे पहचान गया, दुम हिलाने लगा, भौंकना बंद कर दिया।

मालिक ने आवाज़ सुनी और अंदर से कुत्ते को शुशकारा "लोह! लोह! उल्याशिन!"

झीलिन कुत्ते के कानों के पीछे खुजला रहा था। कुत्ता चुप था, उसके पैरों से थूथनी रगड़ रहा था, दुम हिला रहा था।

कोने के पीछे दुबककर वे कुछ देर बैठे रहे। चारों ओर सन्नाटा छा गया,

बस एक कोठरी में भेड़ मिमिया रही थी और नीचे पत्थरों पर बहते पानी का शोर हो रहा था। अंधेरा था, तारे छिटक गए थे, पहाड़ी के ऊपर हंसिये जैसा चांद उठ रहा था। तंग घाटियों में दूध सा सफ़ेद कोहरा फैला हुआ था।

भीलिन उठा, कस्तीलिन से बोला: "चलो, चलें!"

चल दिए; दो कदम ही हटे थे कि सुना मुल्ला अज़ान दे रहा है: "अल्लाह, हो अकबर!" तो अब लोग मस्जिद जाएंगे। वे फिर दीवार के पास दुबककर बैठ गए। बड़ी देर तक बैठे रहे, जब तक कि सब लोग नहीं गुज़र गए। फिर से ख़ामोशी हो गई।

"चलो, चलें भगवान का नाम लेकर!" उन्होंने छाती पर सलीब का निशान बनाया और चल दिए। आंगन पार करके ढलान पर नदी तक उतर गए। नदी पार की और तंग घाटी में चलने लगे। कोहरा घना था और नीचे-नीचे था। ऊपर तारे बिल्कुल साफ़-साफ़ नज़र आ रहे थे। भीलिन तारे देख-देखकर अनुमान लगा रहा था कि किधर जाना चाहिए। कोहरे से हवा में ताज़गी थी, चलना आसान था, पर बूट तंग कर रहे थे, एक ओर से ज़्यादा घिसे हुए थे। भीलिन ने अपने बूट उतारकर फेंक दिए और नंगे पैर चलने लगा। एक पत्थर से दूसरे पर उछलता जाए और तारे देखता जाए। कस्तीलिन पीछे रहने लगा, बोला:

"ज़रा धीरे चलो न, कमबख़्त बूट सारे पांव में लग रहे हैं।"

"तो उतार दो न, ज़्यादा अच्छा रहेगा।"

कस्तीलिन नंगे पांव चला तो और भी ज़्यादा तकलीफ़ हुई: कंकड़ों से सारे पांव छलनी हो गए और वह पीछे ही पीछे रहता जाए। भीलिन ने उससे कहा:

"पांव छिल जाएंगे, तो ठीक भी हो जाएंगे, पर पकड़े गए, तो तातार मार डालेंगे।"

कस्तीलिन कुछ नहीं बोला, बस हांफता, कांखता चलता गया। काफ़ी देर तक वे निचाई में चलते रहे। अचानक दाईं ओर से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आई। भीलिन रुक गया, इधर-उधर ग़ौर से देखा, पहाड़ी पर चढ़ने लगा, हाथों से टटोलकर देखा; बोला:

"ओफ़, गलती हो गई। ज़्यादा दाएं को आ गए। यहां दूसरा गांव है, मैंने पहाड़ी से देखा था। हमें पीछे जाना चाहिए, बाएं की पहाड़ी के ऊपर। वहां जंगल होना चाहिए।"

कस्तीलिन बोला:

"थोड़ी देर तो ठहर जाओ, ज़रा आराम करने दो, मेरे पांव सारे ख़ूनोख़ून हो गए।"

"ओहो, कोई बात नहीं, ठीक हो जाएंगे। तुम हौले से कूदो न। ऐसे!"

और भ्हीलिन पीछे, बाईं ओर को दौड़ने लगा, ऊपर पहाड़ी पर, जंगल में चला। कस्तीलिन आहें भरता जाए और पीछे छूटता जाए। भ्हीलिन उसे भ्हिड़कता और ख़ुद चलता जाता।

आख़िर वे पहाड़ी पर चढ़ गए। वहां सचमुच ही जंगल था। जंगल में घुसे, तो कांटों से सारे कपड़े फट गए। जंगल में उन्हें रास्ता मिला। वे उस ओर चल दिए।

"ठहरो!" रास्ते पर टाप सुनाई दी। वे रुक गए, कान लगाकर सुनने लगे। घोड़े की सी टाप सुनाई दी और रुक गई। वे चल दिए, तो फिर टाप सुनाई दी। वे रुक जाएं – तो वह भी रुक जाए। भ्हीलिन रेंग-रेंगकर पास गया, रोशनी में देखा – सड़क पर कोई खड़ा था: पता नहीं घोड़ा था या क्या, और उसके ऊपर कुछ अजीब सा, आदमी की शक्ल का नहीं। भ्हीलिन ने सुना – उसने फुफकार भरी। "क्या अजूबा है!" भ्हीलिन ने धीरे से सीटी बजाई – वह बिजली की तरह जंगल की ओर लपका और जंगल में तड़तड़ होने लगी, मानो आंधी आई हो, सूखी टहनियां तोड़ रही हो।

कस्तीलिन तो डर के मारे थरथराने लगा। भ्हीलिन हंसता जाए, बोला:

"अरे, यह तो बारहसिंगा था। सुन रहे हो कैसे सींगों से टहनियां तोड़ता जा रहा है। हम उससे डर रहे थे और वह हमसे।"

आगे चल दिए। उजाला होने में ज़्यादा देर न थी। पर उन्हें यह पता न था कि वे ठीक दिशा में जा रहे हैं या नहीं। भ्हीलिन को लग रहा था कि इसी रास्ते उसे यहां लाया गया था, और क़िला यहां से कोई सात मील दूर होगा, पर कोई पक्की निशानी न थी और रात को पता भी तो नहीं चल सकता। ऐसे

ही चलते-चलते वह एक छोटे से मैदान तक पहुंचे। कस्तीलिन बैठ गया और बोला :

"तुम जो चाहो करो, पर मैं तो नहीं पहुंच पाऊंगा : टांगें नहीं चलतीं।"

झीलिन उसे मनाने लगा।

"नहीं, नहीं पहुंच पाऊंगा, नहीं चला जाता," वह बोला।

झीलिन को ग़ुस्सा आ गया, उसने थू किया और कस्तीलिन को फटकारा।

"ठीक है, मैं अकेला चला जाऊंगा, बैठे रहो यहीं।"

कस्तीलिन उठा और चल दिया। कोई तीन मील तक वे चलते गए। जंगल में कोहरा और भी ज़्यादा घना था; सामने कुछ दिखाई नहीं देता था, तारे भी ज़रा-ज़रा ही दिख रहे थे।

सहसा उन्हें आगे से घोड़े की टाप सुनाई दी। नाल के पत्थरों से टकराने की आवाज़ आ रही थी। झीलिन पेट के बल लेट गया और ज़मीन को कान लगाकर सुनने लगा।

"हां, इधर ही कोई घुड़सवार आ रहा है।"

वे रास्ते से उतरकर झाड़ियों में छिप गए और इंतज़ार करने लगे। झीलिन रेंग-कर रास्ते के पास गया, देखा–घुड़सवार तातार आ रहा है, गाय ला रहा है, गुन-गुनाता जा रहा है। तातार गुज़र गया। झीलिन कस्तीलिन के पास लौट आया।

"बचा लिया भगवान ने, उठो चलें।"

कस्तीलिन उठने को हुआ, पर गिर गया।

"नहीं चल सकता, हे भगवान, नहीं चल सकता मैं, हिम्मत नहीं रही।"

वह भारी-भरकम आदमी था, पसीना आ गया था उसे और यहां जंगल में ठंडा क़ोहरा था, पांव भी फट गए थे–इसीलिए वह निढाल हो गया था। झीलिन ज़ोर लगाकर उसे उठाने लगा तो वह चिल्ला पड़ा :

"हाय दर्द होता है!"

झीलिन की बस जान सूख गई।

"चिल्लाते क्यों हो? तातार पास ही है, सुन लेगा तो?" मन ही मन सोचने लगा : "यह सचमुच ही टूट गया है; क्या करूं मैं इसका? साथी को छोड़कर जाना तो ठीक नहीं।" फिर बोला :

"अच्छा, उठो, मेरी पीठ पर बैठ जाओ, चल नहीं सकते, तो मैं उठा ले चलूंगा।"

उसने कस्तीलिन को पीठ पर बिठाया, जांघों तले से उसे पकड़ लिया और रास्ते पर आकर आगे चलने लगा।

"अरे, भगवान के वास्ते मेरा गला तो मत दबाओ, कंधों से पकड़े रखो।"

झीलिन को बड़ी मुश्किल हो रही थी – उसके पांव भी ख़ूनोख़ून थे और वह थक भी गया था। वह नीचे झुकता, कस्तीलिन को उछालता, ताकि वह पीठ पर ऊपर को बैठा रहे और आगे पांव घसीटने लगता।

तातार ने कस्तीलिन के चिल्लाने की आवाज़ सुन ली लगती थी। झीलिन ने सुना पीछे से कोई घोड़े पर आ रहा है, अपनी बोली में कुछ चिल्ला रहा है। झीलिन झाड़ियों की ओर लपका। तातार ने बंदूक निकाली, गोली चलाई – निशाना ठीक नहीं बैठा, अपनी बोली में चीखकर उसने कुछ कहा और घोड़ा वापस दौड़ा ले गया।

झीलिन बोला: "बस भई, अब गए हम! वह कमबख़्त तातारों को जमा कर लाएगा हमारा पीछा करने को। अगर हम दो मील दूर न भाग निकले, तो बस गए।" मन ही मन वह कस्तीलिन के बारे में सोच रहा था: "क्यों मैं यह बोझा अपने साथ ले आया। अकेला कब का निकल गया होता।"

कस्तीलिन बोला:

"जाओ, तुम अकेले चले जाओ। मेरे लिए क्यों मरते हो।"

"नहीं, अकेला नहीं जाऊंगा। साथी को छोड़ना ठीक नहीं।"

फिर से उसने कस्तीलिन को पीठ पर लादा और चल दिया। इस तरह वह कोई पौन मील चला होगा। जंगल-जंगल ही जा रहा था, जंगल का अंत न दिखता था। कोहरा छंटने लगा और मानो बादल छाने लगे – तारे दिखाई नहीं दे रहे थे। झीलिन का बुरा हाल हो रहा था।

आख़िर एक जगह पहुंचे: सड़क किनारे चश्मा था। वह रुक गया, कस्तीलिन को उतार दिया, बोला:

"थोड़ा आराम कर लूं, पानी पी लूं। आओ रोटी खा लें। अब तो थोड़ी ही दूर होना चाहिए।"

वह पानी पीने को झुका ही था, कि पीछे से टापें सुनाई दीं। वे फिर दाईं ओर लपके, ढलान पर झाड़ियों में दुबक गए।

ऊपर से तातारों की आवाज़ें आने लगीं। तातार उसी जगह रुके थे, जहां से वे रास्ते से दाईं ओर मुड़े थे। तातारों ने कुछ बातें कीं, फिर शुशकारने लगे। झाड़ियों में कुछ चटखा और एक अनजान कुत्ता सीधा उनकी ओर बढ़ आया। रुक गया और भौंकने लगा।

तातार भी बढ़ आए। उन्हें भी झीलिन नहीं जानता था। उन्होंने इन दोनों को पकड़कर बांध दिया, घोड़ों पर बिठाया और ले चले।

कोई दो मील गए थे कि मालिक अब्दुल और दो तातार मिले। उन्होंने तातारों से कुछ बात की, इन दोनों को अपने घोड़ों पर बिठाया और वापस गांव ले चले।

अब्दुल अब हंस नहीं रहा था और न इनसे कोई बात ही उसने की।

सुबह-तड़के उन्हें गांव ले आए। गली में बिठा दिया। लड़के जमा हो गए। पत्थरों, कोड़ों से उन्हें मारने और चीखने लगे।

तातार एक घेरे में जमा हुए। पहाड़ी के नीचे से वह बूढ़ा भी आया। बातें करने लगे। झीलिन ने सुना कि उनकी ही बातें हो रही हैं, कि क्या किया जाए उनका। कोई कह रहा था कि और दूर पहाड़ों में भेज देना चाहिए। पर बूढ़ा कह रहा था: "मार डालो।" अब्दुल नहीं मान रहा था, कहता था: "मैंने इनके लिए पैसे दिए हैं। मैं पैसे वसूल करके रहूंगा।" पर बूढ़ा कहता था: "कुछ नहीं देने-वेने के, बस कोई आफ़त ही खड़ी करेंगे। रूसियों को रोटी देना ही पाप है। मार डालो और बस बात ख़त्म।"

सब चले गए, तो मालिक झीलिन के पास आया, कहने लगा:

"अगर मुझे तुम्हारे बदले पैसे न मिले, तो मैं दो हफ़्ते बाद कोड़े मार-मारकर दम निकाल दूंगा और अगर तूने फिर से भागने की सोची, तो कुत्तों की मौत मरेगा। चिट्ठी लिख, अच्छी तरह लिख!"

नौकर ने उन्हें कागज़ लाकर दिया, उन्होंने चिट्ठियां लिख दीं। उन्हें बेड़ियां पहनाकर तातार मस्जिद के पार ले गए। वहां एक गड्ढा था कोई बारह फ़ुट गहरा। उन्हें वहां गड्ढे में उतार दिया गया।

(६)

अब उनका जीना बिल्कुल दूभर हो गया। बेड़ियां उतारी नहीं जाती थीं और बाहर भी नहीं निकाला जाता था। गड्ढे में ही उन्हें कच्ची रोटियां फेंक दी जाती थीं, कुत्तों की तरह और रस्सी से सुराही में पानी उतार देते थे। गड्ढे में बदबू, उमस और सीलन थी। कस्तीलिन तो बिल्कुल ही बीमार पड़ गया, फूल गया, सारे शरीर में टूटन होने लगी। वह कराहता रहता या सोता रहता। झीलिन भी गुमसुम हो गया: देख रहा था कि मामला बिल्कुल बिगड़ गया। कुछ समझ नहीं पा रहा था कि कैसे यहां से निकला जाए।

वह ज़मीन खोदने लगा, पर मिट्टी फेंकने की कोई जगह न थी; मालिक ने देख लिया और मार डालने की धमकी दी।

एक दिन वह गड्ढे में उकड़ूं बैठा था, आज़ाद ज़िंदगी के बारे में सोचकर उदास हो रहा था। अचानक सीधे उसके घुटनों पर एक रोटी आ गिरी, फिर दूसरी, और चैरियां भी गिरीं। ऊपर देखा, तो वहां दीना बैठी थी। दीना उसकी ओर देखकर हंसी और भाग गई। झीलिन सोचने लगा: "शायद दीना कुछ मदद कर दे।"

पर अगले दिन दीना नहीं आई। झीलिन को घोड़ों की टाप सुनाई दी। कुछ लोग गुज़रे और फिर तातार मस्जिद के पास जमा हो गए। वे चिल्ला रहे थे, बहस कर रहे थे, रूसियों का ज़िक्र कर रहे थे। बूढ़े की आवाज़ भी झीलिन को सुनाई दी। ठीक-ठीक तो उसकी समझ में नहीं आया, हां, इतना पता चला कि शायद रूसी कहीं पास ही आ गए हैं और तातारों को डर है कि कहीं गांव में न आ जाएं; और वे यह तय नहीं कर पा रहे कि बंदियों का क्या करें।

बातें करके सब चले गए। सहसा झीलिन ने सुना – ऊपर कुछ सरसराहट हुई। देखा: दीना बैठी थी, घुटने सिर से ऊपर दिख रहे थे, नीचे झुक गई, हंबेल के सिक्के लटक रहे थे, गड्ढे के ऊपर हिल रहे थे, आंखें तारों सी चमक रही थीं। बाजू में से पनीर की दो रोटियां निकालीं और फेंक दीं। झीलिन ने ले लीं और बोला:

"आई क्यों नहीं थी इतनी देर तक? मैंने तेरे लिए खिलौने बनाए हैं। यह ले!" और वह एक-एक करके ऊपर फेंकने लगा।

वह सिर हिला रही थी और उधर देख नहीं रही थी।

"रहने दो!" बोली। चुप बैठी रही, फिर बोली:

"इवान, तुझे मारना चाहते हैं।" और अपनी गर्दन पर हाथ फेरा।

"कौन मारना चाहता है?"

"अब्बा। बूढ़ों ने उसे कहा है। मुझे तुम पर तरस आता है।"

तब झीलिन ने कहा:

"अगर तुझे तरस आता है, तो तू मुझे बल्ली ला दे।"

उसने सिर हिला दिया कि नहीं हो सकता। उसने हाथ जोड़े।

"दीना, बच्ची, ला दे न!"

"नहीं ला सकती," वह बोली, "देख लेंगे, सब घर पर हैं।" और चली गई।

शाम हो गई। झीलिन बैठा सोच रहा था: "अब क्या होगा?" रह-रहकर वह ऊपर देखता। तारे दिख रहे थे, पर चांद अभी नहीं निकला था। मुल्ला ने अज़ान दी। चारों ओर सन्नाटा था। झीलिन को झपकी आने लगी। सोच रहा था: "डर रही होगी वह।"

अचानक उसके सिर पर मिट्टी गिरी: ऊपर देखा – बल्ली गड्ढे के दूसरे सिरे पर अटक रही थी। फिर नीचे आने लगी। झीलिन ख़ुश हो गया, हाथ बढ़ाकर बल्ली पकड़ ली, नीचे उतार ली। बल्ली मज़बूत और लंबी थी। उसने मालिक की छत पर पहले भी वह बल्ली रखी देखी थी।

ऊपर देखा: तारे छिटक गए थे; और गड्ढे के ऐन ऊपर अंधेरे में दीना की आंखें बिल्ली की आंखों सी चमक रही थीं। वह गड्ढे के सिरे पर झुक गई और फुसफुसाई:

"इवान, इवान!" ख़ुद मुंह के पास हाथ हिलाती जाए कि "धीरे बोल।"

"क्या?" झीलिन बोला।

"सब चले गए, बस दो जने घर पर हैं।"

झीलिन बोला:

"चल कस्तीलिन चलें, आख़िरी बार कोशिश करते हैं, मैं तुझे पीठ पर बिठा लूंगा।"

कस्तीलिन कुछ सुनना ही न चाहता था।

"नहीं, मेरी क़िस्मत में यहां से निकलना नहीं लिखा। कहां जाऊंगा मैं, करवट तक तो ली नहीं जाती?"

"अच्छा, तो भूल-चूक माफ़ करना।" दोनों ने एक दूसरे को चूमा।

भीलिन ने बल्ली पकड़ ली, दीना से कहा कि संभाले रखे और ऊपर चढ़ने लगा। दो बार उसका हाथ छूटा, बेड़ी तंग कर रही थी। कस्तीलिन ने उसे सहारा दिया, जैसे-तैसे वह ऊपर चढ़ गया। दीना अपने दुबले हाथों से उसे कमीज़ पकड़कर खींच रही थी, हंस रही थी।

भीलिन ने बल्ली निकाली और बोला:

"जा, इसे वापस रख आ, किसी ने देख लिया बल्ली नहीं है, तो तुझे मार डालेंगे।"

वह बल्ली ले चली। भीलिन पहाड़ी उतरने लगा। ढलान से उतरकर नुकीला पत्थर उठाया और बेड़ी का ताला निकालने की कोशिश करने लगा। ताला मज़बूत था, टूटता ही न था और हाथ भी तो ठीक नहीं बैठता था। पहाड़ी से किसी के दौड़ने, हौले से कूदते आने की आवाज़ आई। उसने सोचा: "दीना ही होगी।" दीना आई, पत्थर उठाया और बोली:

"लाओ, मैं करती हूं।"

घुटनों के बल बैठकर ताला तोड़ने लगी। पर हाथ तो दुबले-पतले थे, ज़रा भी ताकत नहीं। उसने पत्थर फेंक दिया और रो पड़ी। भीलिन फिर से ताला तोड़ने की कोशिश करने लगा, दीना उसके पास पंजों के बल बैठ गई, उसका कंधा पकड़ लिया। भीलिन ने मुड़कर देखा, बाईं ओर पहाड़ी के पीछे लाली छा गई थी, चांद उग रहा था। उसने सोचा: "चांद निकलने से पहले वह तंग घाटी पार कर लेनी चाहिए, जंगल तक पहुंच जाना चाहिए।" उठा, पत्थर फेंक दिया, बेड़ी पहने हुए ही सही पर चलना चाहिए।

"अच्छा, दीना," भीलिन बोला। "सारी उम्र तुझे याद रखूंगा।" दीना ने उसे पकड़ लिया, हाथों से टटोलने लगी, ढूंढ रही थी कि कहां रोटियां रखे। उसने रोटियां ले लीं, बोला:

"जीती रह, बच्ची। कौन तुझे अब गुड़ियां बना के देगा।" और उसका सिर सहलाया।

दीना के आंसू फूट पड़े, उसने मुंह हाथों से ढांप लिया और पहाड़ी पर दौड़ गई, बकरी की तरह फुदकती जा रही थी। अंधेरे में से उसकी चोटी में उलझ रहे सिक्कों की खनक ही आ रही थी।

झीलिन ने सलीब का निशान बनाया, हाथ से बेड़ी का ताला पकड़ा, ताकि वह खड़खड़ाए न और रास्ते पर चल दिया। बड़ी मुश्किल से पैर घसीटते हुए झीलिन उधर आसमान की ओर देखता जा रहा था, जिधर चांद निकल रहा था। उसने रास्ता पहचान लिया। अगर सीधे चला जाए तो कोई पांच मील का फ़ासला है। अब चांद निकलने से पहले जंगल पहुंच जाना चाहिए। उसने नदी पार की; पहाड़ी के पीछे रोशनी सफ़ेद हो गई, आसमान पर उजाला हो गया और तंग घाटी के एक ओर उजाला बढ़ता ही जा रहा था। छाया पहाड़ी तले रेंग रही थी, झीलिन के पास आती जा रही थी।

झीलिन पहाड़ी की छाया-छाया में चलता जा रहा था। वह जल्दी कर रहा था, पर चांद और भी तेज़ी से चढ़ रहा था; दाईं ओर के पेड़ों के शिखरों पर भी चांदनी पड़ने लगी। जंगल पास ही आ चला था, चांद भी पहाड़ी के पीछे से निकल आया, चारों ओर दिन सा उजाला हो गया। पेड़ों पर एक-एक पत्ती देखी जा सकती थी। पहाड़ियों पर चांदनी फैली हुई थी, सन्नाटा था मानो कहीं कोई जान न हो। बस नीचे से नदी की कलकल सुनाई दे रही थी।

झीलिन जंगल तक पहुंच गया, किसी से सामना नहीं हुआ। उसने जंगल में अंधेरी जगह ढूंढी और आराम करने बैठ गया।

आराम किया, रोटी खाई। एक पत्थर ढूंढ़कर, फिर से बेड़ी तोड़ने लगा। हाथ छिल गए, पर बेड़ी न टूटी। उठा और रास्ते पर चल दिया। कोई तीन फ़र्लांग चला होगा, निढाल हो गया – टांगें बुरी तरह दुख रही थीं। दस क़दम भरता और रुक जाता। सोचता जाता: "कोई बात नहीं, जब तक दम है चलता जाऊंगा। अगर बैठ गया, तो फिर उठ नहीं पाऊंगा। क़िले तक तो मैं पहुंच नहीं पाऊंगा, पौ फटते ही जंगल में कहीं छिपकर लेट जाऊंगा, दिन काट लूंगा और रात को फिर चल दूंगा।"

सारी रात चलता गया। बस दो घुड़सवार तातार रास्ते में आए, पर झीलिन ने दूर से ही उनकी आहट पा ली और पेड़ पीछे दुबक गया।

चांद फीका पड़ने लगा, ओस गिरी, भोर हो रही थी, पर झीलिन अभी जंगल के सिरे तक न पहुंचा था। मन ही मन कहने लगा: "बस तीस क़दम और चल लूं, फिर जंगल में मुड़ जाऊंगा और बैठ जाऊंगा।" तीस क़दम चला और देखा कि जंगल ख़त्म हो रहा है। जंगल के सिरे पर पहुंचा, बिल्कुल उजाला था; उसके सामने स्तेपी थी और किला मानो हथेली पर रखे हों। बाईं ओर पास ही पहाड़ी के नीचे, आग जल-बुझ रही थी, धुआं फैल रहा था और अलावों के पास लोग बैठे हुए थे।

झीलिन ने ग़ौर से देखा: बंदूकें चमक रही थीं – रूसी सिपाही थे।

झीलिन ख़ुश हो गया, आख़िरी ज़ोर लगाकर उधर चल दिया। मन ही मन सोचता जाए: "भगवान न करे यहां खुले मैदान में कोई घुड़सवार तातार देख ले, अपनों के पास ही हूं, पर बचकर न निकल पाऊंगा।"

सोचने की देर थी कि देखा: बाईं ओर टीले पर तीन तातार खड़े थे, कोई आठ बीघा दूर। उन्होंने झीलिन को देख लिया और घोड़े दौड़ाए। झीलिन का कलेजा सुन्न हो गया। हाथ हिलाने लगा, पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"बचाओ, भाइयो, बचाओ!"

रूसियों ने सुन लिया। घुड़सवार उछले और उसकी ओर घोड़े दौड़ा दिए – तातारों का रास्ता काटते हुए।

रूसी दूर थे, तातार पास। पर झीलिन ने भी सारा दम लगाया, बेड़ी को हाथ से संभाला और अपने लोगों की ओर बेतहाशा दौड़ा, सलीब का निशान बनाता जाए, चिल्लाता जाए:

"भाइयो! भाइयो! भाइयो!"

रूसी घुड़सवार कोई पंद्रह थे।

तातार डर गए – आधे रास्ते में ही रुकने लगे। और झीलिन अपने लोगों के पास पहुंच गया।

उन्होंने उसे घेर लिया, पूछने लगे: "कौन है? कहां से आया?" पर झीलिन को अपनी होश न थी, वह रोता जाए और बस कहता जाए:

"भाइयो ! भाइयो !"

दूसरे सिपाही भी दौड़ आए, झीलिन को घेर लिया, कोई उसे रोटी दे, कोई खिचड़ी, कोई वोद्का; कोई ओवरकोट ओढ़ाने लगा और कोई बेड़ी तोड़ने।

अफ़सरों ने उसे पहचान लिया, क़िले में ले गये। झीलिन के सिपाही ख़ुश हो गए, साथी जमा हो गए।

झीलिन ने सारी आपबीती सुनाई और बोला: "लो, हो आया मैं घर, शादी कर आया! नहीं क़िस्मत में नहीं लिखा।"

और वह वहीं कोहक़ाफ़ में अफ़सरी करने को रह गया। कस्तीलिन को महीने भर बाद पांच हज़ार रूबल आने पर छोड़ा गया। बिल्कुल अधमरे को क़िले में लाए।

प्रकाशित हो चुकी है

गैदार अर्कादी, **चूक और गेक।** कहानी

अर्कादी गैदार (१९०४–१९४१) की यह कहानी सोवियत बाल साहित्य की एक सर्वोत्कृष्ट रचना है। विश्व की ६० भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और इसपर फ़िल्म भी बनायी जा चुकी है। कहानी चूक और गेक नामक दो नन्हे भाइयों की है, जो मास्को से अपनी मां के साथ सुदूर ताइगा जा रहे हैं, जहां उनका पिता एक भूवैज्ञानिक खोज दल में काम कर रहा है। गैदार बड़ी विनोदपूर्ण शैली में बच्चों की यात्रा, उनकी शरारतों, साहसिक कार्यों, पिता के साथ मुलाक़ात, आदि के बारे में बताते हैं। पुस्तक की चित्रसज्जा सुप्रसिद्ध सोवियत ग्राफ़िककार, राज्य पुरस्कार विजेता अकादमीशियन द० दुबीन्स्की ने की है।

प्रकाशित हो चुकी है

व० गलीश्किन।
समुंदर की गोद में।

पायोनियर शिविर आर्तेक की कहानियां। अनुवादक: मानवेन्द्र गुप्ता।

स्कूल की छोटी कक्षाओं के बच्चे ही आधुनिक सोवियत लेखक, वसीली गलीश्किन के नायक हैं। लेखक ने काले सागर के सुंदर तट पर स्थित आर्तेक नामक पायोनियर शिविर में बच्चों के जीवन का वर्णन किया है।

आर्तेक में बच्चों के बहुभाषी परिवार का चंचल जीवन मज़ेदार खेल-कूद और उत्सवों इत्यादि से भरा हुआ है। यहां पर सोवियत बच्चे और देश-विदेश से आये हुए बालक मैत्री-सूत्रों में बंधते रहते हैं।

यह पुस्तक सन् १९८७ में रादुगा प्रकाशन से प्रकाशित हो रही है।